इन्दिरा-कला-संगीत-विश्वविद्यालय ग्रंथमाला : क्र.-३

श्रीनान्य-भूपाल-प्रणीतम्

भरतभाष्यम्

द्वितीयः खण्डः

(अध्यायौ ६ – ७)

चैतन्य पुण्डरीक देसाई इत्येतैः
संशोधितं संपादितम्
हिन्दी-भाषा-टीकया च समलङ्कृतम्

भाषा-परिष्कारकः
रमाशंकर मिश्रः

प्रथमं संस्करणम्

इन्दिरा - कला - संगीत - विश्वविद्यालय
खैरागढ (म. प्र.)
भारत
१९७६

नान्यभूपाल-प्रणीतम्

भरतभाष्यम्

द्वितीयः खण्डः

Indirā-Kalā-Sangīt-Vishwavidyālaya Series : No.-3

BHARATABHĀṢYAṀ

of

NĀNYABHŪPĀLA

Part II

(Chapters 6 - 7)

EDITED BY

CHAITANYA P. DESAI

Bhāṣā-Pariṣkāraka : RAMASHANKAR MISHRA

FIRST EDITION

Indira Kala Sangit Vishwavidyalaya

KHAIRAGARH (M. P.)

INDIA

1976

Published by:

Shri G. C. Jain
Vice-Chancellor

Rs 150/-

Printed by:

M. P. Banhatti
Narayan Mudranalaya
Dhantoli, Nagpur - 440 012
(M. S.)

इन्दिरा–कला–संगीत–विश्वविद्यालय ग्रंथमाला : क्र.–२

श्रीनान्य–भूपाल–प्रणीतम्

भरतभाष्यम्

द्वितीयः खण्डः

(अध्यायौ ६ – ७)

चैतन्य पुण्डरीक देसाई इत्येतैः
संशोधितं संपादितम्
हिन्दी–भाषा–टीकया च समलङ्कृतम्

भाषा–परिष्कारकः
रमाशंकर मिश्रः

प्रथमं संस्करणम्

इन्दिरा - कला - संगीत - विश्वविद्यालय
खैरागढ (म. प्र.)
भारत
१९७६

प्रकाशक :

श्री गुलाबचन्द जैन
उपकुलपति

मूल्य : रु. [illegible]

मुद्रक :

म. पां. बनहट्टी
नारायण मुद्रणालय
धनतोली, नागपूर - ४४० ०१२
(महाराष्ट्र)

भूमिका

शोध–कार्य किसी भी विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य होता है। सीमित साधनों के अन्तर्गत विश्वविद्यालय ने शोध तथा प्रकाशन की दिशा में कुछ कार्य किया है। इसमें **भरतभाष्यम्** का प्रकाशन विशेष उल्लेखनीय है। भरतभाष्यम् भाग–१ कुछ वर्षों पूर्व विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया गया था। उक्त प्रकाशन को भारत के प्रख्यात संगीत–शास्त्रियों ने संगीत–जगत् में एक उल्लेखनीय शोधकार्य के रूप में निरूपित किया तथा सभी ने यह आग्रह किया कि भरतभाष्यम् भाग–२ का भी प्रकाशन शीघ्र किया जावे। यद्यपि भाग–२ का कार्य काफी समय पूर्व ही सम्पन्न हो चुका था, परन्तु मुद्रण–कार्य में अनुमानित समय से काफी अधिक समय कई कारणों से लग गया।

भरतभाष्यम् प्राचीन ग्रन्थों में एक महत्वपूर्ण विस्तृत ग्रन्थ है, जो इसके पूर्व तक अप्रकाशित था। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि खंडित तथा अत्यन्त ही भ्रष्ट है, परन्तु विश्वविद्यालय के शोध–अधिकारी श्री **चैतन्य देसाई**, जिन्होंने वर्षों तक संगीत–शास्त्र में अपने आपको प्रतिष्ठित किया है, उन्होंने इस कठिन कार्य को सम्पन्न किया। उनके इस कार्य में शोध–विभाग के श्री **रमाशंकर मिश्र**, संस्कृत–पंडित, ने संस्कृतकार्य में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि संगीत–शास्त्र के क्षेत्र में भरतभाष्यम् भाग–२ अपना अपेक्षित महत्व रखेगा। इसका प्रकाशन–व्यय संपूर्ण रूप से **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली**, के अनुदान से किया गया है।

भरतभाष्यम् भाग–३ का कार्य चल रहा है, जिसके शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशन हेतु विश्वविद्यालय हर संभव प्रयास कर रहा है।

खैरागढ़
दिनांक १२ फरवरी, १९७६

गुलाबचन्द जैन
उपकुलपति

प्रस्तावना

अपने देश का शास्त्रीय संगीत चार क्षेत्रों में प्रचलित था :–(१) वैदिक संगीत, जिसका क्षेत्र यज्ञ और तत्सम्बन्धी उत्सव था (२) भक्ति संगीत, जिसका क्षेत्र मन्दिर था (३) नाट्य संगीत, जिसका क्षेत्र रंगमंच था (४) प्रासादीय संगीत, जिसका क्षेत्र राजप्रसाद था। इन सबको पहले गान्धर्व कहते थे, बाद में मार्ग संगीत कहने लगे। पहले तीन प्रकार का संगीत वृन्द संगीत था। चौथे प्रकार का संगीत प्रायः एकल था।

वैदिक संगीत का वर्णन शिक्षा ग्रन्थों और पुष्पसूत्र में मिलता है। मन्दिरों में जिस संगीत का विकास हुआ और जिसे लोग विष्णुपद अथवा हवेली संगीत कहने लगे, उसका कोई क्रमबद्ध ग्रन्थ नहीं मिलता। नाट्य संगीत का विशद वर्णन **भरत** के नाट्यशास्त्र में मिलता है। इसमें जाति का तो विस्तृत वर्णन है; किन्तु ध्रुवा, गीतक, इत्यादि का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। ग्रामराग का तो उल्लेख मात्र है।

ग्रामराग, भाषा, विभाषा तथा देशीराग इत्यादि का क्षेत्र राजप्रासाद और भिन्न भिन्न उत्सव बने। **बृहद्देशी** में और बाद के जितने ग्रन्थ लिखे गये, उनमें विशेषकर उन्हीं रागों का वर्णन दिया गया है, जिन्हें हम एकल अथवा प्रासादीय संगीत कह सकते हैं।

नाट्यशास्त्र मुख्यतः नाटक का ग्रन्थ है। गीत और नृत्य हमारे नाटकों के अभिन्न अंग थे। इसलिए प्रसंगवश भरत ने उस गीत और नृत्य का वर्णन किया है, जो नाटक के लिए उपयोगी था और जिसे वह **गान्धर्व** कहते थे। तालों में उन्होंने केवल ४–५ ताल रखे थे, जो मार्ग ताल कहलाते थे। यह एक भ्रान्त धारणा है कि भरत के समय तक केवल जाति–गान और मार्ग ताल थे और भरत के बाद देशी राग और देशी ताल प्रारम्भ हुए। भरत के समय भी देशीराग और ताल विद्यमान थे, किन्तु उनकी गणना गान्धर्व में नहीं हुई थी। अतः भरत द्वारा वे उपेक्षित रहे। भरत के समय में कौन से देशी राग और ताल प्रचलित थे, इसकी जानकारी प्राप्त करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है; क्योंकि नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त उस काल का अन्य कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

नाटचशास्त्र के बाद यदि कोई ऐसा ग्रन्थ मिलता है, जिसमें संगीत का विशेष रूप से विवेचन है, तो वह **मतंग** का बृहद्देशी है। मतंग ने अपने बृहद्देशी में कहा है :–

रागमार्गस्य यद्रूपं यन्नोक्तं भरतादिभिः।
निरूप्यते तदस्माभिर्लक्ष्यलक्षणसंयुतम्॥ (बृ० दे० पृ० ८१)

अर्थात् रागमार्ग के जिस रूप का निरूपण भरत इत्यादि मुनियों ने नहीं किया, उसका हम लक्ष्यलक्षण–सहित निरूपण कर रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि मतंग देशी रागों को राग–मार्ग के भीतर गिनते थे। **कल्लिनाथ** इत्यादि ने जो देशी रागों में कामाचारत्व का उल्लेख किया है, वह सर्वथा उपयुक्त नहीं है, क्योंकि सभी ग्रन्थों ने देशी रागों के विशेष स्वर–विस्तार बतलाये हैं और इनके वादी संवादी स्वरों का भी निर्देश किया है। देशीराग केवल लोकगीत (folk music) नहीं थे। वे नियमबद्ध होकर विशेष विशेष देशों (देशभागों) में प्रचलित हो चुके थे। कामाचारत्व का केवल इतना ही तात्पर्य है कि वे भरत के ग्राम–मूर्च्छना के कठघरें में नहीं आते थे। आज भी मियां की तोड़ी, पूर्वी, मारवा इत्यादि ऐसे राग हैं, जो भरत की किसी भी मूर्च्छना के अन्तर्गत नहीं आते। जातिगान के मुख्य लक्षण देशी रागों में भी विद्यमान थे, किन्तु धीरे धीरे जातिगान का ह्रास होने लगा और ग्रामराग, भाषा, विभाषा का उत्कर्ष हुआ। देशीराग इन्हीं से प्रभावित थे। शाङ्‌र्गदेव ने तो यहाँ तक कहा है "प्रसिद्धा ग्रामरागाद्याः केचिद्देशीत्यपीरिताः" (**सं० र०** अ० २, श्लो० ३) अर्थात् कुछ प्रसिद्ध ग्रामराग **देशी भी** कहलाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि सारा भारतीय संगीत भरत के जाति–गान के भीतर ही समाविष्ट नहीं है। भरत के समय में भी ग्रामराग के साथ ही साथ देशी राग भी विद्यमन थे। वे मतंग के काल में एकाएक आकाश से नहीं टपक पड़े। जाति–गान केवल मतंग के काल तक (ई० शताब्दी ८०० या ९००) कुछ कुछ प्रचार में रहा। उसके अनन्तर ग्राम–राग, भाषा-विभाषा, देशी राग का ही प्राबल्य होता गया और जाति–गान लुप्त हो गया। धीरे धीरे रागालप्ति और रूपकालप्ति का विकास हुआ और तेरहवीं शती तक ये आलप्तियाँ अपनी उत्कृष्ट अवस्था को पहुँच गईं। इनका महत्त्वपूर्ण प्रभाव आज तक सारे भारतीय संगीत पर छाया हुआ है।

मतंग के बृहद्देशी के बाद सब से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नान्यदेव का **भरत-भाष्य** है। नान्यदेव १०९७ से ११३३ ई० तक मिथिला के राजा थे। वह वस्तुतः कर्णाट के राष्ट्रकूट वंश के थे और वहीं से उत्तर की ओर आये थे। उनके बड़े भाई कीर्तिराज का शासन वाराणसी पर था। नान्यदेव अपने समय के देशी रागों और तालों के उत्कृष्ट ज्ञाता थे ही, वे भारत के प्राचीन संगीत से भी भली भांति परिचित थे। अतः उन्होंने संगीत पर एक बृहद् ग्रन्थ ७००० श्लोकों का १७ अध्यायों में लिखा, जिसका नाम उन्होंने 'सरस्वती–हृदयलंकार' दिया है। किसी किसी अध्याय के अंत

में 'सरस्वतीहृदयभूषण' भी मिलता है और एक-दो अध्यायों में 'भरत-भाष्य' नाम भी मिलता है। हमारे देश का सौभाग्य यह है कि संगीत पर पर्याप्त संख्या में प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं और दुर्भाग्य यह है कि उनकी प्रतियाँ ऐसे व्यवसायी लिपिकों के द्वारा तैयार की गई हैं, जिन्हें न संस्कृतभाषा का अच्छा ज्ञान था, न विषय का। परिणाम यह हुआ है कि अधिक ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ बहुत ही अशुद्ध और खण्डित हैं।

नान्यदेव का ग्रन्थ प्राय: भरतभाष्य कहा जाता है, किन्तु वास्तव में वह केवल भरत के नाट्यशास्त्र का भाष्य नहीं है। वह भारत के समस्त शास्त्रीय संगीत का सर्वेक्षण है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मतंग का वाद्याध्याय उपलब्ध नहीं है। किन्तु उसका उद्धरण भरत-भाष्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। संगीतरत्नाकर में ध्रुवागीत, गीतक, गाथा इत्यादि का बहुत ही संक्षिप्त वर्णन है। भरत-भाष्य में इनका पर्याप्त वर्णन उपलब्ध है। प्राचीन वीणा, वेणु, पुष्कर इत्यादि का भी विवेचन **संगीतरत्नाकर** में बहुत संक्षिप्त है। भरत-भाष्य में इनका विस्तृत विवेचन मिलता है।

यह बड़े हर्ष का विषय है कि इस ग्रन्थ के मुद्रण और प्रकाशन का कार्य **इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,** खैरागढ़ (म. प्र.) ने अपने हाथ में लिया। मूल हस्तलिखित प्रति के दो अध्याय छन्दोऽध्याय तथा भाषाध्याय विलुप्त हैं। और अध्यायों में कई स्थलों में वर्णनीय विषयों का संमिश्रण हो गया है। इसका प्रथम खण्ड प्रख्यात विद्वान् श्री **चैतन्य पुण्डरीक देसाई** द्वारा सम्पादित हुआ और वह १९६१ ई० में प्रकाशित हुआ। धनाभाव के कारण इसके अन्य खण्ड अभी तक प्रकाशित न हो सके थे। १५ वर्ष के बाद अब इसका दूसरा खण्ड प्रकाशित हो रहा है।

प्रथम खण्ड में कुल पाँच अध्याय छप सके थे। इसके द्वितीय खण्ड में केवल दो ही अध्याय– जात्यध्याय और रागाध्याय प्रकाशित हो सके हैं। जात्यध्याय का इतना विस्तृत विवेचन अन्य किसी ग्रन्थ में मिलना कठिन है। पहले जाति का स्वरसन्निवेश दिया गयाहै। पुन: स्वरलिपि के साथ पद दिया गया है, फिर स्वरों के द्वारा अपन्यास, विन्यास, संन्यास इत्यादि खण्डों का विवेचन किया गया है। छठें अध्याय के एकादश प्रकरण में कपाल-पाणिका का विस्तृत वर्णन है।

सातवां रागाध्याय है। इसमें तीन प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण में शुद्धा, भिन्ना इत्यादि गीतियों का उल्लेख है, फिर राग के गान के काल का उल्लेख है। दूसरे प्रकरण में रागभाषादिभेद का वर्णन है। तीसरे प्रकरण में ग्रामराग, भाषा इत्यादि रागों का विवेचन है। इसमें प्रत्येक राग के स्वरों के द्वारा आलापक और रूपक दिये गये हैं।

संगीत एक क्रियात्मक विद्या है। इसका पूर्ण विवेचन शब्दों के द्वारा असम्भव है। प्राचीन संगीत लुप्त हो चुका है। उसका स्वरों के द्वारा जो ग्रन्थों में संकेत मिलता है, वह अत्यल्प है। जब वह संगीत जीवित था, तब अल्प संकेत से भी काम चल सकता था। किन्तु अब तो उससे अधिक संकेत की आवश्यकता है। दूसरी कठिनाई है शुद्ध पाठ की। श्लोकों की साधारण अशुद्धि की व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से तो कुछ शुद्धि हो सकती है, किन्तु लिपिक ने यदि प्रमाद, भ्रम और विषय के अज्ञानवश स्वरों के पाठ में अशुद्धि की है, तो उसको शुद्ध करना अत्यन्त दुष्कर है। स्वर के नीचे या ऊपर एक बिन्दु की अशुद्धि से राग का रूप नष्ट हो सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों को समझने के लिए संस्कृत भाषा का और संगीत विद्या का क्रियात्मक ज्ञान, दोनों नितान्त आवश्यक हैं। इस प्रकार के संगीतज्ञ देश भर में ६–७ से अधिक कदाचित् ही मिलेंगे। यदि प्रशासकीय स्तर पर उचित साधनों के सहित वे एक या दो वर्ष के लिए किसी विशेष स्थान पर एकत्र किये जायँ और पारस्परिक विचार–विमर्श द्वारा प्राचीन ग्रन्थों का अनुशीलन करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचे, तो सम्भव है कि प्राचीन संगीत की एक साधारण–सी रूपरेखा बन सके।

नान्यदेव ने भरतभाष्य के पाठ के विषय में श्री मानवल्लि **रामकृष्ण कवि** ने लिखा है :–

" The manuscript is so erroneous that any attempt at Correction must result in producing a new book. "

अर्थात् इसकी हस्तलिखित प्रति इतनी अशुद्ध है कि इसको शुद्ध करने के प्रयत्न में एक नई पुस्तक बन जायगी। श्री रामकृष्ण कवि की इस उक्ति से सरलतापूर्वक जाना जा सकता है कि इसके सम्पादन में श्री **चैतन्य पुण्डरीक देसाई** को कितना श्रम करना पड़ा होगा।

श्री देसाई संस्कृत के विद्वान् हैं, संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ हैं और संगीत विद्या के क्रियात्मक पक्ष में भी पूर्णतया निष्णात हैं। तभी वह इतनी अशुद्ध प्रतिलिपि का सफलतापूर्वक सम्पादन करने में समर्थ हुए हैं। इसके पहले खण्ड में उन्होंने बहुत ही विस्तृत टिप्पणियाँ लिखी हैं। इसके दूसरे खण्ड में स्थानाभाव के कारण विस्तृत टिप्पणियाँ लिखना सम्भव नहीं था। फिर भी उन्होंने जितनी टिप्पणियाँ लिखी हैं, वे बहुत सारगर्भित और उद्बोधक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में संस्कृत–शब्दों के शोधन में **आचार्य रमाशंकर मिश्र** ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

मुझे पूर्ण आशा है कि इस ग्रन्थ को विद्वत्समाज में यथेष्ट समादर मिलेगा। इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय को इसके अवशिष्ट अध्यायों को शीघ्र प्रकाशित कराना चाहिए।

जयदेवसिंह

संपादकीय

भरतभाष्य के द्वितीय खण्ड की प्रतीक्षा करने वाले पाठकों के हाथ में यह ग्रन्थ अर्पित करते हुए मुझे हर्ष होना स्वाभाविक है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शोध–कार्य की तरह यह कार्य भी श्रम–साध्य था। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि अत्यन्त भ्रष्ट है। प्रति ने काल के थपेड़ों के निर्मम प्रहार झेले हैं। ज्ञान की यह भागीरथी बीच बीच में सरस्वती की तरह लुप्त हो जाती है। ऐसे स्थलों को अपपठित एवं खण्डित शब्दों एवं वाक्यों का पूर्वापर संबंध स्थापित करके तथा प्राचीन ग्रन्थों में उनके आधारों को खोजकर शुद्ध किया गया है। कभी लुप्त शब्दों की पूर्ति भी करनी पड़ी है। यह कार्य अत्यन्त सजगता से किया गया है। ऐसा न करने पर कुछ वाक्यों या श्लोकों का कुछ भी अर्थ निकालना असंभव था, तथापि ग्रन्थ के कुछ श्लोकों के भ्रष्ट पाठ को शुद्ध नहीं किया जा सका है, क्योंकि वे नितांत अबोधगम्य थे।

इस खण्ड में सम्पूर्ण **जात्यध्याय** तथा **रागाध्याय** का लगभग आधे से अधिक अंश का समावेश किया गया है। ऐसा करना हमारी विवशता थी। **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग** (नई दिल्ली) द्वारा निर्धारित अनुदान–राशि के अनुसार इस खण्ड के पृष्ठों की सीमा ३५० तक ही रखी गई है। परिणामस्वरूप, इस खण्ड में सम्पूर्ण रागाध्याय का समावेश नहीं हो सका। इस अवशिष्ट अंश तथा तालाध्याय का संपादन–कार्य पूर्ण हो चुका है, जिसे तृतीय खण्ड में सम्मिलित किया जा सकेगा। तृतीय खण्ड में तालाध्याय के अतिरिक्त सप्त–गीतकाध्याय, ध्रुवाध्याय आदि प्रकाशित हो सकेंगे। अधिकांश अवशिष्ट अध्याय दीर्घकाय हैं। अतः ग्रन्थ के चौथे खण्ड का प्रकाशन भी आवश्यक हो सकता है।

ग्रन्थ के संपादन में अनुसंधान–परक दृष्टि आद्यन्त रखी गई है। तदनुसार स्थान–स्थान पर आवश्यकतानुसार ग्रन्थ में टिप्पणियाँ दी गई हैं। जातियों की रचना के सिद्धान्तों एवं जाति–प्रकारों के निर्माण के नियम श्रमपूर्वक खोजकर स्पष्ट किये गये हैं। विषयानुसार रागों के विषय में ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गई हैं तथा पाठ–भेद एवं रूप–भेद की चर्चा भी की गई है। आशा है कि इससे ग्रन्थ की उपयुक्तता बढ़ेगी। इस प्रकार की किसी प्राचीन पाण्डुलिपि का शुद्धीकरण

एवं संपादन कर उसे प्रकाशित करने में सामान्य प्रकाशन से कुछ गुना अधिक समय लगता है। यदि साधनों का अभाव हो, तो समस्या और भी जटिल हो जाती है। इन सभी समस्याओं से तो हमें जूझना ही था, किन्तु उनके अतिरिक्त कुछ अन्य व्यवधानों के कारण भी इस खण्ड के प्रकाशन में विलम्ब हुआ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में विश्वविद्यालय के अनुसंधान विभाग के संस्कृत–मर्मज्ञ **आचार्य श्री रमाशंकर मिश्र** अत्यन्त सहयोगी रहे। उन्होंने ग्रन्थ के भ्रष्ट तथा खण्डित शब्दों और वाक्यों को संस्कृत भाषा की दृष्टि से शुद्ध तथा पूर्ण करने का जटिल कार्य परिश्रम तथा लगन से सिद्ध किया।

इस ग्रन्थ के अन्तर्गत शोधित एवं पूरित शब्दों के विषय में विद्वानों में मतभेद हो सकता है। किन्तु यह दुरूह कार्य हमने यथामति किया है। वस्तुतः किसी भी लुप्त ग्रन्थ का संपादन, कार्य का अंत नहीं, बल्कि प्रारम्भ होता है। खैरागढ़ विश्वविद्यालय द्वारा प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना **स्व० डा० श्रीकृष्ण रातांजनकर** जी ने बनाई थी। इस अवसर पर उनकी याद आना स्वाभाविक है। द्वितीय खण्ड के प्रस्तुत प्रकाशन को देखने के लिए वे अब नहीं रहे। उनके प्रति मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

डा० रातांजनकर की इस योजना को उनके पश्चात् आनेवाले उपकुलपतियों ने भी आगे बढ़ाया। वर्तमान उपकुलपति **श्री गुलाबचंद जैन** ने भी इस कार्य को प्रोत्साहन दिया। अतः मैं उनका आभारी हूँ।

'नारायण मुद्रणालय' (नागपुर) के व्यवस्थापक **श्री बनहट्टीजी** ने इस ग्रन्थ का स्वच्छ एवं सुन्दर मुद्रण किया है, जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इतने अथक प्रयत्नों के उपरान्त ग्रन्थ में कई त्रुटियाँ रह गई हैं, जिनके लिए मैं गुणग्राही विद्वज्जनों का क्षमाप्रार्थी हूँ।

विनयावनत;

चैतन्य देसाई

BHARATABHASHYA OF NANYADEVA

There are still many a Sanskrit work of old on music, unpublished, that are lying in various Government Libraries in manuscript form and *Bharata–Bhāshya* ranks topmost among them, as it is a big work, dealing with all the topics of music (except dance), especially such as had been given by *Bharata Muni* in his *Nātya–Shāstra*. *Matanga's Bṛhaddeshi* is also more or less an exposition of *Bharata's* system but it refers only to such topics as *Śruti, Grāma, Moorchanā, Sādhāraṇa, Tāna, Jāti, Grāma–rāga Deshi-rāga* and *Deshi-Prabandha*. *Matanga's* treatment is brief, as he has not dealt with such important features of *Bharata's* system as *Dhruvā*; *Sapta-geeta*, *Tāla*, etc. while the chapter dealing with ancient musical instruments from *Bṛhaddeshi* is lost. *Sangeet Ratnākar* gives wide information about ancient Indian music, but his treatment is condensed and he had to drop many items of ancient musical system, as his main object was to cover the contemporary musical systems as well as the system that was in vogue in the near past. So, he leaves aside the *Dhruvās*, the chief topic of *Bharata's* system and avoids purposely to describe the various ancient instruments, that had become obsolete in his own times, as he himself has said :—

> " प्रोक्तं मृदङ्गशब्देन मुनिना पुष्करत्रयम् ।
> अत्यन्ताव्यवहार्यत्वात् निःशङ्को न तनोति तत् ।। "
>
> (६।१०२८)

In short, as *Bharata–Bhāshya* gives all the possible details of *Bharata's* musical system, its great importance to the student of ancient Indian music cannot be over–rated.

Description of the Script

The Manuscript of *Bharata-Bhāshya* is kept in the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona. It is the only script of *Bharata–Bhāshya* available, as the other script at Kathiawar is said to be lost. It covers 221 pages ($11\frac{1}{2}'' \times 4\frac{7}{8}''$) written in clear and legible hand. It is worn out in appearance and some of its leaves are partly torn, water–spilt, moth–eaten and even missing ! The

present script contains only 15 chapters out of the 17 chapters containing approximately 7,000 Ślokas; and if we grant not more than 3,000 *ślokas* for the two chapters which are missing on prose and prosody, we get a round number of 10,000 *ślokas* of the complete work, which shows it to be larger than *Nāṭya–Shāstra*, which has nearly 6,000 *ś'okas* and also *Ratnākara* which contains not more than 5,000 *ślokas.*

The text of the script in many places is incorrect and broken. Some sheets are missing here and there and copied matter from the original may also perhaps be defective and imperfect. The copyist also could not read the original properly, says Shri **Kavi.** In fact, as the matter on the pages show, some sheets of the original from which the present script was copied were got mixed up and that is why we find the matter of some chapters in other chapters also in the present manuscript, as it is.

Identity of the Author

The learned Dr. **P. K. Gode**, the Curator of the Poona Institute, who is also the Editor of the Manuscript Catalogue Vol XII, has with much labour given some information about the nature and contents of *Bharata–Bhāshya* and has also cited some portion from the articles on *Bharata-Bhāshya* written by Shri Kavi, the famous editor of Baroda *Nāṭya-Shāstra* edition. Shri M. R. Kavi identifies this *Nānyadeva* with the *Nānyadeva* of Mithilā (1097 to 1133 A. D.) and states that "*Nānyadeva* was probably the ancestor of the present royal family of Nepal and a scion of the *Rāshtrakūta* family." (vide– Journal, Andhra H. R. Society Vol. I and Vol. III). From what *Nānyadeva* says about himself in *Bharata-Bhāshya* it is beyond doubt that he was a king of Mithilā :—

(i) 'तेनाऽयं मिथिलेश्वरेण रचितोऽध्यायोऽवनद्धाभिधः ।'
(Folio 291)

(ii) 'इति महासामन्ताधिपति–धर्मावलोक–श्रीमन्नान्यपति–विरचिते ।'
(Folio 221)

(iii) 'कथितं शास्त्रसुगमितं मिथिलानाथेन नान्यदेवेन ।'
(Folio 197)

(iv) 'नान्येन भूमी–भुजा' (Folio 17)

At one or two places he gives his name as *Nārāyaṇa* [क्ष्मापाल–नारायणः' (Fol. 17) etc.] and so *Nānya* may be a short or colloquial form of *Nārāyaṇa.*

It seems, *Nānyadeva* had compiled another work *'Granth-mahārṇava'*, by name.

Real Title 'Sarasvatihṛdayālaṁkāra'

Though *Nānya's* present work is commonly known as *Bharata-Bhāshya* or *Bharata-Vārtika*, its real name as has been given by its author himself is *'Saraswatī-hṛdayālaṁkāra'* which almost all colophones indicate :—

(i) 'सरस्वतीहृदयभूषणे भरतभाष्ये प्रथमोऽध्याय: ।' (Folio 5)
(ii) 'सरस्वतीहृदयभूषणे भरतभाष्ये द्वितीय: ।' (Folio 8)
(iii) 'सरस्वतीहृदयालङ्कारहारनाम्नि भरतभाष्ये श्रुत्यध्यायस्तृतीय: ।' (Folio 12)
(iv) 'सरस्वतीहृदयालङ्कारे तानाध्याय: ।' (Folio 17)
(v) 'इति नान्यदेवविरचिते भरतभाष्ये जातिकाध्याय: ।' (Folio 63)
(vi) 'सरस्वतीहृदयालङ्कारहारनाम्नि भरतभाष्ये सप्तम: ।' (Folio 116)
(vii) 'सरस्वतीहृदयालङ्कारहारनाम्नि भरतवार्तिके... ।' (Folio 221)

From the above colophones, it will be seen that the author also uses the name *Bharata-Bhāshya* or *Bharata-Vārtika* with *'Sarasvatī-hṛdayālaṁkāra'* nearly every time. Shri Kavi concludes, "The work is called *Bharata-Bhāshya* or *Bharata-Vārtika*......... no work is yet specifically known as *Bharata-Bhāshya*. *Nānyadeva* designates his work *'Saraswatī-hṛdayālaṁkāra* and the appellation instantly reminds one of *'Sarasvatī-kanṭhābharaṇa'* of *Bhojadeva*." (vide-Poona Mannscript Catalogue XII, P. 382).

Nature of Bharata-Bhashya

As said above the aim of *Bharata-Bhāshya* is to elucidate the system of music, as given by sage *Bharata* in his *Nāṭya-Shāstra*. *Bharata* has treated music as applied to the theatre in his times and *Nānyadeva* has expanded that strain of music, i. e. chiefly *Jātis* and *Dhruvās* and the kind of instrumental music which was mainly played at dramatical Performances.

Rāga music is mainly hall-music, though it had been in vogue at the times of *Bharata*, as I have shown elsewhere. For the sake of brevity, *Bharata* has not described *rāgas* though he has mentioned seven *grāmarāgas* and their application to drama on particular occasions (*Nāṭya-Śāstra* 32/453). *Kaśyapa*, who was probably a contemporary of *Bharata* and the immediate successor *Kohala*, as well as *Matanga*, who flourished after some 500 years, had treated

the subject of *rāgas* at length. *Nānyadeva* has followed *Kaśyapa* and *Matanga* in describing *rāgas,* which means that though *Nānyadeva* might have added some new matter to ancient *rāga* systems, he had nothing to add to other topics of ancient music. Shri Kavi has well said, "*Bharata–Bhāshya* is a versified commentary of *Bharata's Nāṭya–Shāstra* from chapters XXVIII to XXXIV, which deal with music in all its aspects related to the theatre. *Nānyadeva* closely follows *Abhinavagupta* who died about 1030 A. D. *Nānyadeva* has introduced much new matter in his treatment of *Jātis* and *Rāgas* which in not found in *Bharata's* or *Abhinava's* works." (vide–Poona MSS Cat. XII, P. 383). Dr. Gode has also described *Bharata–Bhāshya* well in brief:–" The work treats of music proper. Every step in the advancement of music has been closely traced to the rites of the vedic epoch and every instrument brought face to face with, that used in the sacrificial rites. The work gives full information on every subject except on flute. Some chapters treat of *Sapta–geetas, Deśī–geetae* and the ancient *Tāla* system, now obsolete. The work gives details about 140 *rāgas* and quotes from *Dattila, Kaśyapa* and *Mataṅga* " (P. 379). Dr. Gode's statement above about the subject of flute, is incorrect, as chapter XIII of *Bharata–Bhāshya,* i. e. folios 195–201 of the manuscript, treats the subject of flute and other instruments under the name 'Suṣirādhyāya', the name of which Dr. Gode himself has mentioned in his list of chapters and also given in the list by Shri Kavi, which he has cited. *Ratnākar,* who followed *Nānyadeva* nearly 300 years after, has quoted *Nānyadeva* as a reference and after comparing both the works one can form an opinion that *Ratnākar* is obliged for much of his information about ancient music to *Nānyadeva.*

Bharata has divided subjects of *Nāṭya* (or *Abhinaya*) in four categories, viz., *Vācika, Āṅgika, Sātvika* and *Āhārya,* out of which *Nānyadeva* has dealt with the first and so calls his work as 'Vācikāṁśa':—

(i) 'एतत्सर्वं तु विज्ञेयं वाचिकांशस्य संग्रहे ।'

(Ch. I, F. 3)

(ii) 'इति...भरतवार्तिके वाचिकांशे पुष्कराध्याय: ... ।'

(Ch. XV, F. 221)

As *Vācikāṁśa* contains music as well as dialogues, *Nānyadeva* devoted the last two chapters to discuss and describe various languages, Sanskrit and various Prakrits, as well as Prosody in relation to stage. To our dismay, these two chapters are lost !

I give below a list of some topics which are treated specially in *Bharata-Bhāshya* :—

(I) *Varṇotpatti* (Folio 6), *Udāttādi Swara* (Folio 7), *Kruṣṭādi Sāmavaidika Swara* (Folio 7), *Swara-Sāraṇā* and *Aṅguli-chālanā* (Folio 8).

(II) *Gāyatryādi Chandah Svara* (F. 9); *Grāmabheda Nirūpaṇa*, *Śruti-rekhā-Koṣṭaka* (F. 10), *Grāmaviśiṣṭa Swara Sanniveśa* (F. 20); 95 variations of *Shādji Jāti* on *Grohādi-vikriti* basis (F. 24 to 35); Numerous instances of *Kapāla* and *Pāṇikā* songs with notation (F. 46-63); *Rāga-Devatā and Rāga-Samaya* (F. 76); *Saptadhā Gamak* (F. 75); meaning of *Bhāṣā*, *Vibhāṣā*, etc., i. e. *Rāgas* (F. 77); *Gāndhāra-Grāmik-Rāgas* and *Bhāṣās* (F. 79); *Sapta-Geeta* i. e. *Āsārita*, *Vardhamānaka*, *Ullopya*, *Ṛk*, *Sāma*, *Gāthā*, etc. with numerous instances of songs (Ch. XIII, F. 116-140); various *Dhruvā-chanda* and the application of *Tālas* to *Dhruvā-Varṇas* (Ch. IX, F. 140-176); *Tālas* and their application to various *Prabanbhas* (Ch X, F. 176-181); *Deshi-Geetas*, their instances in song and the application of *Tālas* to them (Ch. XI, F. 167-176); Various string instruments, viz., *Koormā*, *Kinnari*, *Pinākí*, *Sāravī* etc. *Veenā-Nirmāṇa*; *Svara-vinyās* & *Sruti-vinyās* on *Veeṇā-daṇḍa*; *Veeṇā* with one, two, three strings with as many notes, upto one hundred strings *(Shata-tantri)*, all these instruments being used in *Yajnas*; *Citrā*, *Vipancī*, *Mahati Veeṇas*, *Nāgākhyabandha*, *Rāgākhyabandha* etc.; the method of playing *Veeṇās*, (Ch. XIII, F. 181-195); Two kinds of *Śankha* instrument (F. 195); measures for distance of note-holes on flute, for *Dwi-śrutik*, *Tri-śrutik* and *Catuh-śrutik* notes of each of the three *grāmas* (F. 196); *Udāttādi* on flute (F 197); Fingering (F. 198); *Muktārdhamuktādi* fingering for producing *Catuh-śrutik*, *Tri-Śrutik*, and *Dwi-Śrutik* notes in two *Grāma*s (vide-Bharat, F. 198); playing of *Ṣadjagrāmarāga* and *Madhyamagrāmarāga* on flute (F. 199); Description of drums as *Puṣkara*, *Mṛdaṅga*, *Āliṅgya*, *Ūrdhavaka*, *Trikulyā*, *Damaru*, *Paṭaha*, *Dundubhi*, *Paṇava*, *Dardura* and the mathod of playing them (Ch. XV, F. 201-207); *Varṇas (Bols)* to be played as formed by combination of certain *Vyañjanas* and *Svaras*, viz., 'Ta-tā-ti-te', 'Da-du-de-do' etc., and method for manipulation of hands and fingers on drums (F. 208-209); *Mārga*, *Graha-moksha*, *Prahāra* (F. 210-212); *Dardura-Paṇava-Mishrita Vādana*, *Pracāra*, *Ogha* (F. 213); *Yati*, *Pāṇi*, *Laya*, *Sancaya*, eighteen kinds of *Vādana-Jātis* and particular *Jātis (Gat Paran)* to be played to the accompaniment of a parti-

cular mood or movement of the personages in drama (F. 213-218); 20 kinds of *Sālaṅkāra-Vādana* (F. 218); Drum playing with dance and in drama (F. 219-221).

The above mentioned short list of the subjects specially dealt with in *Bharata-Bhāshya* will show its unique place in the studies in ancient Indian music, particularly belonging to the ages of *Bharatamuni*.

The arrangement of chapters

Dr. **P. K. Gode's,** as well as Shri **M. R. Kavi's** account of the chapters are not correct, nor complete. Dr. **Gode** says that chapters 8, 9 and 10 are not found in the MS. Shri **Kavi** concludes that chapters 15th and 16th are missing !

Nānyadeva has given the index of the chapters at the beginning. Again he has mentioned the subject-heads of the 3rd to the 10th chapters in the following anouncement :—

" श्रुत्यध्याये च तानाख्येऽलङ्काराध्याय एव च । " etc.

(Folio 190)

and again has referred about 8th to 11th chapters in the following ślokas :—

" .... रागोत्पत्ति निवेदिता ।
तेषु रागेषु गीतानि ब्रह्माद्युक्तानि यानि तु । " etc.

(Folio 190)

The first folio of the MS. is lost and some one has replaced it by a page containing some 25 ślokas from Puṇḍarīka's सद्राग-चन्द्रोदय beginning with the line :—

" बञ्हाकारैर्विरचित-वपु: " etc., which may baffle a novice !

In the index given by the author, there is mess about Tālādhyāya, and Suṣirādhyāya is mentioned twice.

The matter of the ch. 4th dealing with Mūrchanā and the 5th about Alaṅkāras have been mixed with the matter of 6th and 7th chapters and therefore we have to seek and collect it from these latter chapters. ch. on Tāla is also in dispersed condition.

There is also repetition of some matter of chs. on śruti, mūrchanā, alaṅkāra, jāti and rāga.

प्राचीन संगीत : एक दृष्टि

जातियों के रूपों की सिद्धि

१. ग्राम

१ : ग्राम की व्याख्या

भरत ने दो ग्रामों अर्थात् मूल स्वर-सप्तकों को कहा है। अन्यों ने तीसरे गान्धारग्राम को लुप्त कहा है। संवाद-बद्ध स्वर-सप्तक को ग्राम संज्ञा देते थे :-

(a) "यथा कुटुम्बिनः" इ०। (**बृ० दे०**, पृ. २०, श्लो० ९०)

(b) "न अव्यवस्थिततया उच्चारितः स्वर-समूहः।" (**सं० र०** I, पृ० १०१, **सिं०**) इत्यादि। परन्तु ग्रामों के स्वर-संवादों को तथा स्वर-स्थानों को समझना सरल नहीं है।

२ : प्राचीन स्वर-संवाद तथा द्विश्रुतिक स्वर

भरतादिकों ने प्रत्येक स्वरान्तर (interval) या स्वरों का ध्वनि-मूल्य 'श्रुति' नामक सूक्ष्म २२ स्वरान्तरों द्वारा प्रदर्शित किया है तथा जब एक स्वर किसी दूसरे स्वर से ९ वीं अथवा १३ वीं श्रुति पर स्थित हो, तब उन दोनों को परस्पर संवादी माने हैं। जैसे की स-म, स-प, ग-नि, रि-ध अथवा इसके उल्टे। परन्तु दो स्वर सम-श्रुतिक हों तभी उनका परस्पर संवाद माना जाता है, ऐसा विशेष नियम इस विषय में **मतङ्ग** तथा **अभिनवगुप्त** ने दिया है (**बृ० दे०**, पृ० १४, **ना० शा०** IV, पृ० १७,१८)। मध्यम से निषाद ९ वीं श्रुति पर होते हुए भी उन दोनों का संवाद नहीं है तथा मध्यम ग्रामिक ऋषभ-धैवत का संवाद नहीं होता है, ऐसा **अभिनवगुप्त** ने कहा है एवं इस विषय में उसने जातियों के वर्जावर्ज स्वरों के उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं (IV; पृ० १७)। पश्चात्कालीन **कल्लिनाथ** तथा **सिंहभूपाल** ने मध्यम-निषादों को परस्पर संवादी कहा है। **भरत** द्वारा दी गयी संवादी स्वरों की सूची में भी मध्यम-निषादों का अन्तर्भाव नहीं किया गया है (IV, पृ० १५)। प्राचीन शुद्ध निषाद को

९ श्रुति के आधार पर मध्यम का संवादी मानने पर प्राचीन शुद्ध गान्धार–निषाद मध्यमभावी कोमल गान्धार–निषाद के रूप में प्राप्त होते हैं एवं आधुनिक विद्वानों ने इन्हींको स्वीकार किया है।

प्राचीन चतुःश्रुतिक अन्तर, जो मध्यम तथा पञ्चम के मध्य में रहा हुआ है, एक पूर्ण स्वरान्तर (major tone) है। कतिपय विद्वान् आधुनिक विज्ञान का आश्रय लेकर त्रिश्रुतिक स्वरान्तर को $\frac{१०}{९}$ तथा द्विश्रुतिक को $\frac{१६}{१५}$ मानते हैं। इन स्वरान्तरों को प्राचीन ग्रंथों के आधार से सिद्ध करना अशक्य ही है, क्योंकि **भरत–मतङ्गादि** प्राचीन ग्रंथकारों ने अपने स्वर–स्थान तार की लंबाई के विभाग इत्यादि उपकरणों द्वारा नहीं बताये हैं।

३ : त्रिश्रुतिक स्वर

अभिनवगुप्त ने त्रिश्रुतिक स्वरों को वैदिक 'कम्पित स्वरित' स्वर कहा है। कम्पन के कारण ये स्वर चतुःश्रुतिक तथा द्विश्रुतिक अन्तरों के मध्य में हिलते रहते हैं (IV, पृ० १४)। **भरत** ने भी वंश के ऊपर त्रिश्रुतिक स्वर को कम्पित अंगुलि से निकालने की रीति बतलायी है (३०।५)। इन कथनों को ध्यान में लेते हुए त्रिश्रुतिक स्वरों को minor tone ($\frac{१०}{९}$ अनुपात वाले) मानने में बाधा आती है।

४ : षड्जग्राम = खमाज ठाठ

भरत ने दोनों ग्रामों का आधार–स्वर मध्यम को माना है, अतः मध्यम को अविनाशी कहा है (२८।६५)। **भरत** ने षड्जग्राम तथा उसमें षड्ज को प्रथम स्थान दिया है। **मतंग, अभिनवगुप्त** तथा **नान्यदेव** ने षड्जग्राम को 'षड्ज–प्रधान' कहा है (**बृ० दे०** पृ० २१, **ना० शा०** IV, पृष्ठ १४; **भ० भा०** I, पृ० ७२) परन्तु भरतोक्त संगीत–पद्धति में ऐसी व्यवस्था को मानने के लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है। उपरान्त, भरत–पश्चात्–वर्ती सभी प्राचीन ग्रन्थकारों ने दोनों–तीनों ग्रामों में मध्यम को ही अविनाशी कहा है।

षड्जग्राम में मध्यम को आधार–स्वर (tonic) मानने पर षड्जग्राम का स्वर–सप्तक प्रचलित **खमाज ठाठ** के सदृश उत्पन्न होता है :–

(a) षड्जग्राम :–सा३ रि२ ग४ म४ प३ ध२ नि४ सां

(b) मध्यमाधारित षड्जग्राम } (म ४ प ३ ध २ नि ४ सा ३ रि २ ग ४ म =)
सा ४ रि ३ ग २ म ४ प ३ ध २ नि ४ सां

५ : षड्जग्राम Plagal mode

ग्रीक संगीत के स्वर–सप्तक में भी मध्यम स्वर (mese) अविनाशी था। प्राचीन काल में ऐसे स्वर–सप्तकों– जिनमें तृतीय या चतुर्थ स्वर प्रबल (dominant)

होता था– का प्रचलन था। मध्यम tonic हो और उससे निम्नस्थ चौथा स्वर षड्ज प्रबल हो, तो ऐसे स्वर–सप्तक को Plagal mode कहते थे। इस प्रकार के स्वर–सप्तक आज भी Ecclesiastical Music में अर्थात् क्रिश्चन प्रार्थना–संगीत में प्रयुक्त होते हैं।

६ : षड्जग्राम = "उतरी काफी"?

हमारे आधुनिक विद्वान् षड्जग्राम में षड्ज को आधार–स्वर (tonic) मानते हैं तथा उसमें मध्यम–भाव–जन्य स्वरों का स्वीकार करते हैं। मध्यम–भावी रि–ग–ध–नि स्वर वैज्ञानिक स्वरों से थोड़े उतरे होते हैं। अतः इस सप्तक को 'उतरी काफी' नाम आधुनिक विद्वानों ने दिया है। परन्तु षड्जाधारित षड्जग्राम में मध्यम–भावी स्वरों का अस्तित्व होना असंभव तथा अव्यवहार्य भी है।

७ : 'देशी' संगीत में षड्जग्राम

मतङ्ग के समय में ही प्राचीन अर्थात् साम–गानाधारित जाति–ग्राम–रूप **गान्धर्व संगीत** में बहुत परिवर्तन होकर **देशी संगीत** उत्पन्न हुआ। इस परिवर्तन का ब्योरा **अभिनवगुप्त** ने दिया है (IV, पृ० ३९४)। परिवर्तन की कुछ चर्चा **कल्लिनाथ** ने भी की है (II, पृ० ९८)

८ : षड्जग्राम प्रचलित काफी ठाठ

प्रचलित काफी ठाठ का ऋषभ पञ्चम–संवादी है, अतः श्रुति–संख्या के गणनानुसार यह ऋषभ चतुःश्रुतिक होता है। धैवत को इस ऋषभ का संवादी माना जाय तो वह भी चतुःश्रुतिक (=पञ्चम–भावी) होगा। काफी में कोमल गान्धार–निषाद वैज्ञानिक प्रयुक्त होते हैं, प्राचीन ष० ग्राम के स्वरों की काफी के स्वरो के साथ तुलना श्रुति–संख्यानुसार निम्नोक्त प्रकार से होगी :–

ष० ग्रामः–सा ३ रि २ ग ४ म ४ प ३ ध २ नि ४ सां

काफीः– सा ४ रि २ ग ३ म ४ प ४ ध २ नि ३ सां

काफी के कोमल गान्धार–निषाद षट्–श्रुतिक हैं। अतः षड्जग्राम के **ग–नि** से एक श्रुति चढ़े हैं। इनको दाक्षिणात्य पद्धति में षट्–श्रुतिक अथवा **'साधारण'** गान्धार–निषाद कहते हैं, जो कि यह संज्ञा शास्त्रानुसार भ्रामक है।

९ : मध्यमग्राम

म० ग्रामिक स्वरों का **श्रुति–मूल्य** षड्जग्राम की तुलना में निम्नानुसार है :–

ष० ग्राम :–सा ३ रि २ ग ४ म ४ प ३ ध २ नि ४ सां

म० ग्राम :–सा ३ रि २ ग ४ म ३ प ४ ध २ नि ४ सां

अर्थात् म० ग्रामिक **प** तीन श्रुति का तथा **ध** ४ श्रुति का है। म० ग्राम को मध्यम से प्रारम्भ करने पर उसके स्वर इस प्रकार होंगे :–

म ३ प ४ ध–––––२ नि ४ सां ३ रिं २ मं ४ मं

= सा ३ रि ४ अन्तर ग २ म ४ प ३ ध २ नि ४ सां

मध्यमग्राम को षड्ज से प्रारम्भ करने पर **त्रिश्रुतिक पञ्चम** प्राप्त होता है, जो संगीत में अप्रयोज्य होगा। परन्तु मध्यमग्राम को मध्यमाधारित मानने पर इस त्रिश्रुतिक पञ्चम का त्रिश्रुतिक ऋषभ बन जाता है। फलतः 'उतरा' –रि–युक्तखमाज ठाठ उत्पन्न होता है।

इस प्रकार के मध्यमग्राम से अन्तर गान्धार की प्राप्ति होती है, अतः मान सकते हैं कि अन्तर गान्धार का प्रादुर्भाव इसी प्रकार से हुआ होगा तथा षड्जग्राम में इस गान्धार के प्रतिनिधि के रूप में काकली निषाद उत्पन्न हुआ होगा।

१० : द्विविधैव मूर्छना

हार्प के सदृश प्राचीन वीणा में एक ग्राम से दूसरे ग्राम को आसानी से करने की रीति को **भरत** ने 'द्विविधैव मूर्छना' नाम से कही है। यह रीति इस प्रकार है :–

षड्जग्रामिक शुद्ध गान्धार को दो श्रुति चढ़ा कर (अर्थात् अन्तर गान्धार बनाकर) षड्ज को मध्यम समझा जाने से षड्जग्राम का मध्यमग्राम आसानी से बन जायेगा (IV, पृ० २६)। एवं इसके विपरीत क्रिया करने से म० ग्राम का ष० ग्राम बन जायेगा, क्योंकि चतुःश्रुतिक गान्धार म० ग्रामिक धैवत हो जायेगा। इस योजना से एक ग्राम के अन्य स्वर दूसरे ग्राम के अन्य स्वरों से यथायोग्य मिल जाते हैं। इस प्रक्रिया को over–lapping नाम दे सकते हैं। इस योजना से सिद्ध होता है कि अन्तर–गान्धार तथा धैवत परस्पर संवादी हैं, यद्यपि **भरत** ने इस प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त चतुःश्रुतिक गान्धार को अन्तर–गान्धार का नाम तक नहीं दिया है।

११ : गान्धारग्राम

गान्धारग्राम के स्वरों का श्रुति–मूल्य निम्नानुसार कहा गया है :–

सा, २ रि, ४ ग, ३ म, ३ प, ३ ध, ४ नि, ३ सां

इसमें रि कोमल, प त्रिश्रुतिक जैसे स्वर होते हैं। इस ग्राम को गान्धार से प्रारम्भ करने पर निम्न–निर्दिष्ट स्वर-सप्तक बनता है :–

सा, ३ रि, ३ ग, ३ म, ४ प, ३ ध, २ नि, ४ सां
।
(ग)

इससे 'उतरी काफी' का ही ठाठ प्राप्त होता है, परन्तु गान्धार षट्श्रुतिक अर्थात् कैशिक प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप यह ग्राम आगे चलकर लुप्त हो गया।

१२ : मार्जना-स्वर तथा ग्राम-सप्तक

जाति–ग्रामरागों के साथ संगत के लिए प्राचीन मृदंग के मुखों को लेपादि लगाकर ग्रामों के अनुसार आवश्यक स्वरों में मिलाने की क्रिया को **भरत** ने मार्जना कहा है। **षड्जग्रामिक** रागों के लिए मृदंग के दो मुखों तथा उर्ध्वक के स्वर निम्नानुसार बताये हैं :–

मृदंग में **षड्ज, ऋषभ** तथा उर्ध्वक में **धैवत** (= 'अर्धमायूरी')। **मध्यमग्रामिक** रागों के लिए निम्नोक्त 'मायूरी' मार्जना कही है :–

मृदंग में **गान्धार** तथा षड्ज एवं उर्ध्वक में पञ्चम (३४।११९, १२०)। इनके उपरान्त 'कामारिवी' मार्जना के लिए ऋषभ, षड्ज तथा पञ्चम स्वरों में इन वाद्यों को लगाने के लिए कहा है (३४।१२१)।

इन मार्जनाओं के लिए जो स्वर बताये गये हैं, उनसे ग्राम के स्वरों के संवाद का बोध नहीं होता है।

२. अन्तर–काकली

१ : प्राचीन शुद्ध अर्थात् द्विश्रुतिक गान्धार–निषाद को दो–दो श्रुति चढ़ाने से क्रमशः अन्तर तथा काकली स्वरों का निर्माण होता है, जो चतुःश्रुतिक माने गये हैं। **भरत** ने इन्हीं स्वरों को 'साधारण' संज्ञा दी है तथा एक ग्राम में एक साधारण–स्वर का उपयोग बताया है :–

(a) "स्वर-साधारणं काकल्यन्तर–स्वरौ।"

(b) "स्वर-साधारणं द्विविधं द्वैग्रामिक्यम्।" (२८।३५, पृ० ३२)

२ : **भरत** ने 'साधारण' संज्ञा का अर्थ निम्नोक्त वचन में काव्यात्मक दृष्टान्त द्वारा बताया है :–

"तत्र साधारणं नाम अन्तर–स्वरता। कस्मात्? द्वयोरन्तरे भवति यत् तत् साधारणम्। यथा– छायासु भवति शीतं प्रस्वेदो भवति आतपस्थस्य।" इ० (२८।३४, पृ० ३१)

अर्थात् "अन्तर–स्वरता ही साधारण है। दोनों के मध्य में जो होता है, उसको साधारण कहते हैं। इसका उदाहरण काल–साधारणता है, जो ऋतुओं में शिशिर के अन्त में तथा वसन्त के प्रारम्भ में अनुभव में आती है," इत्यादि।

३ : सारांश, अन्तर–काकली का निश्चित स्थान **भरत** द्वारा नहीं कहा जा सका है। **भरत** के वक्तव्य को **अभिनव** ने निम्नानुसार स्पष्ट किया हैं :–

"अन्तरे भवः अन्तरः, स्व-स्थान-च्युतः पर–स्थान-संक्रान्तः। स(?न)च असौ स्व-रक्तत्वं, न तु विस्वरम्, तस्य भावः साधारणम् इति।" (पृ० ३१)

[मुद्रित प्रति में "स च असौ स्वरक्तत्वं" ऐसा वाक्य है, परन्तु शास्त्रकारों ने अन्तर-काकली को स्वरत्व नहीं अर्पित किया है, अतः इस वाक्य का शुद्ध पाठ 'न च असौ स्व-रक्तत्वं' इस प्रकार होना चाहिए। आगे के शब्द 'न तु' हैं, जो वाक्य के पूर्वांश में भी अपेक्षित हैं।]

अर्थात् "अन्तर-काकली स्वर स्वतन्त्र रूप से रञ्जक नहीं हैं, परन्तु वे बेसुरे भी नहीं हैं। अतः इस प्रकार का जो भाव है, वही 'साधारण' है।"

अर्थात् "शुद्ध गान्धार निश्शेषतया गया नहीं तथा मध्यम आया नहीं, तब ऐसी अवस्था को अन्तर स्वर कहते हैं।" **शार्ङ्गदेव** ने भी अन्तर-काकली के स्थानों को इसी प्रकार बताया है (१।५।२, ३)।

सारांश यह है कि 'दो स्वरों के बीच' कहने से अन्तर-काकली का वैज्ञानिक स्वर-स्थान प्राप्त नहीं हो सकता, जैसा कि हमारे विद्वान् चाहते हैं।

४ : भरत ने 'साधारण-कृता' मूर्छनाओं को अन्तर-काकली-युक्त कहा है (२८।८३); उसी प्रकार सुषिराध्याय में भी-

"स्वर-साधारणश्चापि काकल्यन्तर-संज्ञया" ।।३०।४।।

कहा है। **दत्तिल** (श्लो० ४६) तथा **मतङ्ग** ने भी (पृ० २२) साधारण संज्ञा अन्तर-काकली को ही प्रयुक्त की है। **शार्ङ्गदेव** का भी साधारण संज्ञा से यही अभिप्राय है (१।७।२१, २४)।

५ : प्राचीन शास्त्रकारों ने इन स्वरों को स्वतंत्र नहीं माना है तथा उनको 'अनंश' भी कहा है (**ना० शा०** IV, २८।३५, पृ० ३२, **द०** श्लो. १७)। उपरान्त **भरत** ने अन्तर स्वरों का प्रयोग केवल आरोही तथा अल्प कहा है (२८।३५)।

सप्त-श्रुतिक-संवाद तथा षड्जान्तर-भाव

१ : कतिपय आधुनिक विद्वानों ने विज्ञान के आधार पर षड्ज तथा अन्तर (तीव्र) गान्धार का सप्त-श्रुतिक संवाद माना है, परन्तु इस कल्पना के लिए प्राचीन अथवा मध्ययुगीन ग्रन्थों में आधार प्राप्त नहीं है।

२ : मुद्रित **बृहद्देशी** में :-

"सप्त-नवक-त्रयोदशान्ताः संवादिनः।" (पृ० १६)

वाक्य आया है, उसमें 'सप्त' शब्द अशुद्ध है, क्योंकि पूर्वोत्तर ग्रंथों में इस प्रकार का उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

३ : सप्त-श्रुतिक संवाद की कल्पना **पं० देवल** ने हमारे संगीत में प्रविष्ट की है।

४ : भाव संज्ञा सर्व-प्रथम **पं० अहोबल** ने प्रयुक्त की है :-

"षड्ज–पञ्चम–भावेन षड्जे ज्ञेया स्वरा बुधैः ।। ३२७ ।।

अहोबल के इस कथन से चक्रिक अर्थात् **पायथेगोरियन्** स्वरों की उपलब्धि होती है । तात्पर्य यह की षड्ज–गान्धार–संवाद तथा षड्जान्तर–भाव आधुनिक विज्ञान की ही देन है ।

३. कैशिक स्वर

१ : भरत ने अन्तर–काकली को ही कैशिक यह द्वितीय संज्ञा दी है, ऐसा प्रतीत होता है, जो पूर्व में बताया गया है । परन्तु **अभिनवगुप्त** ने कैशिक स्वर अन्तर–काकली से भिन्न होकर त्रिश्रुतिक हैं, इस प्रकार का साग्रह प्रतिपादन किया है (IV, पृ० ३३) । उसने इन त्रिश्रुतिक गान्धार–निषादों का योग संयुक्त ग्राम–सप्तक में बताया है (IV, पृ० ३३, ३४) ।

२ : षड्ज–साधारण अर्थात् कैशिक निषाद का प्रयोग ष० ग्राम में तथा मध्यम–साधारण अर्थात् कैशिक गान्धार का प्रयोग म० ग्राम में करने से दोनों ग्रामों में मध्यम तथा पञ्चम बेसुरे उत्पन्न होते हैं :–

(a) **ष० साधारण :–** सा, ४ रि, २ ग, ४ म[१०], ४ प[१४], ३ ध, ३ नि, २ सां

(b) **म० साधारण :–**सा, ३ रि, ३ ग, २ म[८], ४ प[१२], ४ ध, २ नि, ४ सां
(म)

३ : परन्तु यदि दोनों ग्रामों के कैशिक–युक्त अंशों को जोड़ा जाय, जैसा **अभिनवगुप्त** ने सूचित किया है, तो उसके द्वारा उत्पन्न हुआ स्वर–सप्तक यथायोग्य रूप में प्राप्त होता है । यह **द्वि–ग्राम–संसृष्ट कैशिक सप्तक** प्रचलित शुद्ध (देवगिरी) **विलावल** का होता है :–

सा, ४ रि[४], ३ ग[७], २ म[९], ४ प[१३], ४ ध[१७], ३ नि[२०], २ सां[२२]

इसमें प्रचलित तीव्र रि, ग, ध, नि की उपलब्धि होती है । **कैशिक** नामधारी सभी जातियों तथा रागों का यही स्वर–सप्तक है, ऐसा **अभिनवगुप्त** का कथन है (IV, पृ० ३४–३५) **शार्ङ्गदेव** ने कैशिकों का वर्णन तो किया है, परन्तु कैशिक–युक्त संयुक्त–सप्तक की चर्चा उसने नहीं की है, जिससे भ्रम उत्पन्न होता है ।

४ : मूर्छना के कैशिक–युक्त प्रकार शास्त्रकारों ने अलग से नहीं बताये हैं, इस शंका का समाधान करते हुए "कैशिक स्वरों का अन्तर्भाव अन्तर–काकली में हो जाता है, अतः उनका पृथग्–भेदकत्व नहीं कहा हैं ।" ऐसा **कल्लिनाथ** ने स्पष्ट किया है (पृ० १०८) । [**अड्यार** संस्करण में मुद्रित– "काकल्यन्तरयोः साधारणयोः

अन्तर्भूतत्वेन तयोः पृथग्-भेदकत्वम् ।"-वाक्य 'अन्तर्भूतत्वे न तयोः पृथग्-भेदकत्वम्' इस प्रकार शुद्ध होगा ।] शाङ्गर्देव के समय में ग्राम-संसृष्ट प्रयोग का प्रचलन था, ऐसा **कल्लिनाथ** ने कहा है :-

"लक्ष्ये प्रायेण ग्राम-द्वय-संसृष्ट-प्रयोग-दर्शनात् ।" (I, पृ० १०४)

५ : जिन जाति-रागों में गान्धार-निषाद अल्प होते हैं, उनमें अन्तर-काकली का तथा जिन जाति-रागों में ऋषभ-धैवत दुर्बल होते हैं, उनमें कैशिक स्वर-सप्तक का प्रयोग आवश्यक है, ऐसा **अभिनवगुप्त** ने स्पष्ट किया है । इन जाति-ग्रामों के यथार्थ स्वरूप का आकलन करने के लिए **अभिनवगुप्त** का उक्त कथन अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है (IV, पृ० ३४) ।

६ : **रामामात्यादि** दाक्षिणात्य शास्त्रकारों ने प्राचीन कैशिक स्वरों को षट्-श्रुतिक अर्थात् प्रचलित कोमल गान्धार लिख दिये हैं, जो प्राचीन शास्त्रों पर आधारित नहीं है ।

७ : **भरत** ने कैशिक स्वरों का प्रयोग सूक्ष्म होता है, ऐसा कहा है :-

"अस्य तु प्रयोगस्य सौक्ष्म्यात् कैशिकम् इति द्वितीयं नाम निष्पद्यते ।" (२८।३५, पृ० ३२)

इस पर भाष्य करते हुए **अभिनव गुप्त** ने एक विशेष अर्थ बतलाया है तथा कहा है कि **भरत** ने इन 'एक-श्रुतिक' अर्थात् त्रिश्रुतिक स्वरों का उपयोग केवल गान्धर्व-संगीत में अदृष्ट-सिद्धि के लिए कहा है एवं 'सौक्ष्म्यात्' शब्द को **भरत** ने इस कारण से प्रयुक्त किया है कि लक्ष्य में इन स्वरों का होना असंभव हैं :-

"गान्धर्वे नियतम् अदृष्ट-सिद्धये एक-श्रुतित्वं स्वराणां दर्शितम् ।" "अस्य लक्ष्ये असंभवं दर्शयितुं संज्ञां करोति अस्य तु प्रयोगस्य सौक्ष्म्याद् इति" (VI, पृ० ३४) ।

४. अंश

१ : **भरत** ने अंश के १० लक्षण-"यस्मिन् भवति रागश्च" इत्यादि कहे हैं (२८।६८, ६९) । उनको देखने से ज्ञात होता है कि जाति के रूपों को बनाने के अनेक कार्य उसने अंश पर सौंपे हैं । "जिसकी सत्ता के कारण जातिस्वरूप उत्पन्न होता है जैसे पुरुष के स्वरूप में शिर (=मुख) प्रमुख है; जिस स्वर का बाहुल्य होता है, जो ग्रहादि पाँच रूपों को उत्पन्न करता है" इत्यादि स्पष्टीकरण **अभिनवगुप्त** द्वारा किया गया है (IV, पृ० ४४, ४५) । **मतङ्ग** ने तथा **शाङ्गर्देव** ने भरतोक्त लक्षणों का ही अनुवाद किया है । **दत्तिल** ने अतिबहुल स्वर को **वादी** तथा **अंश** संज्ञा दी है

"षड्ज-पञ्चम-भावेन षड्जे ज्ञेया स्वरा बुधैः ।। ३२७ ।।

अहोबल के इस कथन से चक्रिक अर्थात् **पायथेगोरियन्** स्वरों की उपलब्धि होती है। तात्पर्य यह की षड्ज-गान्धार-संवाद तथा षड्जान्तर-भाव आधुनिक विज्ञान की ही देन है।

३. कैशिक स्वर

१ : भरत ने अन्तर-काकली को ही कैशिक यह द्वितीय संज्ञा दी है, ऐसा प्रतीत होता है, जो पूर्व में बताया गया है। परन्तु **अभिनवगुप्त** ने कैशिक स्वर अन्तर-काकली से भिन्न होकर त्रिश्रुतिक हैं, इस प्रकार का साग्रह प्रतिपादन किया है (IV, पृ० ३३)। उसने इन त्रिश्रुतिक गान्धार-निषादों का योग संयुक्त ग्राम-सप्तक में बताया है (IV, पृ० ३३, ३४)।

२ : षड्ज-साधारण अर्थात् कैशिक निषाद का प्रयोग ष० ग्राम में तथा मध्यम-साधारण अर्थात् कैशिक गान्धार का प्रयोग म० ग्राम में करने से दोनों ग्रामों में मध्यम तथा पञ्चम बेसुरे उत्पन्न होते हैं :-

(a) **ष० साधारण** :- सा, ४ रि, २ ग, ४ म[१०], ४ प[१४], ३ ध, ३ नि, २ सां

(b) **म० साधारण** :-सा, ३ रि, ३ ग, २ म[८], ४ प[१२], ४ ध, २ नि, ४ सां
(म)

३ : परन्तु यदि दोनों ग्रामों के कैशिक-युक्त अंशों को जोड़ा जाय, जैसा **अभिनवगुप्त** ने सूचित किया है, तो उसके द्वारा उत्पन्न हुआ स्वर-सप्तक यथायोग्य रूप में प्राप्त होता है। यह **द्वि-ग्राम-संसृष्ट कैशिक सप्तक** प्रचलित शुद्ध (देवगिरी) **विलावल** का होता है :-

सा, ४ रि[४], ३ ग[७], २ म[९], ४ प[१३], ४ ध[१७], ३ नि[२०], २ सां[२२]

इसमें प्रचलित तीव्र रि, ग, ध, नि की उपलब्धि होती है। **कैशिक** नामधारी सभी जातियों तथा रागों का यही स्वर-सप्तक है, ऐसा **अभिनवगुप्त** का कथन है (IV, पृ० ३४-३५) **शार्ङ्गदेव** ने कैशिकों का वर्णन तो किया है, परन्तु कैशिक-युक्त संयुक्त-सप्तक की चर्चा उसने नहीं की है, जिससे भ्रम उत्पन्न होता है।

४ : मूर्छना के कैशिक-युक्त प्रकार शास्त्रकारों ने अलग से नहीं बताये हैं, इस शंका का समाधान करते हुए "कैशिक स्वरों का अन्तर्भाव अन्तर-काकली में हो जाता है, अतः उनका पृथग्-भेदकत्व नहीं कहा हैं।" ऐसा **कल्लिनाथ** ने स्पष्ट किया है (पृ० १०८)। [**अड्यार** संस्करण में मुद्रित- "काकल्यन्तरयोः साधारणयोः

(श्लोक १८)। **शार्ङ्गदेव** ने अंश का व्यापक लक्षण–" बहुलत्वं प्रयोगेषु " दिया है (१।७।३२) एवं **कल्लिनाथ** ने उसी लक्षण को दृढ़ करते हुए अंश का न्यासादि होना, यह कारण प्रस्तुत किया है (I, पृ० १८२, १८३)।

२ : कुछ जातियों में अनंश भी बहुल होते हैं, इसको लक्षित करते हुए **कल्लिनाथ** ने अंश का भेदक लक्षण–" जो स्वर अपने स्थायित्व के कारण प्रयोग में बहुल होता है, वही अंश है " इस प्रकार बताया है (I, पृ० १८२)। **कल्लिनाथ** के इस स्पष्टीकरण से अंश के एक प्रमुख अवतार ' स्थायी ' की सूचना मिलती है।

३ : प्रचलित संगीत में ' अंश ' परिभाषा लुप्त हो गयी तथा रागों के अंश स्वरों को ' न्यास ' नाम देने की भ्रामक प्रथा चालू हो गयी।

५. वादी

i. **मतङ्ग** ने वादी को ' वदनात् स्वामिवत् ' कहा है (**बृ० दे०** पृ० १३)। **कल्लिनाथ** ने वादी का विशेष लक्षण ' जाति–रागों में प्रधान ' कहा है तथा उर्वरित अन्य (बहुलत्वादि) लक्षणों से अंश परिलक्षित होता है, ऐसा स्पष्टीकरण किया है:–

" प्राधान्याद् वादि–शब्द–वाच्यम्। अन्यैः लक्षणैः अंश–शब्द–वाच्यम्।"
(I, पृ० १८३)

ii. एक ही जाति में अनेक अंश होते हैं और उनमें से प्रत्येक अंश बारी–बारी से वादी बन सकता है, ऐसा **कल्लिनाथ** ने आगे स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ–षाड्जी जाति में सा, ग, म तथा ध अंश हैं और उनको बारी–बारी से वादी तथा ग्रह बनाया जाता है :–

" ते पर्यायेण वादिनः ग्रहाः च भवन्ति।" (I, पृ० १९६)

अर्थात् यह व्यवस्था जातियों के विकृत प्रकार बनाने के लिए कार्यकारी होती है। अंशों में से जो स्वर वादी नहीं बनाया जाता था, उसको **पर्यायांश** संज्ञा दी जाती थी, ऐसा **कल्लिनाथ** ने स्पष्ट किया है :–

" पर्यायांशे वादि–भूतांशाद् व्यतिरिक्तांशे।" इ० (पृ० १९०)

इस चर्चा का यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रचलित **हिन्दुस्तानी संगीत** में रागों के **वादी** की जो कल्पना की जाती है, वही कल्पना प्राचीन वादी की थी।

iii. **नान्यदेव** ने वादी की व्याख्या निम्नानुसार की है :–

(a) " स तत्र वादी स्वरः, यः बहुलः सन् सकल–गीत–शरीराभोग–पूरकः ॥४९॥ (Vol. II, पृ० ९)

(b) " तत्र गीतादौ समाप्तौ च वादी स्वरः।" इ. (पृ० १०)

इस व्याख्या के अनुसार ग्रह तथा न्यास स्वरों का अन्तर्भाव वादी स्वर में ही होता है । परन्तु इस नियम का विनियोग शुद्ध जातियों में हि दृष्टिगोचर होता है ।

६. विवादी

१ : प्राचीन शास्त्रकारों ने द्वि-श्रुत्यन्तर स्वरों को विवादी की संज्ञा दी है। फलस्वरूप, रि-ग तथा ध-नि जोड़ियाँ परस्पर विवादी मानी गयी हैं । किन्तु ऋषभ के बाद गान्धार का उच्चार नहीं करना अथवा विपरीत, ऐसा यहाँ विवादी का अर्थ नहीं है । विवादी अर्थात् **वर्ज्य** ऐसा भी अर्थ नहीं है, क्योंकि जातियों के स्वर-प्रस्तार में ऋषभ के पश्चात् गान्धार अथवा इसके विपरीत स्वर-चलन को ग्रन्थकारों ने दिया है । उदाहरणार्थ- **सं० रत्नाकर** में षाड्जी की आक्षिप्तिका के स्वर-लेख में रि-ग तथा ध-नि के योग निम्नप्रकार से आये हैं :-

(१) 'पा निध पा धनि' (-प्रथम पङ्क्ति)

(२) रिग सा री गा सा (-तृतीय पङ्क्ति((I, पृ० १९९,२००)

जाति के स्वरों में ऋषभ के पश्चात् गान्धार अथवा गान्धार के पश्चात् ऋषभ इस तरह स्वर जहाँ आते हैं, वहाँ **नान्यदेव** ने वैसा स्पष्टीकरण भी किया है :-

(a) "पुनराभ्यन्तर-स्थित-विवादिनो ऋषभ-गान्धारयोः सम्पृक्तयोः प्रयोगः।" (**भ० भा०** II, पृ० १८, कण्डिका-९५)

(b) "ऋषभ-गान्धारौ उत्तरौ यथा-'रि-ग' इति।" (पृ० १८, कं० ९८) इत्यादि ।

२ : प्रचलित कई रागों में भी इस नियम का पालन अल्पाधिक रूप से होता है, जैसा कि **कोमल गान्धारवाले** कुछ रागों में आरोह में गान्धार नहीं लिया जाता । उसी तरह **तीव्र गान्धारवाले** कुछ रागों में आरोह "सरिमप" तथा अवरोह- "गमरिसा" किया जाता है । उसी प्रकार प्रचलित **दो निषादों वाले रागों में** आरोह में तीव्र निषाद तथा अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग किया जाता है । इसी प्रकार का नियम अन्तर-काकली के प्रयोग के विषय में **भरत** ने भी दिया है। दोनों गान्धारों अथवा दोनों निषादों का जोड़ कर लेने की रीति हिन्दुस्तानी कुछ थोड़े रागों में प्रचलित है, वह गत १००-१२५ वर्षों पूर्व पैदा हुए कलाकारों की देन है, ऐसा तर्क होता है । इस प्रकार का प्रयोग भी अधिकतर **मींड** के द्वारा किया जाता है ।

३ : प्राचीन ग्रन्थकारों ने विवादी स्वर को शत्रुवत् कहा है, उसका भावार्थ इतना ही है कि इन विवादी स्वरों का प्रयोग अल्प होता है, जैसा **अभिनवगुप्त** ने स्पष्ट किया है :-

"अरिवद् विवादी तु अल्पः।" (IV, पृ० १८)

४ : प्राचीन ग्रन्थकारों में से एक **पार्श्वदेव** ने विवादी स्वर का प्रयोग 'स्वल्प' अथवा 'प्रच्छादनीय' अर्थात् 'मनाक् स्पर्श' की क्रिया से करना होगा, ऐसा कहा है (श्लो० ९, १०)। इस कथन में पार्श्वदेव ने वर्ज स्वरों को विवादी माना है अथवा रि–ग, ध–नि के विषय में यह कथन किया है, इसका निश्चय नहीं कर सकते।

५ : **पं० अहोबल** ने 'विवादी' संज्ञा वर्ज स्वरों के लिए प्रयुक्त की है :–

"रक्तिच्छेद–हेतुत्वं यस्मिन् रागे तु यस्य तत् ॥ ८२ ॥
तद्रागस्थ–स्वरैस्तस्य विवादित्वं भवेद् ध्रुवम्।"

६ : **व्यंकटमखी** ने रागों के वर्ज स्वरों को विवादी संज्ञा की है; इतना ही नहीं, प्रत्युत, रक्ति बढाने के लिए राग में वर्ज स्वरों का अल्प प्रयोग करना ही चाहिए ऐसा भी सूचित किया है :–

"स्वरूप–मर्दनं तेन प्रयोगे स्याद् विवादिनः।
स्वरूप–मर्दनाभावे गीत–रक्तिर्न लभ्यते" ॥ ३।१५३॥ इ०

७ : **व्यंकटमखी** की इस कल्पना को पं० **भातखण्डेजी** ने ग्रहीत कर के और आगे बढ़ायी है :–

"विवादिनं स्वरं प्रायो योजयन्त्यवरोहणे।
न तत् शास्त्रेऽपि दोषार्हं ग्रन्थेषु नियमो ह्यसौ ॥ ४६ ॥
सुप्रमाण–युतो मन्ये विवाद्यपि सुरक्तिदः।
यथेषत्–कृष्ण–वर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता" ॥ ४७ ॥ (**ल० सं०**, पृ० ७४)

कहना नहीं पड़े कि उपरोक्त अन्तिम श्लोक में पंडित जी ने 'अतिविचित्रता' शब्द ठीक ही प्रयुक्त किया है, क्योंकि लोगों में ऐसी बात हास्यास्पद ही मानी जाती है। राग–बाह्य स्वरों का मिश्रण कुशलता से केवल ठुमरी आदि सुगम संगीत में ही किया जाता है।

७. न्यास

१ : सामान्य अर्थ

प्राचीन शास्त्रकारों ने 'न्यास' संज्ञा को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है :– (१) गीत के समाप्ति–कारक स्वर के अर्थ में, तथा (२) आधार–स्वर अर्थात् ठाठ बनानेवाले स्वर (tonic) के अर्थ में।

सामान्य अर्थ के प्रयोग के उदाहरण निम्नानुसार हैं :–

(a) "अत्र न्यास–शब्देन गीत–मोक्षः उच्यते, न तु स्वर–विशेषः। अंश–स्वरे गीत–मोक्षः कर्तव्यः।" इ० (**सं० र०**, II पृ० २३४ **क०**)

(b) "न्यासान्तो विविधः कार्यः" इ० ।। ५।७१।। (**सं० र०**)

अर्थात् "विविध नामक गीतों का अन्तिम स्वर जनक-जाति का न्यास स्वर होना चाहिए।"

(c) "राग-जनक-जातेः न्यास-स्वरः समाप्ति-स्वरः अन्ते यस्य...।" (II, पृ० ३५ **सिं०**) यहाँ पर 'न्यास' शब्द उसके विशेष अर्थ में प्रयुक्त है एवं गीत के समाप्तिजनक स्वर के लिए 'अन्त' शब्द प्रयुक्त है।

२ : विशेष अर्थ :–

"गीते समाप्तिकृन् न्यासः।" (१।७।३८, **सं० र०**)

इसका **कल्लिनाथ** द्वारा स्पष्टीकरण निम्न-प्रकार से है :–

"जात्यादि-प्रयोगे समाप्तिकृन् निरपेक्षावसानकारी स्वरः न्यासः। न्यस्यते, त्यज्यते येन गीतम् इति।" (I, पृ० १८७ **क०**)

अर्थात् जाति आदि में निरपेक्षतया समाप्ति का स्वर न्यास कहलाता है। **शाङ्गर्देव** के उपरोक्त वचन में आये हुए 'गीत' शब्द का अर्थ जाति तथा ग्रामराग है, न कि मद्रकादि गया है।

(३) प्रचलित **हिन्दुस्तानी संगीत** में रागों के विश्रान्ति-स्वरों के लिए 'न्यास' संज्ञा का प्रयोग कुछ लेखकों ने चालू किया है। ये विश्रान्ति-स्वर वास्तव में अंश स्वर होते हैं, अतः 'न्यास' परिभाषा का यह दुरुपयोग है। इससे प्राचीन 'न्यास' संज्ञा के सही अर्थ को समझना दुष्कर हो गया है।

८. न्यास की अपरिवर्तनीयता

अंश एवं वादी के कार्यों से न्यास का कार्य नितान्त भिन्न तथा सुनिश्चित है। जाति के विकृत प्रकारों को बनाने के लिए उसके ग्रह, अंश स्वरों को परिवर्तित किया जाता था। परन्तु जाति के विकृत प्रकारों को उत्पन्न करने के लिए उसका न्यास स्वर कभी भी नहीं बदला जा सकता था। इस नियम को **भरत** ने निम्नोक्त शब्दों द्वारा निर्दिष्ट किया है :–

"अन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिः वा लक्षणैः विक्रियाम् उपगताः न्यास-वर्जं विकृत-संज्ञाः भवन्ति" ।।२८।४६।।

शाङ्गर्देव ने इसी कथन को निम्न शब्दों में बद्ध किया है :–

"विकृता न्यास-वर्जैतल्लक्ष्म-हीना भवन्त्यमूः" ।। १।७।३ ।।

इसका **कल्लिनाथ** के द्वारा किया गया स्पष्टीकरण निम्नानुसार है :–

(a) "अस्यां षाड्ज्यां षड्जः न्यासः इति वदतः अयं भावः। अस्यां षाड्ज्यां विकृतावस्थासु ग्रहादीनाम् अनियमत्वे अपि नामस्वरस्य एव न्यासत्वं शुद्धायां विकृतासु च नियतम्।" (I, पृ० १९९–२०० क०)

(b) "अत्र न्यास–नियमस्य परित्यागः न इष्टः। तस्मिन् अपि परित्यक्ते सति विकृतासु जात्यन्तर–भेदकत्वेन प्रधान–भूतावयवाननुवृत्तौ जाति–भेदत्व–प्रतीतिः न स्यात्।" (I, पृ० १७०)

अर्थात् "षाड्जी जाति में षड्ज न्यास है, ऐसा कहा है। इसका भावार्थ यह है :–षाड्जी की विकृत अवस्था में ग्रह आदि का नियम बदला जाता है, परन्तु जाति के शुद्ध तथा विकृत दोनों प्रकारों में जाति के नाम–स्वर का ही न्यास होना निश्चित है। अतः जाति के प्रकारों में न्यास स्वर का परित्याग इष्ट नहीं है। क्योंकि, न्यास को बदल कर जाति का विकृत प्रकार यदि बनाया गया तो जाति का प्रधानभूत अवयव ही नहीं रह जायेगा। यदि ऐसा किया गया तो एक जाति से दूसरी जाति का भिन्नत्व पहचाना नहीं जा सकेगा।"

भरत ने प्रत्येक जाति का स्वरूप उसके न्यास तथा उसमें प्रयुक्त स्वर–संगति पर आधारित है, ऐसा कहा है :–

(a) "न्यासान्तरमार्गौ तु विशेषकौ।"

[भरत के इस वचन को **अभिनवगुप्त** ने अपनी टीका में उद्धृत किया है, जो 'न्यासान्तर–भागौ०' इस प्रकार **बरोडा** संस्करण में अशुद्ध मुद्रित है (IV, पृ० ३३)। **भरत** का यह वाक्य नाट्यशास्त्र के **निर्णयसागर** तथा **बरोडा** संस्करण में (IV, पृ० ३२) लुप्त है।]

(b) "न्यासश्चान्तरमार्गश्च जातीनां व्यक्ति–कारकः" ॥ **ना. शा.** २८। ७५॥

जाति के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए **नान्यदेव** ने इसी भरतवचन का अनुसरण किया है :–

"अन्तर–मार्गणं न्यासश्च जातीनाम् अभिव्यक्ति जनयति।" (**भ. भा.** II, पृ० १३२)

इससे सिद्ध होता है कि जाति का स्वरूप अर्थात् **ठाठ** सिद्ध करने का कार्य जातिका न्यास–स्वर ही करता था।

कल्लिनाथ ने किसी भी एक अंश को वीणा की उपतन्त्रियों के साहाय्य से स्थायी करने को कहा है, इसे न्यास के विषय में ही समझना चाहिए।

अठारह जातियों में से केवल दो जातियों के न्यास एक से अधिक हैं। षड्ज-मध्यमा जाति के न्यास षड्ज तथा मध्यम को मिलाकर दो हैं। कैशिकी जाति के न्यास गान्धार, पञ्चम तथा निषाद को मिलाकर तीन हैं। इन जातियों के दो अथवा

कि "षड्ज आदि जो स्वर राग का अंश होता है, उसी स्वर पर राग की स्थापना की जाती है। राग की स्थिति उत्पन्न करने में यह स्वर कारणीभूत होता है, अतः उसको स्थायी कहते हैं।" **कल्लिनाथ** के उपरोक्त वाक्य में 'राग-स्थिति' शब्द आया है, उसका अर्थ 'राग-संस्थिति' अर्थात् 'राग का ठाठ' इस प्रकार है। सारांश यह कि मेलोत्पाद स्वर की प्राचीन संज्ञा 'स्थायी' थी।

२ : जीव-स्वर का बहुशः उच्चारण जिनमें मुख्य है, ऐसे स्थायों के द्वारा रागों की स्थापना अर्थात् अभिव्यक्ति हो जाती है, इस प्रकार **शाङ्र्गदेव** ने रागालप्ति के विषय में स्पष्ट किया है :-

"स्तोक-स्तोकैस्ततः स्थायैः प्रसन्नैर्बहु-भङ्गिभिः।
जीव-स्वर-व्याप्ति-मुख्यै रागस्य स्थापना भवेत्" ॥ ३।१९६ ॥

कल्लिनाथ ने 'जीव-स्वर' का अर्थ 'अंश-स्वर' बताया है (II, पृ० १९४)। अंश-स्वर संज्ञा अस्पष्ट होने से **शाङ्र्गदेव** ने इस विषय में 'जीव-स्वर' शब्द सोद्देश्य प्रयुक्त किया है, ऐसा तर्क होता है।

३ : जीव-स्वर का अर्थ है, प्रमुख अंश अर्थात् **वादी** स्वर, जिससे राग-स्वरूप का आविष्कार तथा आविर्भाव होता है। इस अर्थ को **पार्श्वदेव** ने अधिक स्पष्ट किया है :-

"सप्त-स्वराणां मध्येऽपि स्वरे यस्मिन् सुरागता।
स जीव-स्वर इत्युक्तः, अंशो वादी च कथ्यते" ॥ ६ ॥ (पृ० ५)

अर्थात् "सात स्वरों में से जिस एक स्वर में राग का अच्छापन (सौन्दर्य का गुण) रहा है, उसको जीव-स्वर कहते हैं। जीव-स्वर को अंश तथा वादी कहा जाता है।"

रागालाप में स्थायी

शाङ्र्गदेव ने रागालाप के स्व-स्थान अर्थात् खण्ड बताते हुए प्रत्येक बार स्थायी स्वर पर खण्ड का न्यास करने को कहा है :-

(a) "चालनं मुखचालः स्यात्, स्व-स्थानं प्रथमं च तत्" ॥ ३।१९२ ॥

(b) "स्थायिनि न्यासे कृते प्रथमं स्वस्थानम्" (II, पृ० १९३ क०) इत्यादि।

सारांश, स्थायी स्वर में अर्थात् सप्तक के आधार-स्वर में जाति-राग के आलाप-तानों का न्यास उसी प्रकार किया जाता था, जिस प्रकार प्रचलित संगीत में रागों का न्यास अर्थात् संपूर्णत्व षड्ज पर किया जाता है।

पार्श्वदेव ने भी-'स्थायिनि स्थापनोच्यते' तथा 'रागस्य आकारं स्थापनां च दध्यात्।' इस प्रकार इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया है (पृ० ७, श्लो० २६-२८)।

वीणा-वंश पर स्थायी

१ : **शाङ्र्गदेव** ने वाद्याध्याय में वीणा में तथा वंश के ऊपर विभिन्न रागों के वादन के लिए आवश्यक ठाठ उत्पन्न करने वाले स्वर को कहीं कहीं ग्रह तथा अधिकतर स्थायी नाम दिया है और उस पर न्यास करने के लिए कहा है :–

वसन्त = "ग्रह–न्यासाद् वसन्तः स्यात्‍······" ॥ ३।३५२ ॥

धन्नासी = "······न्यस्य ग्रहे······" ॥ ३५५ ॥

देशी = "ऋषभं स्थायिनं कृत्वा······" ॥ ३५६ ॥
······स्थायिनि चेन्न्यासः······॥ ३५७ ॥

डोम्बक्री = ······स्थायि–स्वरे न्यासो······" ॥ ३६२ ॥ इत्यादि

२ : **शाङ्र्गदेव** ने राग–वादन प्रकरण में अंश संज्ञा कहीं भी प्रयुक्त नहीं की है, परन्तु ग्रह एवं स्थायी संज्ञाएँ ही प्रयुक्त की हैं। ये दोनों संज्ञाएँ एकार्थक हैं, ऐसा स्पष्टीकरण **कल्लिनाथ** ने किया है :–

"अत्र प्रकरणे······स्थायी इति ग्रह–पर्यायत्वेन मन्तव्यम्। ······ अतः अत्र ग्रह एव स्थायी, स्थायी एव ग्रहः इति मन्तव्यम्।" (III, पृ० ३०४)

ऐसा मानने के लिए **कल्लिनाथ** ने कई ठोस कारणों को प्रस्तुत किया है, जो ग्रन्थ में द्रष्टव्य हैं।

इस प्रकरण में शाङ्र्गदेव ने राग अथवा उसका ठाठ बनाने हेतु मूर्छना शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं किया है। **पार्श्वदेव** ने भी न्यासान्त के द्वारा राग की स्थापना स्थायी स्वर में करने के लिए कहा है (पृ० ७, श्लो० १५–२६)।

नाद अर्थात् drone

प्रचार में हम आधार–स्वर को षड्ज कहते हैं, उसकी वैज्ञानिक संज्ञा drone है। इसको pitch–note भी कह सकते हैं।

३ : **शाङ्र्गदेव** ने **नादमुक्तिका** प्रबंध का वर्णन किया है (४।२७३)। नादमुक्तिका शब्द से ही प्रतीत होता है कि इस प्रबंध का "नाद पर मोक्ष" है। इस अर्थ को लक्षित करते हुए **कल्लिनाथ** ने नाद शब्द का स्पष्टीकरण निम्नानुसार किया है :–

"नाद–शब्देन अत्र स्थायि–स्वरः विवक्ष्यते। त स-रि–गादि–वर्णोच्चार–रहितं नाद–रूपम् एव उच्चार्य न्यासं कुर्याद् इति अर्थः।" (II, पृ० २९३, क०)

भावार्थ यह है कि "नाद शब्द से यहाँ स्थायी स्वर अभिप्रेत है। उस स्वर का उच्चार स, रि, ग, म आदि वर्णों द्वारा नहीं करना है, प्रत्युत नाद–रूप का ही उच्चार करते हुए न्यास करना है।"

[पं. **भातखंडेजी** ने प्राचीन स्थायी संज्ञा का अर्थ "प्रचलित वादी" इस प्रकार किया है जो भ्रामक है (**भा० शा०**, भाग १, पृ० ७१)।

इसी तरह उन्होंने **न्यास** का अर्थ ······'गीत–समाप्ति का स्वर' किया है, जो अस्पष्ट तथा अपूर्ण है।

अंश के विषय में पंडितजीने "अंश और वादी को हम एक ही समझेंगे" (१।३८) ऐसा कहा है, उससे भी कोई कार्य सिद्ध नहीं हो पाता है।]

१०. अंश का स्थायित्व–करण

१ : किसी भी स्वर को स्थायी (tonic) बनाने के लिए उस स्वर को 'नाद' अर्थात् drone देना पड़ता है। drone मिलने के कारण ही उस स्वर को आधार-स्वर (tonic) का रूप प्राप्त होता है। अंश स्वर को 'नाद' देने की योजना का निर्देश प्राचीन ग्रन्थकारों ने नहीं किया है, परन्तु **कल्लिनाथ** ने इस योजना को निम्नोक्त वाक्यों द्वारा संक्षेप में बताया है :–

"गान्धाराद्यंशत्वम् अपि स्व–स्थान–स्थितानाम् एव। तेषां स्थायित्वकरणम् अपि वीणायाम् उपतन्त्रीणां स्व–नाद–साम्यापादनम्, इति रहस्यम्।" (I, पृ० २०३, क०)

अर्थात् "षाड्जी जाति का स्वरूप बनाने के लिए उसके अंश षड्ज, गान्धार आदि को स्थायी बनाना पड़ता है। स्थायित्व–करण में षड्ज अथवा गान्धार आदि अंश स्वर अपने स्थान पर ही (अपनी ध्वनि में) रहेंगे। जिस अंश को स्थायी करना है, उसकी ध्वनि में वीणा की उपतन्त्रियों (जोड़ के तारों) को मिलाना चाहिए।"

२ : कल्लिनाथ ने इस स्पष्टीकरण में जाति के किसी भी अंश स्वर को स्थायी करने के लिये कहा है, परन्तु षाड्जी जाति के स्वर–स्वरूप अर्थात् ठाठ को उत्पन्न करने के लिए उसके मुख्य अंश अर्थात् न्यास (षड्ज) का ही स्थायित्व–करण किया जाना चाहिए। अन्य अंश गान्धार को यदि स्थायी किया जाय, तो गान्धारी जाति का ठाठ उत्पन्न हो जायेगा। षाड्जी का नाम लेने पर भी वह षाड्जी नहीं रहेगी।

कल्लिनाथ के इस कथन का आधार लेकर कुछ विद्वानों ने षाड्जी जाति के प्रत्येक अंश को स्थायी बना कर षाड्जी में से ही गान्धारी, मध्यमा तथा धैवती को उत्पन्न करके बताया है।

परन्तु **कल्लिनाथ** के उपर्युक्त वचन को एक अर्थवाद या अस्पष्ट कथन समझ कर उसका प्रयोगानुकूल अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

३ : इसी प्रकार **अभिनवगुप्त** ने 'एक षड्जमध्यमा जाति में अन्य सभी जातियाँ रही हैं' ऐसा कहा है :–

" जातयः च सर्वाः षड्जमध्यमायाम् " (IV, पृ० ७१)

राग के एक-एक विशिष्ट स्वर पर आलाप-समुदाय तथा तानें लाकर रखने से अर्थात् एक ही राग में विभिन्न मूर्छनाएँ करने से विभिन्न रागों का आभास उत्पन्न होता है । अभिनवगुप्त का उपरोक्त कथन इसी बात को इङ्गित करता है ।

११. संस्थान तथा मेल

मंतग ने ग्रामरागों के श्रुतिभिन्न, जातिभिन्न आदि ४ भेद बताये हैं । (पृ० ८८) । शुद्धकैशिक तथा भिन्नकैशिक रागों की तुलना करते हुए **मतंग** ने स्पष्ट किया है कि जिस संस्थान से **शुद्धकैशिक** राग बनने पाता है, उसी संस्थान से ही **भिन्नकैशिक** भी राग के स्वरूप को प्राप्त करता है :-

" येन संस्थानेन रागीयते शुद्धकैशिकः तेन संस्थानेन भिन्नकैशिकः रागीयते । " (पृ० ९०)

इन दोनों रागों की जनक जातियाँ समान हैं तथा दोनों रागों का न्यास स्वर एक पञ्चम ही है । परन्तु दोनों रागों के स्वरचलन में मन्द्र-तार का भेद है । मन्द्रादि-स्थान के लिए भी **मतंग** ने संस्थान शब्द का प्रयोग आगे किया है ।

संस्थान शब्द का अर्थ होगा, स्थायी स्वर के कारण बना हुआ mode याने एक प्रकार से ठाठ । इन्हीं दोनों अर्थ में **भरत** ने ' स्थान ' शब्द को प्रयुक्त किया है, यह पूर्व में बताया है । जातियों के रूप से modes की प्रक्रिया **भरत** के समय से ही प्रचलित थी । बिना modes कोई संगीत पैदा ही नहीं हो सकता । modes तथा ठाठों में विशेष भेद नहीं है । आगे चलकर mode-पद्धति का स्पष्ट रूप ठाठ निश्चित हुआ ।

मध्ययुगीन ग्रंथकार **सोमनाथ** (१६०९ ई.) ने **मेल** को संस्थान कहा :-

"स्वर-सस्थान-विशेषाः मेलाः 'थाट' इति भाषायाम् ।" (३।१, टीका, पृ० ७९)

इसी प्रकार पं० **लोचन** (१६७५ ई०) ने ठाठ के लिए **संस्थिति** शब्द प्रयुक्त किया है । मेल की उक्त दोनों संज्ञाएँ मतगोक्त ' संस्थान ' सज्ञा के समान ही हैं ।

कल्लिनाथ ने मेल का उल्लेख किया है, अतः सिद्ध होता है कि मेल-पद्धति **कल्लिनाथ** के समय में प्रचलित थी :-

"क्वापि जन्य-जनकयोः मेलन-भेदः ।" (II, पृ० ११५)

श्रीराग में त्रिश्रुतिक गान्धार–निषाद, नट्ट–देवक्री में पञ्च–श्रुतिक ऋषभ–धैवत एवं रामक्रिया में षट्–श्रुतिक मध्यम (तीव्र) के प्रयोग का उल्लेख **कल्लिनाथ** द्वारा किया गया है (II, पृ० ११५), इससे भी सिद्ध होता है कि उसके समय में ठाठ–पद्धति प्रचलित थी ।

सारांश यह है कि ठाठ पद्धति मुसलमानों द्वारा **ईराणी संगीत** से लेकर भारतीय संगीत में बलात् प्रविष्ट की गयी, ऐसा मानना भ्रामक होगा । जातियों द्वारा ठाठ सिद्ध होते हैं, परन्तु उनसे भैरव, तोडी, मारवा आदि कुछ ठाठों की प्राप्ति सरलता से नहीं होती, अतः कतिपय विद्वान् मानते हैं कि भैरवादि ठाठ **ईरान** से हिं० संगीत में प्रविष्ट हुए । परन्तु विशेषतः **भैरव** तथा **तोडी** ठाठों के गीत लोक–संगीत में पूर्व–परम्परा से गाये जाते हैं, अतः ऐसे राग लोक–संगीत से शास्त्रीय संगीत में लिये गये होंगे, इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता । किन्तु यदि कुछ वाद्य एवं धुनें (melodies) शक, हूण, इरानी आदि जातियों से ले ली गयी होंगी, तो वह भी असंभवित अथवा आश्चर्यकारक नहीं है ।

१२. संस्थान–जन्य स्वरों का शुद्धीकरण

संस्थान के अर्थात् modal process से बने हुए ठाठों के कतिपय स्वर अपने वास्तविक स्थान से किञ्चित् कम–अधिक होते हैं । ऐसे स्वरों को स्थायी के अर्थात् नये षड्ज के संवाद–सम्बन्ध से वीणा–वादक यथा-स्थान कर ही लेते होंगे । परन्तु इस क्रिया के विषय में प्राचीन ग्रन्थों में कोई विधान उपलब्ध नहीं है ।

वैणिक लोग स्वयं के 'अवधान' से अर्थात् स्वर–ज्ञान से वीणा पर स्वर–स्थापना करते हैं, श्रुतियों की गणना करके नहीं; ऐसा **सिंहभूपाल** ने दक्षप्रजापति के **अवधान** शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है :–

"अवधानं नाम मनोबुद्धि–स्मृतीन्द्रियाणाम् ऐकाग्र्यम् । षड्जो यत्र स्थापितः तदपेक्षया एव अन्येषां स्वराणाम् उच्चारणम् इति यावत् । यदि स्वराः स्वेच्छया न अवस्थाप्यन्ते तदा अवधानं न उपयुज्यते ।...लोके च वैणिकाः स्वेच्छया स्वरान् अवस्थापयन्तः दृश्यन्ते ।" (I, पृ० ११०)

इसी से मान सकते हैं कि modes के स्थान–भ्रष्ट स्वरों को वीणावादक यथा–स्थान कर लेते थे । कण्ठ–गायन में भी अवधान की उतनी ही आवश्यकता है। अवधान का उल्लेख **दत्तिल** ने भी किया है :–

"प्रसिद्धमवधानं तु सम्यग्बुद्ध्यादि-योजनम्" ॥ ४ ॥

[Modes से जो स्थान–भ्रष्ट स्वर प्राप्त होते हैं, उन्हींको ही कुछ आधुनिक विद्वान् 'श्रुति' नाम से स्वीकार करते हैं ।]

पं० **सोमनाथ** का कथन भी इसी प्रकार है।

"वैणिक लोग तार अथवा सारी के ऊपर स्वर की स्थापना उसकी अन्तिम श्रुति के ऊपर स्वयं के अनुमान से करते हैं तथा सुनाते हैं। स्वर के प्रकाशन के लिए उसके पूर्व श्रुतियों का कोई भी उपयोग नहीं है। कण्ठ गायन में भी ऐसा ही होता है," इस प्रकार सोमनाथ ने आगे स्पष्ट किया है :–

"वैणिका हि अनुमानेन तन्त्रीषु सारीषु वा अन्त्य–श्रुतौ एव स्वरं स्थापयन्ति तथा इव श्रावयन्ति च। गायन–कण्ठेऽपि तत्संवाद एव इति भावः।" (पृ० २३)

वीणा के ऊपर षड्ज, पञ्चम तथा मध्यम के विभिन्न तारों से एक ही पर्दे पर एक श्रुति कम–अधिक–वाला वही स्वर निकलता है। उपरान्त गायन–वादन में विभिन्न स्वरों का संवाद होता रहता है, जिससे एक ही राग में एक ही स्वर विभिन्न श्रुति–मूल्यों का उत्पन्न होता रहता है।

स्वरों में एक श्रुति कम–अधिक क्षम्य

मन्द्र–तार–स्थानीय कोई भी स्वर एक श्रुति कम–अधिक हो गया तो उसमें दोष नहीं मानना चाहिए, ऐसा मत **पुण्डरीकविट्ठल** ने प्रदर्शित किया है :–

"हीनाधिकैकैक–श्रुति–स्वरा ये मन्द्रानुमन्द्राश्रित-तार–संस्थाः।

न दोषवन्तस्त्वतिदुर्ग्रहं तद् असंप्रदायाश्रित–पण्डितानाम्" ॥२।२७॥ **स० चं०**

उसी प्रकार त्रिश्रुति तथा चतुःश्रुति ऋषभ तथा धैवत एवं त्रिश्रुति तथा चतुःश्रुति पञ्चम स्वर भिन्न–ध्वनि नहीं है, ऐसा पं० **सोमनाथ** का कथन है :–

"शुद्ध–रि–धाभ्यां विकृतस्त्रिश्रुति–पादपि चतुःश्रुति-पः।"

"...तल्लक्षणतो भेदोऽप्यमीषु पञ्चसु न लक्ष्ये भित्" ॥१।२६–२७॥

टी० :–"लक्ष्ये लोक–प्रयोज्ये गाने भिद् भेदो न। यद्यपि शास्त्रे भेदः प्रतीयते, तथापि प्रयोगे न इति अर्थः।" (पृ० २३)

१३. शुद्ध जातियाँ

शुद्ध सात जातियों का स्वरूप निश्चित करना सुकर है। जातियों के मुख्य स्वर अंश तथा न्यास आदि शुद्ध जातियों में एक ही था, जिसके नाम के ऊपर से प्रत्येक शुद्ध जाति का नाम रखा गया था। इस स्वर को नामस्वर इसी अर्थ में कहा गया है। अतः नामस्वर ही प्रत्येक शुद्ध जाति का स्थायी स्वर अर्थात् tonic था, जिससे उस प्रत्येक जाति का ठाठ बन पाता था। फलतः ये ठाठ modes के रूप के थे।

दो ग्रामों के स्वर–सप्तकों का निर्णय हम पूर्व में देख चुके हैं। प्रचार के अनुसार षड्जग्रामिक सप्तक को 'उतरी काफी' या **काफी** का ठाठ मान लें, तो शुद्ध सात जातियों के ठाठ निम्नानुसार सिद्ध होंगे :–

ग्राम	जाति	आधार-स्वर (अंश, न्यास इ०)	आधुनिक रूप
ष० ग्राम	१ षाड्जी	सा	**काफी** (उतरी ?)
,,	२ आर्षभी	रि	**भैरवी**
,,	३ धैवती	ध	कोमल निषादयुक्त **गुर्जरी**
,,	४ नैषादी	नि	**बिलावल** (हिं० शुद्ध ठाठ)
मध्यम ग्राम	५ गान्धारी	ग	**यमन**
,,	६ मध्यमा	म	**खमाज**
,,	७ पञ्चमी	प	**जौनपुरी**

[(१) कुछ आधुनिक विद्वानों ने **पञ्चमी जाति** को षड्जग्राम की जाति मानने की भूल की है, जिसके कारण उत्पन्न **जौनपुरी** ठाठ में च्युत–पञ्चम स्वर पैदा हो गया है। यह उतरा पञ्चम प्रचलित **दरबारी** राग में प्रयुक्त होता है और होना ही चाहिए, ऐसा उन्होंने निष्कर्ष निकाला है और इसके लिए उन्होंने **भरत** का आधार माना है।

(२) श्रुत्यन्तर–संख्या को देखने से नैषादी जाति का स्वर–सप्तक **बिलावल** ठाठ–जैसा प्रतीत होता है। इस समानता से भ्रमित होकर कई आधुनिक विद्वानों ने– (१) "प्राचीन निषाद का (बीच के किसी समय में) प्रचलित षड्ज हो गया" तथा (२) "प्रचलित **हिं० संगीत** में तत्तत् स्वरों की श्रुतियाँ तत्तत् स्वरों के आगे मानी जाती हैं" (**भातखण्डे क्र० पु० मालिका** भा० ४, हिन्दी १९७० की आवृत्ति, विषय–प्रवेश, पृ० १८), इस प्रकार के निष्कर्ष निकाले हैं। उपरोक्त मतों में से (१) यह स्व० पं० **आचरेकर** का मत है तथा (२) की कल्पना मूलतः श्री **कृष्णधन बानर्जी** द्वारा निकाली गयी है।]

१४. सङ्कीर्ण जातियाँ

सङ्कीर्ण ग्यारह जातियों की जो घटक जातियाँ हैं, उनके ठाठों को जोड़ने से अथवा उनका मिश्रण करने से सङ्कीर्ण जातियों के ठाठ उत्पन्न होते थे, ऐसा मानकर सङ्कीर्ण जातियों के ठाठों की कल्पना नीचे के अनुसार कर सकते हैं :–

(१) **षड्जकैशिकी** :–(घटक जातियाँ स + ग) = काफी + यमन

(२) **षड्जमध्यमा** :– (स + म) = काफी + खमाज

(३) **गान्धारपञ्चमी** :– (ग + प) = जौनपुरी + यमन

(४) **आन्ध्री** :–(ग + रि) = यमन + भैरवी

[उपरोक्त तालिका में स्वराक्षर दिये गये हैं, वे जातियों के नामों के संकेताक्षर हैं। गान्धारोदीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा, कैशिकी आदि कुछ सङ्कीर्ण जातियों की घटक जातियाँ ३ से ५ तक कही गयी हैं। इतनी अधिक जातियों के मिश्रण की प्रक्रिया समझना दुष्कर है।]

जाति–रूप ठाठों के मिश्रण करने के अनेक विधी हो सकते हैं :–

(a) एक जाति का पूर्वार्ध तथा दूसरी जाति का उत्तरार्ध।

प्रचलित रागों के उदाहरण :– अहीरभैरव (= भैरव + काफी), मियाँमल्हार (= दरबारी + बहार) इ०।

(b) दो अथवा तीन जातियों का समानान्तर मिश्रण। उदाहरणार्थ–प्रचलित जैजैवन्ती, गौड़सारंग इ०।

एक राग में अन्य राग के अङ्ग (टुकड़ा) का मिश्रण करने को **शाङ्गर्देव** ने राग–काकु कहा है तथा ऐसे मिश्र रागों के कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं (**सं० र०** II, १२२–१४०)। कुछ आधुनिक विद्वानों ने मिश्रित अङ्गों को परि-लक्षित करके प्रचलित हिं० रागों के 'रागाङ्ग' वर्ग भी बना दिये हैं। मध्ययुगीन ग्रंथकार पं० **लोचन** तथा **भावभट्ट** के ग्रंथों में रागों के अनेक सङ्कर वर्णित हैं।

जातियों के पुनरुद्भूत सङ्कर का उल्लेख **दत्तिल** ने जाति–प्रकरण के अन्त में इस प्रकार किया है :–

"सङ्करे रूप–बाहुल्यं जाति–निर्देश इष्यते" ॥ ९६ ॥

इस श्लोक में आये हुए 'सङ्कर' शब्द से **दत्तिल** ने ग्रामरागों को सूचित किया है, ऐसा **अभिनवगुप्त** का कथन है (**ना० शा०** IV, पृ० ६४)।

कैशिक नामधारी जाति–रागों के स्वर–सप्तकों की कल्पना **अभिनवगुप्त** ने अलग रूप से दी है। उसके मतानुसार कैशिक नामक जाति–ग्रामरागों में द्वै–ग्रामिक कैशिक स्वरों का संयुक्त प्रयोग होता है (IV, पृ० ३४, ३५)।

जातियाँ एवं जातिगान साम–गान से उद्भूत हुए हैं, ऐसा भरतादि ग्रंथकारों का कथन है, जो संगीत के इतिहास की दृष्टि से महत्त्व का है :–

(१) "अस्य योनिर्भवेद् गानम्०" इ० (२८।१०)।

(२) "...साम–समुद्भूता जातयो वेद–संमिताः" ॥ **सं० र०** १।७।११५॥

[ग्राम-सप्तक में दोनों गान्धारों अथवा दोनों निषादों को सम्मिलित करके तथा उनके ऊपर से मूर्छना प्रारम्भ करने से प्रचलित भैरव, पूर्वी, मारवा तथा तोडी ठाठों को उत्पन्न किया जा सकता है। यह कल्पना मूल में श्री **कृष्णधन बानर्जी** के ग्रंथानुसार पं० **भातखण्डे** ने निम्नानुसार दी है :–

" हमारे सङ्गीत में कुछ थाट ऐसे हैं, जो केवल शुद्ध मूर्छना के बदलने से प्राप्त नहीं होते, ऐसे स्थानों पर विकृत स्वरों से मूर्छना आरम्भ करनी पड़ेगी।" (**भातखण्डेशास्त्र** भाग १, पृ० १४८) इस युक्ती का अवलम्बन करके प्रथमतः पं० **आचरेकर** ने तथा तत्पश्चात् पं० **बृहस्पति** ने इस प्रकार की अनेकानेक मूर्छनाओं द्वारा ऐसे ठाठ बना कर बताये हैं।]

१५. जाति-गीतों के स्वरों का आधुनिकी-करण

शाङ्र्गदेव तथा **नान्यदेव** के द्वारा दिए गये जाति के स्थायी के आधार पर बने हुए ठाठों का स्वरीकरण निम्नानुसार होगा :–

षाड्जी–	सा	सा	सा	सा	पा	निध	पा	धनि
	तं	ऽ	भ	व	ल	लाऽ	ऽ	टऽ
	री	गम	गा	गा	सा	रिग	धस	धा
	न	यऽ	नां	ऽ	बु	जाऽ	ऽऽ	धि। इ० (= **काफी**)

आर्षभी–	सा	री	नी	सरि	गा	सग	रि	सस
	गु	ण	लो	ऽऽ	च	नाऽ	ऽ	धिऽ
	सा	सा	धप	धप	री	सग	ग	मध
	क	म	नंऽ	ऽऽ	त	मऽ	म	रऽ। इ० (= **भैरवी**)

गान्धारी–	सा	सा	धा	पा	धा	सा	सा	सा
	ए	ऽ	ऽ	ऽ	तं	ऽ	ऽ	ऽ
	सा	सरि	गा	गा	मग	री	पम	पध
	र	जऽ	नि	व	धूऽ	ऽ	मुऽ	खऽ। इ० (= **यमन**)

मध्यमा–	सा	सा	सा	सा	री	गम	मा	गरि
	पा	ऽ	ऽ	तु	भ	वऽ	मू	ऽऽ
	सा	रिस	सा	पा	सा	नि	ध	ध
	र्धं	जाऽ	ऽ	ऽ	न	न	ऽ	ऽ। इ० (= **खमाज**)
पञ्चमी–	सा	रीग	गा	गा	नी	गा	नी	सा
	ह	रऽ	मू	ऽ	र्धं	जा	ऽ	न। इ० (= **जौनपुरी**)
धैवती–	सा	सा	रिस	निस	धा	धा	धा	धा
	त	रु	णाऽ	ऽऽ	म	लें	ऽ	दु
	सा	सा	रिस	रिग	गा	गा	गा	गा
	म	णि	भूऽ	ऽऽ	षि	ता	ऽ	म इ० (= नि को० **गुर्जरी**)
नैषादी–	सा	सा	सा	सा	रि	नि	सा	सा
	तं	ऽ	सु	र	वं	ऽ	दि	त
	ध	प	रि	नि	सा	सा	सा	सा
	म	हि	ष	म	हा	ऽ	सु	र। इ० (= **बिलावल**)

(a) शुद्ध जातियों के गीतों की स्वर–लिपि के उपरोक्त उदाहरण प्रचलित भातखण्डे–स्वरलिपि में दिये गये हैं। एकमात्रिक स्वर–नाम–संकेत दीर्घ तथा अर्धमात्रिक ह्रस्व लिखे गये हैं।

(b) इसी प्रकार सङ्कीर्ण जातियों के गीतों के भी प्रचलित–स्वरलिपि–बद्ध उदाहरण एक–दो विद्वानों ने दिये हैं, परन्तु केवल प्राचीन स्वरों को प्रचलित स्वरों में रूपान्तरित करने से सङ्कीर्ण जातियों के जो रूप प्राप्त होंगे, वे प्रामाणिक नहीं होंगे।

१६. श्रुति

१ : कर्ण–गम्य सूक्ष्म स्वरान्तर :–

प्राचीन ग्रंथकारों ने ग्रामरूप स्वर–सप्तक की परिधि में श्रुति नामक श्रवण–गम्य २२ सूक्ष्म स्वरान्तर माने हैं। श्रुतियाँ कण्ठ में उत्तरोत्तर तीव्रतर तथा वीणा में अधराधर उच्चोच्चतर रही हैं; षड्ज स्वर ४ श्रुतियों का है, ऋषभ ३ श्रुतियों का है (**ना० शा०** २८।२४–२७; **द०** श्लो० ९–१४; **सं र०** १।३।९; १।३।१३,)

इत्यादि श्रुति–सम्बन्धी प्राथमिक बातें सर्व–विदित हैं। अतः श्रुतिविषयक विशेष बातें हम नीचे दे रहे हैं।

[प्राचीन **ग्रीक, पर्शिअन** तथा उसके पश्चात् के **अरेबियन** संगीत में क्रमशः २८, २४ तथा १७ श्रुतियों का अस्तित्व माना जाता था।]

२ : श्रुति स्वतन्त्र नहीं है

"श्रुतियाँ उच्च-नीच होते हुए भी स्वराश्रित हैं। इसी कारण से "ऋषभ तीन श्रुति है" ऐसा कहते हैं, न कि तृतीय श्रुति या श्रुति पर ऋषभ है। श्रुतिरूप अवयवों से स्वर उत्पन्न नहीं होता, न वह श्रुतियों का संचय (= ढेर) है" :–

(a) "श्रुतयः उच्चनीचतया अपि स्वराश्रयाः एव प्रतीयन्ते।" (IV, पृ० १२, **अभि०**)

(b) "तत एव तिस्रः श्रुतयः ऋषभ, इत्यादि वक्ष्यते, न तृतीया श्रुतिः इति।... न च अवयवैः स्वरः, न अपि संचयः, यौगपद्याभावात्।" (पृ० १७, **अभि०**)

३ : श्रुति की एक और व्याख्या

अभिनवगुप्त तथा **शार्ङ्गदेव** आदि ने श्रुति की एक और व्याख्या बताई है। "तन्त्री पर आघात करने से प्रथम क्षण में सुनाई देती ध्वनि श्रुति है तथा उसके पश्चात् सुनाई देती अनुरणनात्मक मधुर ध्वनि (Continued vibrations) स्वर है" :–

(a) "अभिघातजात् शब्दात् अनन्तरं यः अनुरणन–लक्षणः शब्दः उपजायते, स तावन् निसर्ग–स्निग्ध–मधुराकारः।" (**ना० शा०** IV, पृ० १२, **अभि०**)

(b) "श्रुत्यनन्तर–भावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ॥ १।३।२४ ॥
स्वतो रञ्जयति श्रोतृ–चित्तं स स्वर उच्यते ॥" (**सं० र०**)

यह व्याख्या आधुनिक श्रुति–वाद के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

४ : वीणा के लिए ही श्रुतियाँ हैं

भरत ने कण्ठ में तथा वीणा पर उत्पन्न की जानेवाली वस्तु तथा क्रियाएँ बतलायी हैं, उनमें वीणागत वस्तुओं में ही श्रुति की गणना की है (**ना० शा०** २८।१४–१५)। इस विषय को स्पष्ट करते हुए **अभिनवगुप्त** ने कहा है कि–" स्वर–सारणा में तन्त्रियों को चढ़ाने–उतारने की क्रिया श्रुतियों के आधार से की जाती है, अतः श्रुतियों का उपयोग वीणा में ही है" :–

"श्रुतयश्च वीणायाम् एव उपयोगिन्यः, सारणायाः तन्त्र्युत्कर्षणापकर्षणस्य तन्मूलत्वात् च।" (पृ० ९, **अभि०**)

५ : वीणा पर श्रुतियों का प्रत्यक्षीकरण

सरोद, सारंगी अथवा पर्दावली वीणा के दो स्वर–स्थानों के बीच के अन्तर को श्रुति–संख्यानुसार विभाजित तथा अङ्कित करने से श्रुतियों का प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है :–

(a) "श्रुति–निदर्शनं तु वीणायां स्फुटम् ।" (पृ० १३, **अभि०**)

(b) "अङ्केत च श्रुति–स्थानान्यमूनि सुख–बुद्धये ।
यथास्वं स्वर-भेदानां विभागात् श्रुति-देश-धीः" ॥(**सं० र०** ।६।१०८)

[वीणा पर श्रुत्यङ्कन की पद्धति **अरेबियन** शास्त्रकारों ने भी अपनायी है ।]

६ : भरतोक्त श्रुति–निदर्शन

चल–वीणा पर म० ग्रामिक पञ्चम के आधार से स्वरों के एक–एक बार एक–एक श्रुति उतार कर तथा ध्रुव–वीणा के स्वरों के साथ उन उतारे हुए स्वरों की तुलना करके श्रुति के नाप तथा २२ संख्या को सिद्ध करने का प्रयोग **भरत** द्वारा वर्णित है (२८–२७, पृ० २०) । इस विषय में **भरत** ने "पुनरपि तद्वद् एव अपकर्षेत्" शब्दों द्वारा प्रत्येक सारणा को निर्दिष्ट किया है, अतः २२ श्रुतियाँ एक ही नाप की थीं, ऐसा निष्कर्ष निकलता है । परन्तु **भरत** के इसी श्रुति–निदर्शन–प्रयोग के आधार से कुछ विद्वान् श्रुति के तीन नाप निकालते हैं । इस कार्य के लिए वे आधुनिक ध्वनि–विज्ञान का सहारा लेते हैं ।

श्रुति के नाप की सूचना **भरत** के निम्नोक्त वचन में प्राप्त होती है :–

"एवं पञ्चमस्य श्रुत्युत्कर्षापकर्षाभ्यां यद् अन्तरं मार्दवाद् आयतत्वाद् वा, तत् प्रमाणं श्रुतिः ।" (२८–२७)

भरत–वचनों का भाष्य करते हुए **अभिनवगुप्त** ने "सभी श्रुतियाँ एक ही प्रमाण की हैं", यह अर्थ बार–बार बताया है :–

(a) "एवं तीव्रत्व-मन्दत्व–हेतुभ्यां मार्दवायतत्वाभ्यां यद् अन्तरं, यो विशेषावबोधः, प्रमाणं निश्चायकं यस्याः सा श्रुतिः ।" (IV, पृ० २१)

(b) "अतः एव यत्र उत्कर्षापकर्षौ कौचिद् ध्वनीनां ग्राह्येते, तत्र एका श्रुतिः इति" । (पृ० २२)

(c) "वक्ष्यमाणोच्च–नीच–विभागो ध्वनिः एका श्रुतिः, इति तात्पर्यम् ।" (पृ० २२)

(d) "एवम् एकस्याः श्रुतेः स्वरूपम् अभिधाय श्रुति–सङ्ख्या–स्वरूपं यथा–लक्षणीयं यथा भवति तथा दर्शयितुम् उपक्रमते–'**निदर्शनम् तु आसाम्**' इति ।" (पृ० २२)

(e) "द्वितीया (सारणा) श्रुतेः इयत्ताम् (साधयति)।" (पृ० २२)

[प्रथम सारणा को **अभिनव** ने द्वितीय सारणा नाम दिया है, क्योंकि दोनों वीणाओं को षड्जग्राम में प्रथमतः मिलाने की क्रिया को उसने प्रथम सारणा कहा है।]

(f) "एवं श्रुतेः स्वरूपम् उपलब्धम्।" (पृ० २३, अभि०)

(g) "एवं ध्रुव-वीणायां श्रुतेः इयत्ता अत्र (स्फुटीकृता) भवति।" (पृ० २३, अभि०)

७ : मतङ्गोक्त श्रुति का मान

मतङ्ग ने **भरत** के कथन का ही अनुसरण किया है, परन्तु **भरत** के वक्तव्य के कुछ शब्दों को अधिक स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ :-

"ननु श्रुतेः किं मानम्? उच्यते........यदन्तरं तत्-प्रमाणं श्रुतिः।" इ० (बृ० दे०, पृ० ५१६)

मतङ्ग के उपरोक्त कथन में प्रथम वाक्य में 'मानम्' शब्द से स्पष्ट होता है कि इस चतुःसारणा द्वारा निर्दिष्ट २२ श्रुतियों में प्राचीन शास्त्रकारों को श्रुति का एक ही नाप अभिप्रेत था।

शार्ङ्गदेव ने द्वि-प्रकार पञ्चम पर आधारित **भरत** की चतुःसारणा की रीति का त्याग कर दो वीणाओं पर एक सप्तक की परिधि में 'मनागुच्च-ध्वनि' वाली २२-२२ तारों को लगाने की योजना बताई है (१-१०-२२)। **शार्ङ्गदेव** की यह चतुःसारणा प्रक्रिया **दत्तिलोक्त** २२ ध्वनिरूप श्रुतियों की कल्पना के ऊपर आधारित है, यह स्पष्ट है। यह प्रक्रिया भी श्रुति की प्रचलित कल्पना का विरोध करती है।

८ : पं० अहोबल की पञ्चम-भावी श्रुतियाँ

पं० **अहोबल** ने स्वरों को पञ्चम-भावी बताया है, उसी प्रकार २२ श्रुतियाँ भी पञ्चम-भावी हैं, ऐसा प्रतिपादन किया है :-

"षड्ज-पञ्चम-भावेन श्रुतीर्द्वाविंशतिं जगुः" ॥४१॥

पञ्चम-भावी चक्रिक-स्वर २२ से अथवा ५२ तक या अधिक उत्पन्न किये जा सकते हैं। यह **पायथेगोरियन्** प्रक्रिया है।

१७. मूर्छना

१ : मूर्छना की व्याख्याएँ

(a) क्रम-युक्त सात स्वरों की मालिका को **भरत** ने मूर्छना संज्ञा की है :-

"क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त" इ० (२८।३२) तथा मन्द्रादि तीन स्थानों की प्राप्ति कराना मूर्छनाओं एवं तानों का प्रयोजन निर्दिष्ट किया है (IV, पृ० २७)।

(b) **भरत** के कथन को **मतङ्ग** ने अधिक स्पष्ट किया है :-

"मूर्छते व्याप्यते।" (पृ० २२); "...तार-मन्द्र-सिद्ध्यर्थम्।" (पृ० २९)

जाति-रागों के स्वर-चलन के लिए मध्य-सप्तक के स्वरों के उपरान्त कुछ मन्द्र तथा तार के स्वरों की आवश्यकता पूरी करने के लिए वास्तव में १२ स्वरों की मूर्छना होनी चाहिए, ऐसा आगे **मतङ्ग** ने सूचित किया है तथा उसके लिए **कोहल** तथा **नन्दिकेश्वर** का आधार प्रस्तुत किया है (पृ० ३२)।

२ : जातियों की मूर्छनाएँ

भरत ने किसी भी जाति के लिए मूर्छना नहीं कही है, परन्तु **मतङ्ग** तथा **शाङ्र्गदेव** ने कही है।

३ : अपूर्ण वीणा के लिए मूर्छनाएँ

प्राचीन संगीत में एक सप्तक वाली छोटी वीणाएँ ऊपर ध़ से ध, नि़ से नि आदि गीतों के लिए आवश्यक स्वर-क्षेत्र वीणा पर लाने की प्रक्रिया को मूर्छना नाम दिया जाता होगा, जैसा-"अपूर्ण-स्वरायां वीणायाम् अवश्यंभावी मध्य-सप्तकः।" इ० **अभिनवगुप्त** ने स्पष्ट किया है (पृ० २८)।

४ : संगीत में मूर्छनाएँ अनुपयुक्त

संगीत के प्रयोग में मूर्छना-तानों का उपयोग नहीं है, ऐसा **अभिनव** ने स्पष्ट किया है :-

"मूर्छनाः तावद् जाति-राग-भाषावन् न प्रयोगोपयोगिन्यः।" इ० (पृ० २९)

५ : साम-गान में उपयोग

मूर्छनाओं का उपयोग साम-गान में होता था, ऐसा **अभिनव** द्वारा स्पष्टीकरण किया गया है :-

"मूर्छनानां यद्यपि इह आगमे नास्ति उपयोगः, तथापि साम-क्रियायां वा स्फुटः एव उपयोगः। तथा हि दर्शितम्-उत्तरमन्द्रया तिस्रो गाथाः।" इ० (पृ० ३०)

६ : मूर्छना द्वारा राग-ज्ञान

तथापि राग का संपूर्णत्व-अपूर्णत्व मूर्छनाओं के द्वारा ज्ञात हो सकता है, ऐसी एक दलील **अभिनवगुप्त** ने मूर्छना के पक्ष में प्रस्तुत की है (पृ० ३१)।

७ : आलाप-तानों में उपयोग

भरत के वचन–"प्रयोक्तृ-श्रोतृ-सुखार्थं च मूर्छना-नानात्वम्" के भाष्य में **अभिनवगुप्त** ने स्पष्ट किया है :–

i. "मूर्छना-तानानाम् ऋग्गाथा–सामभ्य: आनीय यदि प्रकर्षेण योजनं स्थानानां विशेष–रक्ति–दायिनां प्राप्त्यर्थम् ।" इ० (पृ० ३१)

ii. "प्रत्येकं ग्रामरागादौ सर्वेषां मूर्छनादीनां बहुधा प्रयोग:, इति मूर्छना–नानात्वं युक्तम् । न हि इयत्ता काचिद् इति स्थितम् ।" (पृ० ३१)

भावार्थ यह कि "रागो में विविध मूर्छनाओं का प्रयोग करने से (राग के) विशेष रक्तिदायक अनेक **स्थानों** की उपलब्धि होती है" इ० । प्रचलित राग–गायन में भी कभी इस, कभी उस प्रमुख स्वर पर आलाप अथवा तानों के समुदाय लाकर रखने की क्रिया की जाती है, जिससे राग का आविर्भाव अथवा तिरोभाव होकर रञ्जकता बढ़ती है । उपरोक्त विधान इसी क्रिया को इङ्गित करता है । प्रचलित हिं. राग तोडी तथा मारवा में रि से ध अथवा ध तक अथवा रि से रि तक अथवा ध से ध तक लेते हैं; श्रीराग में रि से रि तक तान लेने से राग स्पष्ट होता है । ये राग–तानें 'मूर्छनायें' ही कहलायगी ।

८ : मूर्छना द्वारा स्थान-प्राप्ति

"**गान्धर्व संगीत** में मूर्छना–तानों को गाने से श्रेयस् की प्राप्ति होती है तथा गान में अर्थात् **देशी संगीत** में मूर्छना तथा कूट–तानों द्वारा राग के विभिन्न स्थानों की प्राप्ति होती है" यह **शार्ङ्गदेव** का कथन उपरोक्त अर्थ को ही स्पष्ट करता है:–

"गान्धर्वे मूर्छनास्ताना : श्रेयसे श्रुति–चोदिता: ।
गाने स्थानस्य लाभेन ते कूटाश्चोपयोगिन:" ।। १।४।९१ ।।

इस श्लोक में आये हुए 'स्थान' शब्द का स्पष्टीकरण **कल्लिनाथ** ने "तत्तन्मूर्छनावश सारित स्वरों की आधार–श्रुति के ज्ञान से" ऐसा किया है (पृ० १४५), परन्तु **सिंहभूपाल** द्वारा किया गया स्पष्टीकरण–"रञ्जक स्थायों का लाभ होने से" अथवा "मन्द्रादि स्थानों की प्राप्ति हो जाने से" अन्वर्थक है (पृ० १४६–१४७) ।

९ : मूर्छना-प्रारम्भक स्वर से मेलोत्पत्ति ?

कतिपय विद्वानों ने अंश स्वर को मेलोत्पादक स्वर (=स्थायी) तथा मूर्छना–प्रारम्भक माना है, परन्तु शुद्ध सात जातियों में अंश स्वर मूर्छना–प्रारम्भक स्वर से भिन्न है, अत: अंश के आधार पर मूर्छना मेल है, यह निष्कर्ष निराधार एवं भ्रमपूर्ण है ।

१० : मध्ययुगीन ग्रंथकारों की मूर्छनाएँ

भरत, अभिनवगुप्त आदि प्राचीन ग्रंथकारों ने मूर्छना का एक अर्थ–" रागों में अनेक स्थाय उत्पन्न करनेवाली तानें " ऐसा बताया है, इसी अर्थ में ही मध्ययुगीन ग्रंथकारों ने मूर्छना शब्द का प्रयोग किया है :–

(a) पं० **शुभङ्कर** ने–" मूर्छना प्रस्तार: " ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की है।

(b) पं० **अहोबल** ने राग के आलाप–तानों के प्रारम्भक स्वर से मूर्छना कही है तथा उसी को राग का स्वरोद्ग्राह, उद्ग्राह–तान आदि अन्य संज्ञाएँ की हैं। उदाहरणार्थ :–

सैन्धव :– " धैवतादिक–मूर्छना " ।। ३५७ ।।
प्रस्तार–' धसारिममपपधधा ' इ०

मालवश्री :– " मध्यमादि–स्वरोद्ग्राहा..." ।। ३६४ ।।
प्रस्तार–' मपधनिसगसनि ' इ०

देशाख्य :– " गान्धार–स्वर–मूर्छन: " ।। ३७१ ।।
प्रस्तार–' गपधससस ' इ०

(c) पं० **श्रीनिवास** ने भी मूर्छना को राग की उद्ग्राह–तान कही है।

११ : पं० दामोदर की मूर्छनाएँ

पं० **दामोदर** ने मेल–पद्धति का आश्रय न करते हुए रागों की केवल अंश–न्यासाधारित मूर्छनाएँ कही हैं। उसने हनुमन्मत के राग–रागिणी वर्गीकरण को स्वीकृत किया है, जो मुगल–कालीन व्यवस्था है। पं० **दामोदर** की मूर्छनाएँ ठाठ–स्वरूप हैं क्या, ऐसी शंका आती है; परन्तु उसके द्वारा वर्णित कई रागों के लक्षणों में विकृत स्वरों का निर्देश आया है :–

(a **भैरव** :–" विकृतो धैवतो यत्र..." ।। ४६ ।।

(b) **देशी** :–" ...विकृतर्षभा " ।। ६७ ।।

(c) **मेघ** :- " विकृतो धैवतो ज्ञेय: ..." ।। ७६ ।। इ०

अत: सिद्ध होता है कि उसके समय में मेल–पद्धति प्रचलित थी, जिसको उसने सोद्देश्य छिपाया है।

१२ : द्वितीय मूर्छना–पद्धति

i. **शाङ्‌र्गदेव** ने एक अन्य मतानुसार द्वितीय मूर्छना–पद्धति का निर्देश किया है। उसके अनुसार ष० ग्रामिक प्रत्येक मूर्छना षड्ज से तथा म० ग्रामिक प्रत्येक मूर्छना मध्यम के स्थान से ही प्रारम्भ की जाती थी तथा मूर्छना-प्रारम्भक स्वर को

षड्ज अथवा मध्यम के स्थान पर स्थापित करने के पश्चात् मूर्छना-प्रारम्भक स्वर के पश्चात् के स्वर उनकी मूल श्रुतिसंख्या के अनुसार उतार-चढा कर यथा-स्थान किये जाते थे :-

"षड्ज-स्थान-स्थितैर्न्याद्यै रजन्याद्याः परे विदुः ॥ १।४।१४ ॥

"...षड्जादीन् मध्यमादींश्च तदूर्ध्वं सारयेत् क्रमात्" ॥ १५ ॥

यह विधान अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है, परन्तु **भरत** ने एक ग्राम की मूर्छनाओं को अन्य ग्राम की मूर्छनाएँ करने के लिए 'द्विविधैव मूर्छना' की विधि बतलायी है, उसी का यह परिवर्धित संस्करण प्रतीत होता है। इस मूर्छना-प्रकार के पक्ष में **कल्लिनाथ** ने 'लक्ष्यानुरोधेन पक्षान्तरम् आह' इस प्रकार कहा है, परन्तु यह मूर्छना-प्रकार दोनों ग्रामों से सम्बन्धित होने से प्राचीन होना चाहिए, यद्यपि प्राचीन किसी भी ग्रन्थ में इसका उल्लेख उपलब्ध नहीं है। इस द्वितीय मूर्छना की प्रक्रिया द्वारा भी ठाठ उत्पन्न नहीं होते थे, क्योंकि इसमें मूर्छना-प्रारम्भक स्वर को drone देने का निर्देश नहीं है।

ii. शाङ्र्गदेवोक्त विधान के अनुसार 'सारयेत्' का अर्थ "वीणा के पर्दों को सरकाना" ऐसा कर नहीं सकते। क्योंकि प्राचीन सारिका-युक्त आलापिनी, किन्नरी आदि वीणाओं के पर्दे वीणा-दण्ड को मोम आदि के मिश्रण से चिपकाये हुए, अतएव अचल थे; अतः स्वरों की सारणा की क्रिया प्राचीन हार्प जैसी वीणाओं के तारों को उतार-चढा कर अभीष्ट स्वरों में लगाने के लिए ही कही है, ऐसा मानना पडेगा।

१३ : मूर्छना द्वारा ठाठ पैदा किये जाते थे अथवा मूर्छनाही ठाठ है यह भ्रामक मत **पं० भातखण्डेजी** के ग्रन्थों में बार-बार आया है :-

(a) "भिन्न-स्वरं समारभ्य सप्त-स्वर-व्यवस्थया।
भवेत् परिस्फुटा तत्र स्वरान्तर-विभिन्नता" ॥४९॥ (**ल० सं०**, पृ० ५३)

(b) "मूर्छना-शब्द-पर्यायो लक्ष्ये मेलः समादृतः। अभिनवरागमञ्जर्याम्।"
(**भा० शा०**, भाग-४, पृ० ७८)

(c) "मूर्छना से भिन्न-भिन्न राग उत्पन्न होते हैं, ऐसा ग्रन्थकार मानते हैं। ......हमारे संगीत में जिन्हें थाट कहते हैं" (**भा० शा०** भाग-१. पृ० १४८)।

१४ : राग की 'बढत' करते समय प्रत्येक स्वर पर अनेक छोटी-बड़ी मूर्छनाएँ (आलाप-तानें) लेने की प्रथा दाक्षिणात्य संगीत में विशेष रूप से रूढ है। उपरान्त दाक्षिणात्य एक गमक का नाम भी 'मूर्छना' है।

१८. भाषादि राग

i. भाषादि-रागों का वर्णन सर्व-प्रथम याष्टिक-काश्यप-संवाद के रूप से **बृ० दे०** में उपलब्ध है। मतङ्गोक्त भाषादि रागो की कुल संख्या ७३ है (**बृ० दे०**, पृ०

१०५) i. **मतङ्ग** ने शार्दूलादिकों के मतभेद से जो भाषाएँ कही हैं, उनको भी सम्मिलित करके पश्चात् के ग्रन्थकारों ने उनकी संख्या बढ़ा दी। उदाहरणार्थ, हिन्दोल की भाषाएँ **मतङ्ग** ने ५, **शाङ्गर्देव** ने ९ तथा **कुम्भ** ने १३ कही हैं। भिन्नषड्ज की मतङ्गोक्त भाषा विभाषाएँ शाङ्गर्देवोक्त १२ तथा कुम्भोक्त २७ हैं। वास्तव में भाषादि–राग **मतङ्ग** के समय के पूर्व में ही अप्रचलित हो गये थे। अतः तत्पश्चात् के इन ग्रन्थकारों का भाषाओं की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न व्यर्थ ही था।

ii. ग्राम, स्वर-संवाद, वीणाएँ तथा भाषादि रागों के विषय में **कुम्भ** ने स्वयं की कुछ कल्पनाएँ जोड़ी हैं, इसलिए प्राचीन संगीत के विषय में उसका विवेचन विश्वसनीय नहीं है। दो ग्राम, द्वै–ग्रामिक वीणाएँ, स्वर–संवाद आदि के विषयों में **कुम्भ** का विवेचन भ्रामक है।

संगीतराज की मुद्रित प्रति के भाषा प्रकरण में श्लोक १०० में पञ्चमषाडव की भाषा 'पोता' कही गई है तथा उसके पश्चात्–

'विभाषा पल्लवीत्येका तिस्रश्चान्तरभाषिका:'।

यह पङ्क्ति श्लोक १०१ में दी गयी है। तदनन्तर श्लोक १०३ की प्रथम पङ्क्ति :–

"प्रोचुर्भाषांशकामेके तद्विदो रेवगुप्तके।"

मुद्रित है। वास्तव में इन पङ्क्तियों को एकत्र करके श्लोक बनाना चाहिए था, जिससे रेवगुप्त की भाषा शका तथा विभाषा पल्लवी है, ऐसा सही अर्थ निकल सके। उक्त श्लोक इस प्रकार होगा :–

"प्रोचुर्भाषां शकामेके तद्विदो रेवगुप्तके।
विभाषा पल्लवीत्येका तिस्रश्चान्तरभाषिका:।"

इस श्लोक में **कुम्भ** ने 'एके तद्विद:' कह कर **शाङ्गर्देव** के ऊपर कटाक्ष किया है!

iii. गान्धर्व संगीत तथा भाषा–रागों के संगीत की भिन्नता **मतंग** के निम्नोक्त स्पष्टीकरण से ज्ञात होती है। भाषादि–रागों के गायन का लक्ष्य केवल रंजकता उत्पन्न करना था, जैसा कि **मतङ्ग** ने स्पष्ट किया है :–

"प्रकाशं न च लक्ष्यन्ते यत्न–हीनैस्तु गायकै:।
प्रगीतास्तु प्रसिद्ध्यन्ति सुस्वराणां विशेषत:।। (पृ० १०५)

अर्थात् सुस्वर तथा प्रयत्नशील गायक ही भाषादि–रागों का गायन कर सकते हैं।

iv. जाति–ग्रामरागों का गान गान्धर्व था, उससे लोकरञ्जन अपेक्षित नहीं था। इस बात को **अभिनवगुप्त** ने इस प्रकार स्पष्ट किया है :–

"देवानाम् इष्टं गान्धर्वम् ।...गानं हि केवलं प्रीतिकार्ये वर्तते ।" (IV, पृ० ६)

गान्धर्व-संगीत वास्तव में ग्रामरागों तक ही सीमित था :-

"गान्धर्व-शास्त्रम् ईषद् असमाप्ते गान्धर्वे ग्रामरागरूपे इति वा...।" (पृ०४३)

गान्धर्व संगीत में शब्दों तथा ताल का महत्त्व था, उसमें स्वरों का महत्त्व **कम** था । स्वरों के रूप भी ठीक नहीं थे ।

V. भाषादि रागों में पन्द्रह स्वर

राग-भाषादि में १५ स्वरों का प्रयोग वैचित्र्य के कारण किया जाता है, ऐसा अभिनवगुप्त ने कहा है तथा इस कथन को **वृद्धकाश्यप** के वचन का आधार प्रस्तुत किया है :-

"वैचित्र्यन्तरं तु राग-भाषादौ लक्ष्ये दृश्यते एव । तथा च वृद्धकाश्यपः", इत्यादि । इन १५ स्वरों का प्रयोग जातियों में करना चाहिए, ऐसा वृद्धकाश्यप का कथन है, वह समीचीन नहीं है :-

"जातिष्वेते प्रयोक्तव्याः स्वराः पञ्चदशैव तु ।।" (IV, पृ० ३४)

इन श्लोकों की भाषा बहुत ही अशुद्ध तथा कथन अस्पष्ट है ।

१९. देशी राग

रागाङ्गादि चार वर्ग में विभाजित रागों की देशी-राग संज्ञा थी (**सं० र०** २-२-२) । ये राग **मतंग** के समय में ही प्रचलित हो गये होंगे तथा भाषादि राग उसी समय लुप्त हो गये होंगे । देशी रागों के विषय में **मतङ्ग** का वचन निम्न प्रकार से है :-

"अतः परं प्रवक्ष्यामि देशी-राग-कदम्बकम् ।" इ०

इसके आगे कच्छेली, माङ्गाली आदि रागों के वर्णन के ७ श्लोक **बृ० दे०** में उपलब्ध हैं तथा आगे के श्लोक मुद्रित प्रति में लुप्त हैं (पृ० १४१) । **मतङ्ग** के रागाङ्ग-प्रकरण के कुछ श्लोक **कल्लिनाथ** तथा **सिंहभूपाल** ने उद्धृत किये हैं (II, पृ० १५, १८) ।

शाङ्गर्देव ने देशी रागों के दो भेद बताये हैं, प्राक्प्रसिद्ध तथा अधुनाप्रसिद्ध । इनमें कुछ प्राचीन ग्रामराग तथा भाषादि भी अन्तर्भूत होते थे क्योंकि उस समय वे प्रचलित थे (**सं० र०** २-२-३) । **शाङ्गर्देव** के कथनानुसार **प्राक्प्रसिद्ध** रागाङ्गादि-राग ३४ तथा **अधुना-प्रसिद्ध** ५२ थे ।

मतङ्ग के समय में अथवा तत्पूर्व ही भाषा-विभाषादि रागों के स्वरूप के विशेष सुव्यवस्थित हो जाने से उन्हींका रूपान्तर रागाङ्गादि रागों में हो गया।

उदाहरणार्थ, अधिकांश रागाङ्गादि रागों के ग्रह, अंश तथा न्यास अथवा ग्रह एवं न्यास एक ही स्वर होता था।

देशी रागों के स्वरूप में इस प्रकार ग्रामरागों एवं भाषारागों की अपेक्षा अधिक एकरूपता आयी थी, परिणामतः आगे चल कर मध्ययुग में उनसे संपूर्ण एकरूपता वाली प्रचलित राग-पद्धति एवं ठाठ-पद्धति विकसित हो सकी।

२०. प्राचीन तथा प्रचलित राग

शाङ्र्गदेव के समय में जो रागाङ्गादि राग प्रचलित थे, उनमें कई ग्रामराग तथा भाषाराग भी अन्तर्भूत थे। **शाङ्र्गदेव** ने वीणा एवं वंश के ऊपर बजाने के लिए अपने समय के प्रसिद्ध राग दिये हैं, उनमें भैरव, वराटी, गुर्जरी, वसन्त, धन्नासी, देशी, भैरवी, छायानट्टा, मल्हार, कामोदा, ललिता, वेलावली, रामकृति आदि का निर्देश है। ये ही राग आज भी विशेष रूप से प्रचलित हैं, परन्तु इन प्राचीन तथा प्रचलित रागों के रूप में समानता है अथवा नहीं, यह विषय अभी तक संशोधनीय है।

प्राचीन राग-नामों के कुछ रूपान्तर वर्तमान में प्रचलित है। उदाहरणार्थ :-

मालवकैशिक = मालकौंस; कैशिक = कौंसी; श्री = बागेश्री; प्रथम-मंजरी = पटमंजरी; वेलावली = बिलावल इत्यादि।

२१. ग्रामरागों के पाँच वर्ग-'गीति'

प्राचीन शास्त्रकारों ने ग्रामरागों की विभिन्न प्रकृति के अनुसार गायन-शैली पाँच प्रकार की मान कर इन शैलिओं को **गीति** संज्ञा दी है तथा गीतियों के आधार पर ग्रामरागों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है :-

"पञ्चधा ग्रामरागाः स्युः पञ्च-गीति-समाश्रयात्" ।।२।२।।

रागों की प्रकृति तथा गायन-शैली के अनुसार प्रचलित रागों के इसी तरह कई प्रकार आज भी माने जाते हैं :-

१ : गम्भीर अर्थात् आलापयोग्य; २ : वेगयुक्त अर्थात् तानबाजी के योग्य तथा ३ : चञ्चल-प्रकृति के यानी अर्धशास्त्रीय संगीत के लिए योग्य, इत्यादि।

कुछ आधुनिक विद्वान् प्राचीन, शुद्धा, भिन्ना, गौडी आदि गीतियों का सम्बन्ध ध्रुपद-ख्यालादि प्रबन्धों की विशिष्ट गायन-शैलियों के साथ जोडते हैं, जो निराधार तथा भ्रामक है।

२२. भरत के समय में राग

भरत ने नाटक के विभिन्न सन्धिओं में विभिन्न ग्रामरागों का प्रयोग करने के लिए कहा है :–

" मुखे तु मध्यमग्रामः, षड्जः प्रतिमुखे भवेत् ॥ " इत्यादि

(३२/ ४२६–४२९)

भाषारागों का प्रचलन भी भरत के समय में था, ऐसा **भरत** के निम्ननिर्दिष्ट वचन से प्रतीत होता है :–

" सैन्धवीमाश्रितं भाषां ज्ञेयं सैन्धवकं बुधैः " ॥३१।३५८॥ भरत के इस श्लोक में सैंधवक गीत सैन्धवी भाषाराग में गाया जाता था, ऐसी सूचना मिलती है ।

२३. ग्रीक, ईरानी–अरबी तथा चाइनीज संगीत

प्राचीन भारतीय संगीत तथा प्राचीन **ग्रीक** संगीत दोनों में बहुत ही समानता है, जिसका कुछ कारण तो होगा ही । ग्रीक संगीत में विभिन्न श्रुत्यन्तरों के स्वरों पर आधारित तीन ग्राम (Genera) माने जाते थे । पश्चात् के समय में एक ही ग्राम प्रचार में रहा । सात ठाठों की (अर्थात् जातियों की) संज्ञा Species थी । ग्रीक संगीत में प्रयुक्त संज्ञा Harmonia का अर्थ A musical idiom होता था, जो **मूर्छना** के समान है । ई० पूर्व ४०० के समय में ग्रीक संगीत में हमारे सामगान में प्रयुक्त **तान** जैसे स्वर–समुदाय की संज्ञा Tonoi थी । मूलत: Continuous double octave scales को Tonoi कहते थे । तत्पश्चात् चौथी शती में Tonoi को भरत की सात शुद्ध जातियों के समान **सात ठाठ** के रूप में मानने लगे ।

(द्रष्टव्य–The New Oxford History of Music I, pp. 347–358)

पुरानी **अरबी-ईरानी** संगीत प्रणाली मेसोपोटेमियन्, ग्रीक तथा प्राचीन भारतीय संगीत पर आधारित थी । उस संगीत में विभिन्न स्वरों को आधार–स्वर (tonic) बना कर modes उत्पन्न किये जाते थे । तेरहवीं शती के अन्त में एक स्वर–सप्तक में १२ स्वर निश्चित करके उनसे ठाठ बनाने की पद्धति अरबी–ईरानी संगीत में प्रस्थापित हुई ।

(द्रष्टव्य :–Uiniversal History of Music, p. 95)

चाइनीज संगीत में ई० पू० चौथी–पाँचवी शती में शुद्ध ठाठ ओडव था एवं उसका स्वरूप भूपाली राग के समान था । इसके प्रत्येक स्वर को आधार–स्वर बनाकर कुल पाँच ठाठ उत्पन्न किये जाते थे । ई० पू० २ से १ शती में सात स्वरों का प्रयोग होने लगा तथा उनके द्वारा सात ठाठ उत्पन्न किये जाने लगे । मध्यम

को स्वर–सप्तक का प्रमुख स्वर मानते थे। प्रत्येक mode को उसके अन्तिम अर्थात् न्यास स्वर का नाम देते थे, जिस प्रकार भरत की जातियों के नाम षाड्जी आर्षभी आदि अंश–न्यास स्वरों के नाम पर रखे गये थे। तत्पश्चात् के समय में मध्यम–भावी तथा पञ्चम–भावी कतिपय स्वरों को मिलाकर एक स्वर–सप्तक में १२ स्वरों का प्रयोग करने लगे।

चाइनीज संगीतशास्त्रकारों ने (ई० पू० ४०) एक स्वर–सप्तक में पञ्चम–भाव–जन्य ६० **श्रुतियों** को भी सिद्ध किया था।

राग–रूप (आलापादि–स्वर–विस्तार) अंशतः ईरानी, अरबी तथा चाइनीज संगीत में भी प्रचलित है, तथापि Natural scale के स्वर केवल भारतीय संगीत में ही प्रयुक्त होते हैं। ख्याल जैसी संपूर्ण विकसित राग–गायन–पद्धति तथा सारंगी, सितार, तबला जैसे उत्कृष्ट वाद्य अरबी–ईरानी संगीत में आज भी नहीं हैं।

A gist of theory of Ancient Indian Music

I have discussed the various main topics of ancient Indian music in detail in the adjacent Hindi article in this volume. The gist of the artiele is as follows :-

Sa-grāma Scale

i As ma (the Fourth) was the tonic of Sa-grāma, it was a plagal mode of Khamāja i. e. C. major with the seventh flat.

il Nearly all of our scholars accept Sa-grāma as ' low ' Kāfi ('utari Kāfi') i. e. D mode, which is wrong practically, as well as, scientifically.

iii In deśi rāga music, after Bharta's era, sa become tonic of Sa-grama. As a consequence the scale settled to the correct Kāfi This change must have been occurred before or in the times of Mataṅga, though he has not mentioned it.

iv. *Ag.* has mentioned this and the other changes.
(iv, p. 394) *K.* has shown the further changes. (II, p. 115)

v. *Ahobal,* the medieval author has given Kāfi Ścale as the initial Scale of Indian music, applying the ancient Śruti values to the intervals of Kāfi scale.

Tri-Śruti notes

Three-Śruti ri and dha were, according to *Ag.*, Kampita-Svarita notes of Vedie chant They were of ościllating nature. (IV, p. 14, 30/5)

Antara-Kākali

i. *Bharata* has placed the note antara between Śuddha (flat) ga and ma and Kākali between Śuddha (flat) ni and Sa. He has not shown the place of these intervals on the string nor by any other means. *Mataṅg. Ag.* and *Ś.* have copied Bharata.

ii. *Ahobala* has shown the place of the twelve intervals on the string. His ri is the major second and ga and ri are correct minor third and seventh; bnt his other notes are much high and nearly Pythagorean. He has explained that all the intervals and śrutis are produced by the *Cycle of the Fifth.*

Ma-grāma Scale

According to the over-lapping process, shown by *Bharata*, Ma-grāma, started from ma, which is placed on Sa of sa-grāma tallies with Sa-grāma, with the only difference that the Third note becomes a sharp Third. The note pa of the original Ma-grāma is not different from ri of Sa-grāma. In this way, the head-ache-giving problem of a low Fifth of Ma-grāma is also solved ! Bharata has discribed the over-lapping process, for changing one grāme into the other with ease. (*N. S.* IV, p 26)

Kaiśik intervals

Kaiśika process, if applied to each grāma scale, both the scales become out of tune. But by joininig the Kaiśika sections of both the grāmas, we obtain a useful scale. *Ag.* has given directions for joining both the grāmas and thus the scale formed is the Bilāval Scale :-

sa, 4 ri, | 3 ga, 2 ma, 4 pa, 4 dha, | 3 ni, 2 sa.

Ag. tells, further that the Kaiśika notes are to be used in the jātis, which have got weak ri and dha. He further says that the Kaiśik-scale is to be used for all the jātis and grāmarāgas, bearing the name Kaiśika (IV, p. 34, 35)

Anśa notes

Anśa is a general term applied to all the strong notes of a jāti-rāga (*S. R.* 1/7/32; I, p. 182, 183 *K.*)

Vādī note

Vādī is the main anśa of a rāga similar to the Vādī in H. rāgas. (I. p. 183, *K.*) The remaining anśa notes are called paryāyānśas. (*S. R.* I, p. 190, *K.*) *K.* explains that any anśa note of a jāti could be made vādī and graha alternately (I, p. 196) This arrangement we also find in H. rāgas.

Nyāsa note

i. It is the final note of a jātī. In seven main ('pure') gātis, anśa, graha (= the beginning note) and nyāsa are one and the same note (*S. R.* 1/7/2; I, p. 169)

ii. *Bharata* says that the nyāsa note and the antaramārga (joining some distant notes of a rāga) creat the personality of a jāti. (28/75). Nānyadeva has made this point more clear (*B. B.* II, p. 132)

iii. Anśa, graha e.t.c., except the nyāsa note of a jāti could be changed for forming its varieties. (*N. S.* 28/46, *S. R.* 1/7/3)

vi. Nyāsa note of a jāti was unchangeable. *K.* states that Nyāsa note of a jāti, if changed, the main factor of the jāti is lost and the jāti so formed could not be identified and differentiated from the other jātis (I. p. 170)

Upohana

Initial ālāpa, named upohana, was sung or played for fixing the sthāyī note, the tonic in Bharata's music, for forming a rāga (mode) (31/138; *S. R.* III, p. 131, *K.*)

Sthāyi

i. One of the anśas was made sthāyī on which to set up the rāga (*S. R.* 3/191; *S. R.* III, p. 31, *K.*)

ii. Every section of ālāpa was to end on sthāyī note. (*S. R.* 3/193 194)

Sthāna and sansthāna

i. Bharata has used word sthāna to denote the various octaves and also a mode.

ii. *Ag.* has made the idea more clear. He says that sthāna-svara is the sthāyī note i e. the tonic (*N. S.* IV p. 432)

iii. *Mataṅga* has used the term sansthāna to mean a mode and also the octaves.

iv. *Ag.* and *Ś.* have given directions for fixing graha or nyāsa note as sthāyī on veeṇā and flute for producing a mode, required for a rāga (IV, p. 142; *S. R.* III, p. 296–314; 362–386)

Method of making a sthāyī

K. says that the accessary (chanterelle) strings should be tuned to any anśa note for making it sthāyī (I, p. 203). Thus by giving the drone to a note, we can make it the tonic for producing a new mode.

But giving the drone to any of the anśas will result in chaos Therefore K.'s statement shall have to be modified and the drone shall have to be supplied to only one of the many anśas, which will bring forth the required mode.

Correcting the modal intervals

(a) Some of the intervals in a mode formed by the modal process are false, whice are not concordant to the tonic. We suppose that

the ancients were used to correct such intervals on the instruments to make them concordant to the tonic, though the ancient authors have not given directions for doing this.

(b) *Sinhabhupal* and *Somnath* tell us that the Veenā- players fix the intervals in tune with the prime by their 'attention' or 'guess'. (*S. R.* I, p. 110; *R. V.*, 23)

(c) Some modern writers accept such modal false notes as the 'śrutis' required by the rāgas to be produced out of the formed modes.

(d) Further, the medieval authors *Pundarika* and *Somanath* opine that a slight (one sruti) difference in an interval is negligible. (*S. C.* 2/27; *R. V.* 1/26, 27)

(e) The natural scale notes are used in Indian music, but not so, as a rule, in Arabian, Persian or Chinese music.

The musical compsition like khayāl and also the sophisticated and elegant musical instruments of Indian music, such as Sārangi, Sitār and Tablā are not found in the music of Arabia and Parsia.

Rāgas in Bharatās music

Bharata has mentioned the use of Grāmarāgas in various sandhis of drama :-

"मुखे तु मध्यमग्रामः, षड्जः प्रतिमुखे भवेत्" ॥ ३२ । ४२८ ॥

It seems that even Bhāśārāgas were current in Bharata's time :-

"सैन्धवीमाश्रितं भाषां ज्ञेयं सैन्धवकं बुधैः" ॥ ३१ । ३५८ ॥

सङ्केत–सूची

१ सामान्य सङ्केत

ह० लि०	हस्तलिखित (पाण्डुलिपि)
हिं०, H.	हिन्दुस्तानी (संगीत)
Pb.	पाठ–भेद
क्र०	क्रमाङ्क
क०	कण्डिका
प०, F.	पत्र, Folio
स्प०	स्पष्टीकरण

२ ग्रन्थ–नाम–सङ्केत

भ०	भरत (नाट्यशास्त्र, निर्णयसागर, १९४३)
ना० शा०, ब० प्रति	नाट्यशास्त्र (निर्णयसागर, १९४३)
N. S., ना० शा० I, II, III, IV	नाट्यशास्त्र, Vols I–IV (बरोडा)
द०	दत्तिलम् (त्रिवेन्द्रम्, १९३०)
म०	मतङ्ग
सं० र० S. R., S.	सङ्गीतरत्नाकर (अड्यार, Vols 1–4,)
ना० शि०	नारदीया शिक्षा (मैसूर, १९४९)
भ० भा०, B. B.	भरतभाष्य, खण्ड १–२ (खैरागढ़)
अभि०, Ag.	अभिनव–भारती, अभिनवगुप्त
क०, K.	कल्लिनाथ
सिं०, S.	सिंहभूपाल
सं० ना०	संगीतनारायण (ओडिशा, १९६६)
सं० रा०	संगीतराज (वाराणसी, १९६३)
बृ० दे०	बृहद्देशी (त्रिवेन्द्रम्, १९२८)

रा० वि० R. V. — रागविबोध (अड्यार संस्करण, १९४५)
स० चं० S. C. — सद्रागचन्द्रोदय (बम्बई संस्करण, १९१२)

३ कौंसों के अर्थ

(   ) पूरित शब्दों को इस प्रकार के अर्ध–गोल कौंस में डाला गया है।

[   ] असम्बन्धित तथा पुनरुक्त अंश इस प्रकार के कौंस में डाले गये हैं तथा वे मूल के अनुसार ही रखे गये हैं; संशोधित नहीं किये गये हैं।

४ स्वर–चिन्हों के अर्थ

i. ग्रन्थकारोक्त स्वर–प्रस्तार में मुख्यत: स्वराक्षर के ऊपर बिंदु तथा एक या अनेक स्वराक्षरों के नीचे रेखा अङ्कित है। शीर्षस्थ बिंदु से मन्द्र–स्थानीय स्वर अनुलक्षित होता है। निम्नस्थ रेखा का अर्थ समझ में नहीं आता।

ii. हमने दिये हुए स्वर–लेखों में प्रयुक्त चिन्ह भातखण्डे–नोटेशन के अनुसार हैं।

१ : प्रास्ताविक–विषय–सूची

२ : ग्रन्थ–विषय–सूची

नान्यभूपाल-प्रणीतम्

भरतभाष्यम्

द्वितीयः खण्डः

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीनान्यभूपाल–प्रणीतम्

भरतभाष्यम्

(द्वितीयः खण्डः)

श्रीचैतन्य – देसाई – विरचितया संजीवन्याख्य – टीकया समेतम्

षष्ठो जात्यध्यायः

१. तत्रादिमं जाति–प्रशंसाख्यं प्रकरणम्

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

प्रत्यर्थि-क्षितिपाल-कोटि-मुकुट-[1]श्रेणीभिरभ्यर्थितं[2]-
श्चन्द्रः[3] पौरुषं[4]-वारिधेः स जयति क्ष्मापाल-नारायणः ।

॥ सञ्जीवनी टीका ॥

॥ शिवौ विजयेते ॥

स्फुरन्मन्द–ध्वान–प्रतिरणित–कैलास–निलयो
विरागासक्तोऽपि प्रमथित–महाराग–जलधिः ।
अजातिर्भूत्वाऽपि प्रकटित–बृहज्जाति–निचयश्
शिवं ढक्कानादैः कलयतु च नादात्मक–शिवः ॥१॥

ह० लि० का पाठ—1 –श्रोणी 2 –तो 3 –श्चेत 4 –षः

[1]राज्ञोऽन्यानभिभूय विग्रह-विधावाधार्यं[2] संन्यासिनो
ऽपेन्यस्ता[3] इति जातिमार-पदवीमारोपिताः[4] क्षत्रियाः ॥१॥

उच्चैः संश्रय-सद्ग्रहेण सुकृतां त्राणाय नारायण–
स्यांशेनावँनि[5]-संगिना रसवताऽपन्यस्त-विद्वेषिणा ।

तेनोल्लासित-भारतेन वशिनां[6] नान्येन भूमीभुजा
जातीनां विशद-क्रमोऽयमधुनां[7]ऽध्यायः समारभ्यते ॥२॥

पूर्वं स्वर-ग्राम-तान-मूर्च्छना-श्रुति[8]-वृत्तयः ।
प्रोक्ताः प्रपञ्चतः सम्यक् कथ्यन्ते जातयोऽधुना ॥३॥

जातिमौक्तिक-मालेव स्वर-सूत्रेण गुम्फिता ।
शोभां कस्य नं[9] कण्ठस्थां[10] दधाति महतीं (खलु) ॥४॥

भरतमुनि–निरुक्तं यद्धि गान्धर्व–शास्त्रं
मनुज–दनुज–देव–स्वान्त–सम्मोद पात्रम् ।
कलित इह वितानो **नान्यदेवेन** तस्य
प्रथित–विविध–शास्त्राम्भोधि–रत्नेन नूनम् ॥२॥

खण्डितां वीक्ष्य तां 'भाष्य'–नाम्नीं कृतिं
विज्ञ–वर्गोऽभ्यगाच्चिन्तितां पद्धतिम् ।
शारदा–शारदाम्भोज–पद्मालिना
शोधिता साऽद्य **चैतन्य–देसाइना** ॥३॥

भरतेन मतङ्गेन दत्तिलाभिनवादिकैः ।
दीपिता दीपयेत् सैषा टीका 'सञ्जीवनी' बुधान् ॥४॥

टी०—श्लोक (२) 'भूमिः' तथा 'भूमी' (स्त्री०) दोनों ठीक हैं, जैसे 'नन्दी' (नन्दिन्) एवं 'नन्दिः' (पु०)। 'भुज्' लगने पर 'भूमी-भुज्' ही रूप होता है। संस्कृत में ऐसे उदाहरण बहुत हैं।

---

1 ये राज्ञानभिभूय　2 नाधाय　3 पेन्यस्ता　4 स्तारोपिताः
5 वति संगितेन सवता　6 गीतवशमा　7 नधुना　8 त　9 नि　10 नानाति

वर्णालङ्कार-धारिण्यस्तरुण्य इव जातयः ।
न हरन्ति परस्यार्तिं कस्यैताः कण्ठगोचराः ? ॥५॥

अन्यूना लक्षणगुणैः कलावत्यः कलैः स्वरैः ।
श्रुतीः[3] सप्तार्थचर्या हि[4] केषां न लङ्घयन्ति ताः ॥६॥

गुणमारोप्य काष्ठेऽपि कला-प्राकार-कौशलम्[6] ।
स्वरसौष्ठव-शालिन्यो रागमुत्पादयन्त्यपि ॥७॥

प्रतिपदन्यासं-ग्रहवत्यः स्फुरितानेकाङ्ग-दर्शिन्यः ।
वारस्त्रिय इव क-(ण्ठे) लग्नाः[8] सुखयन्ति जातयः (पुरुषम्) ॥८॥

(१–११) जात्यध्याय के प्रारम्भ के इन श्लोकों का पाठ (**ह० लि०** पत्र १७) बहुत ही भ्रष्ट है। पाठकों के अवलोकनार्थ **ह० लि०** का पाठ यहाँपर दे रहे हैं—

प्रत्यर्थक्षितिपालकोटिमुकुट श्रोणीभिरभ्यर्थितो ।
चेतऽपौरुषः । वारिधेः स जयति क्ष्मापालनारायणः ।
ये राज्ञानभिभूय विग्रहविधानाधाय संन्यासिनो ।
पेन्यस्ता इति जातिमार पदवीस्तारोपिताः क्षत्रियाः ॥१॥

उच्चैः संश्रयसद्ग्रहेण सुकृता त्राणायनारायण–
स्यांशेनावतिसंगितेन सवतापन्यस्तविद्वेषिणा ।
तेनोल्लासितभारगीतवशमा नान्येन भूमीभुज्जाः
जातीनां विशदक्रमोयनधुनाध्यायः समारभ्यते ॥२॥

जातिमौक्तिकमालेव स्वरसूत्रेण गुफिता ।
शोभां कस्य निकंठस्था नानाति महती....॥४॥

....पंच....र्णालंकारधारिण्यस्तरुण्य इव जातयः ।
न हरंति परस्यार्तिः कस्यैताः कंठगोचराः ॥५॥

---

1 पञ्च–र्णा   2 न्य   3 ती   4 णि   5 न्त्यस्तः   6 लान्
7 न्यासा   8 ग्ना

कम्रचरं [यया] प्रगीतया हरिः[1] साक्षादि[2] वार्णवात् ।
हंत इत्येव कृतिनः स्तुमः किं तद् गुणोच्चयम् ॥९॥

स्वरगुणोऽपि[5] स्वरचतुरो वर्णालङ्कार-निपुण-धीः सततम् ।
त्रिस्थान-गमक[6]-शोभं जातीर्गायंस्तु[7] गायनो ज्ञेयः ॥१०॥

॥ इति प्रथमं जाति-प्रशंसाख्यं प्रकरणम् समाप्तम् ॥

२. अथ द्वितीयं जाति-लक्षण-वर्णनाख्यं प्रकरणम्

श्रुत्युद्भवाः[8] स्वरास्तेभ्यो ग्रामास्तेभ्यश्च[9] जातयः ।
ताश्चैवाष्टादशविधाः[10] सन्ति[11] ता राग-हेतवः ॥११॥

तासां स्वराख्यया सप्त शुद्धा, एकादशापराः ।
भिद्यन्ते द्वि-त्रि-योगाच्च[12] जातयो विकृताभिधाः[13] ॥१२॥

षाड्[14]ज्यार्षभी च गान्धारी मध्यमा पञ्चमी तथा ।
धैवती च निषादी च सप्त शुद्धाः प्रकीर्तिताः ॥१३॥

अन्यूना लक्षणगुणैः कलावन्यकलैः स्वरैः ।
श्रुती सप्तार्थचर्याणि केषां न लघयंत्यस्तः ॥६॥

प्रतिपद....न्यासाग्रहवत्यः स्फुरितानेकांगदर्शिन्यः ।
वारस्त्रिय इव कं....लग्ना सुखयंति जातयः ॥८॥

कम्रचरं यया प्रगीतया दोवाहर साक्षाद्ववार्णवात् ।
ईर इत्येव कृतिनः स्तुमः किं तद्गुणात्वयं ॥९॥

च्युत्युद्भवाः स्वरास्तेभ्यो ग्रामास्तेन्यस्तुतयः ।
ताश्चैवष्टादशविधाः स्वस्तिधा रागहेतवः ॥११॥

---

(१३) भ. २८।४६

---

1 दोवाहर 2 द्व 3 ईर 4 गुणात्वयम् 5 णेति 6 द्यमक 7 यस्तु
8 च्युत्यु 9 स्तेन्यस्तुतयः 10 वष्टा 11 स्वस्तिधा 12 गाः ज्ञातयो 13 धा 14 ष

विकृता युग्मजाः पञ्च तिस्र(स्त्रि-)तय–सम्भवाः ।
चतुर्जातास्तथा तिस्र एवमेकादश स्मृताः ॥१४॥

षाड्जी-मध्यमयोर्योगाज्जायते षड्जमध्यमा ।
षाड्जी-गान्धारिका-युग्मोद्भवेयं[1] षड्जकैशिकी[2] ॥१५॥

गान्धार्यार्षभिकाभ्यां[3] तु जातिरान्ध्री[4] प्रजायते ।
गान्धारी-पञ्चमीभ्यां च भवेद्गान्धारपञ्चमी ॥१६॥

योगाद्धैवत्यार्षभीभ्यां च जायते कैशिकी तथा ।
एवं युग्मोद्भवाः पञ्च, तिस्रोऽन्यास्त्रितयोद्भवाः[5] ॥१७॥

गान्धारी धैवती षाड्जी एताभ्यो जायते[6] तु ताम् ।
षड्जोदीच्यवतीमाहुर्जातीं तत्त्वविशारदाः ॥१८॥

पञ्चम्यार्षभिका[7]-गान्धारिकाभ्यो नन्दयन्तिका[8] ।
नैषाद्यार्षभिका[9]-पञ्चमीभ्यः कार्मारवीत्यमूः[10] ॥१९॥

तिस्रस्त्रितय-सम्भूताः, कथयामि चतुर्भवाः[11] ।
गान्धारी-मध्यमा-षाड्जी-धैवतीभ्यश्च जायते ॥२०॥

गान्धारोदीच्यवा-जातिर्मध्यमोदीच्यवा पुनः ।
गान्धारी-धैवती-पञ्चमी-मध्यमा-[योग-] समुद्भवा ॥२१॥

निषादिका पञ्चमिका गान्धारी चाथ मध्यमा ।
भवन्ति[12] रक्तगान्धार्याः कारणं जातयस्त्विमाः ॥
(आर्षभीं धैवतीं त्यक्त्वा पञ्चभ्यः कैशिकी भवेत् ॥२२॥)

(१५–२२) भ. २८।४८–५४

---

1 वैनं 2 कौशिकी 3 गान्धारी चार्षभी चातिस्यां 4 प्री
5 स्त्रियायथा 6 जातिमद्रता 7 श्यतिकां 8 न द्वयन्ति
9 निषादर्ष 10 कार्मारिची 11 भंजाः 12 पञ्चमो

षड्जग्रामोद्भवा[1]ः सप्त षाड्जी चार्षभिका तथा ।
नैषादी धैवती षड्जोदीच्यवा षड्जकैशिकी ॥२३॥

षड्जमध्येति विज्ञेया, मध्यमग्रामजाः पुनः ।
एकादशापि वक्ष्यामो गान्धारी मध्यमा तथा ॥२४॥

गान्धारोदीच्यवा रक्तगान्धारी पञ्चमी परा ।
मध्यमोदीच्यवा[2] नन्दयन्ती गान्धारपञ्चमी ॥२५॥

[3]कार्मारवी तथा [4]चान्ध्री [5]कैशिकी चेति ताः स्मृताः ।
सम्पूर्णाः काश्चिदेताः स्युः [6]काश्चिदौडुविताऩ्विताः ॥२६॥

काश्चित्षाडव-संप्रोक्ता लक्षणैर्दशभिर्युताः ।
[7]ग्रहांशौ तार-मन्द्रौ च न्यासोऽपन्यास एव च ॥२७॥

अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडुविते तथा ।
एवमेता बुधैर्ज्ञेया जातयो दशलक्षणाः ॥२८॥

इति जाति-लक्षण-वर्णनाख्यं प्रकरणं समाप्तम् ॥

३. अथ तृतीयं ग्रहांशादि-लक्षणाख्यं प्रकरणम्

तत्र गृ(ह्य)ते प्रयोगोऽनेनेति[8] ग्रहः । यथा ऽऽह **दत्तिलः** ' ग्रहस्तु गीतादि-स्वर[9]ः ' इति ॥२९॥

(२३–२६) भ. २८।४२–४५; (२७–२८) भ. २८।७४ (२९) द. ५७.

1 ता 2 ग्यमा 3 कम्मो 4 चान्द्री 5 कौ 6 क
7 अहंसौ 8 आननति 9 प्रथमोलाप

अंशोऽपि[1] दशलक्षणो यथा (ऽऽह **भरतः**)
" यस्मिन्भवति रागश्च[2] यस्माच्चैव प्रवर्तते ।
नेता[3] च तार मन्द्राणां[4] योऽत्यर्थं[5] चोपलभ्यते ॥३०॥
ग्रहापन्यास-विन्यास-संन्यास-(न्यास-) गोचरः ।
अनुवृत्तश्च यश्चेह[6] सोंऽशः[7] स्याद् दशलक्षणः ॥३१॥

अयं च त्रिषष्टिसंख्य इति । अत्र (उक्तम्)—
" ग्रहस्तु सर्वजातीनामंशो हि[8] परिकीर्तितः " ॥३२॥
ग्रहादि-पञ्चकोपेतः सोंऽशः प्राधान्यरूपत्वादिति ।
जाति-गोचर-ग्रहस्यांश-व्यतिरेकेऽपि ग्रामरागादिषुं
व्यतिरिक्तस्यापि ग्रहस्याभिज्ञानात्पृथग्ग्रह-लक्षणम् ॥३३॥

अथ तारः,
" पञ्चस्वरपरस्तार उच्चैरंशादिहेष्यते[10] " इति ।
" मृदुरंशपरो मन्द्रो न्यासान्तस्तत्परोऽपि[11] वा " ॥३४॥

तथा—" अंशात्तार-गतिं विद्यादाचतुर्थ-स्वरादिह ।
आपञ्चमात्सप्तमाद्वा[12] नातः परमिहेष्यते " ॥३५॥

एतेन चतुःस्वरादूर्ध्वं पञ्चममाभिधास्य ता....
रतो (?) वा तारगतिरिति । द्विधा मन्द्रः, अंशपरो
न्यासपरश्च ॥३६॥ यदाह (**भरतः**)—
" मन्द्रस्त्वंशात्परो नास्ति न्यासे[13] तु द्वौ व्यवस्थितौ " इति ॥३७॥

(३०–३१) भ. २८।७६–७८. (३२) भ. २८।७५
(३४) द. ५७, ५८ p b.— 'अंशपरो' (३५, ३७) भ. २८।७९, ८०

---

1 असो 2 रागेषु 3 मश्च 4 मन्द्रश्च 5 र्था 6 स्येह 7 सोमः
8 य 9 दच 10 मंन्द्रा 11 न्यासानुसृत्यरोपि 12 पञ्चमाद्वा 13 ना

दत्तिलाचार्येण तु (ध्वनि–) त्रितयम [द्य–] भि–हितम्, यथा––

" नृणामुरसि मन्द्रस्तु द्वाविंशति-विधो ध्वनिः ।
स ऐव[2] कण्ठे मध्यः स्यात्, तारः शिरसि गीयते " ॥३८॥

अथ न्यासः । न्यस्यते[3] प्रयोगोऽनेनेति न्यासः । स तु पादावसानिकः, एकविंशति-संख्यः, यथाऽऽह[4] (**दत्तिलः**)–

" गीतकान्त्यस्वरो[5] न्यासो[6], विदारी-मध्यगस्तथा ।
(न्यासवत् स्यादपन्यासो, यथाजाति ब्रवीम्यहम् ॥३९॥
यं विना हीनता यस्याः स्याच्चेत् तस्यां तु सोऽल्पकः ।)
अंशश्च मन्द्रन्यासश्च स्वरजातिषु नामकृत् " ॥४०॥

एतेनाङ्गस्य[7] जातिशरीरस्य समाप्तौ यः स्वरः स न्यासो वेदितव्यः । अथापन्यासः, जातिशरीरस्या––वान्तर-समाप्तौ कार्यः । यदाह–' अङ्गमध्ये[8] त्वपन्यासः ' इति । स च षट्पञ्चाशत्संख्य[9] इति ॥४१॥

अथांश-लक्षण-प्रसङ्गात्संन्यास-विन्यासयोरपि लक्षणं कथ्यते । तत्र योंऽशस्य विवादी न भवति स चेत्प्रथम–विदार्यन्ते[10] प्रयुक्तः स्वरो न्यास-समीपवर्ती तदा स संन्यास[11] इति ॥४२॥

विन्यासो[12]ऽपि पादावसानेंऽशस्य संवादी ह्यनुवादी वा सो[13]ऽपि विदारी-भागशः[14] प(द)स्यान्ते विन्यस्यत[15] इति विन्यासः । अपन्यासस्यैव रूपान्तरभूतावेताविति ॥४३॥

---

(३८) द. ८ (३९, ४०) द. ६०, ६१ ' अंशाढ्यमन्य–' pb
(४१) भ. २८।८१ (४२, ४३) म. ५७, ५८

---

1 पच 2 वै 3 न 4 दा 5 न्तस्थितो 6 से 7 नांशस्य 8 अंश
9 श्यं 10 त्वे 11 श्या 12 से 13 क्षो 14 रः 15 विद्यस्य

अथ द्विविधमल्पत्वम् । लङ्घनकृतमनभ्यासकृतं च । तत्र लङ्घनमीषत्स्पृष्ट्वैव स्वरं स्वरान्तरं[1]-गमनम् । अनावृत्त-स्पर्शोऽनभ्यासः ॥४४॥

अथ बहुत्वम् । एतच्चाबल-बलवत्त्वे (स-) बलस्य स्वरस्य [2]जाति-शरीरस्य चाभ्यासवशाद् बलवत्त्वं बहुत्वमिति ॥४५॥

....क्वचिच्चा[3]वकृष्टासु ध्रुवासु (चतुःस्वरस्य) प्रयोगो विहितः[4] ।

यदाह—" षट्स्वरस्य प्रयोगोऽस्ति तथा पञ्चस्वरस्य च ।
चतुःस्वर[5]—प्रयोगः स्यादवकृष्टध्रुवास्विह[6] " इति ।

एतच्च जाति-स्वर-विहितत्वादे....नो[7]क्तमिति ॥४६॥

अथ षड्ज—मध्यम—ग्रामयोः सप्त-स्वराणां [स्वर—] चातुर्विध्यं विधीयते । तच्च वादि—संवादि—विवाद्यनुवादि—रूपम् ॥४७॥ यथाऽऽह (**भरतः**)—

" चतुर्विधत्वमेतेषां विज्ञेयं गा[8]नयोक्तृभिः ।
(स्युः) प्रकारा वादिसंवादि-विवाद्यनुवादिनः " इति ॥४८॥

....स तत्र वादी स्वरो, यो बहलः सन् सकल-गीत—शरीराभोग-पूरकः ॥४९॥

ययोश्च नव-त्रयोदशकमन्तरं तावन्योन्य-संवादात् संवादिनाविति । यथा—स-मौ, स-पौ, रि-धौ, ग-नी षड्जग्रामे ।

(४४, ४५) भ. २८।८२, ८३; म. ५९, ६०; द. ५९;
(४६) भ. २८।८५; म. ५९; (४८) भ. २८।२३ pb.

---

[1] नुर [2] जगति [3] च्च चेष्टा [4] तो [5] रः
[6] स्त्विह [7] ना [8] ज्ञा

मध्यग्रामेऽप्येवं षड्ज-पञ्चम-वर्ज्यम् । पञ्चमर्षभयोश्चात्र संवादः ॥५०॥

यदाह (भरतः)–

"संवादो मध्यमग्रामे पञ्चमस्यर्षभस्य च ।
षड्जग्रामे तु षड्जस्य संवादः पञ्चमस्य च ॥५१॥

विवादिनस्तु (ते) येषां (स्याद्) द्विश्रुतिकमन्तरम्" ।
यथा रिगौ, धनी इति, शेषाः सन्त्यनुवादिनः ॥५२॥

तत्र गीतादौ समाप्तौ (च) वादी स्वरः, तदनुचराश्चान्ये स्वराः । एवंविधाः स्वरा जाति-गीतक-शरीरस्य निष्पत्ति-हेतवः ॥५३॥

इति ग्रहांशादि–लक्षणाख्यं प्रकरणं समाप्तम् ॥

४. अथ चतुर्थं षाडवौडुवादि–भेदाख्यं प्रकरणम्

अथ पूर्ण-षाडवौडुवित-निमित्तं पुनर्जातयः कथ्यन्ते–

चतस्रो मध्यमोदीच्यवा तथा षड्जकैशिकी ।
गान्धारपञ्चमी कार्मारवी सप्त-स्वरा इमाः ॥५४॥

षाड्ज्यान्ध्री नन्दयन्ती च गान्धारोदीच्यवेति च ।
चतस्रः षट्-स्वरास्त्वेता जातयः शुद्ध-वैकृताः ॥५५॥

गान्धार्यार्षभिका चैव मध्यमा पञ्चमी तथा ।
धैवती च निषादी च षड्जमध्या तथैव च ॥५६॥

(५०–५२) भ. २८।२४, २५; द. १८, १९; म. १३–१६.

---

1 शेषास्त्वनु 2 सामीप्य

षड्जोदीच्यवती रक्तगान्धारी कैशिकी तथा ।
दश पञ्चस्वरैरेता गेया गान्धर्व-वेदिभिः ॥५७॥

इति षाडवौडुवादि–भेदाख्यं प्रकरणं समाप्तम् ॥

५. अथ पञ्चमं जात्यंश–कल्पनाख्यं प्रकरणम्

अथांश-कल्पनम्——

तत्रैकोंऽशः स्यात्तिसृणां[1] जातीनां मुनिसम्मतः ।
द्वौ द्वौ भवेतां तिसृणां, तिसृणां च त्रयस्त्रयः ॥५८॥

तिसृणामपि चत्वारः, पञ्च पञ्च चतसृणाम् ।
एकस्याश्च षट्, चैकस्याः सप्तेत्यंश-विकल्पनम् ॥५९॥

पञ्च-त्रि-षष्टिरंशाः स्युरेतावन्तो ग्रहा अपि ॥६०॥

अथ **मध्यमोदीच्यवायाः** पञ्चम इत्येकोंऽशः । षड्ज–धैवतावपन्यासौ, मध्यम इति न्यासः, मन्द्र-गान्धार-बाहुल्यं, नित्यपूर्णा ॥६१॥

अथ **गान्धारपञ्चम्याः** पञ्चम इत्येकोंऽशः, ऋषभ-पञ्चमावपन्यासौ, गान्धार इति न्यासः । गान्धार-पञ्चमाभ्यां च सञ्चारोऽत्राभिधीयते; नित्यपूर्णा ॥६२॥

अथ **नन्दयन्त्याः** पञ्चम इत्येकोंऽशः, मध्यमोऽपन्यासः, गान्धारो न्यासः ।
षड्जेन षाडवं, (षड्जस्य) लोप्यत्वाच्चाल्पत्वं सिद्धम्, अलोपे चै(-तस्य) स्पर्शादल्पत्वं च[2] । नित्यपूर्णा । एवमेकांशास्तिस्रः ॥६३॥

---

[1] चतुसृणामिह [2] दल्पोच

धैवत्यास्तु ऋषभ-धैवतावंशौ। ऋषभ-धैवत-मध्यमा अपन्यासाः। (षड्ज-)लोपे षाडवं, षड्ज-पञ्चम-हीन-मौडुवितम्।
पूर्णदशायां च षड्ज-पञ्चमावारोहि-वर्णगतौ कार्यौ।
लोप्यत्वाल्लाघवं सिद्धमपि पुनः प्रकर्षलाभार्थमुक्तम् ॥६४॥

गान्धारोदीच्यवायाः षड्ज-मध्यमावंशौ[1], षड्ज[2]–धैवतावपन्यासौ, मध्यमो न्यासः। ऋषभ-लोपे षाडव–मौडुवितं नास्ति पूर्णावस्थायां चर्षभोऽल्पः। मन्द्र-स्थाने गान्धारस्य भूयस्त्वमिति ॥६५॥

अथ **पञ्चम्याः** पञ्चमर्षभावंशौ, एतावपन्यासौ, पञ्चमो न्यासः। गान्धार-लोपे षाडवं, गान्धार-निषादलोपे त्वन्यत्। षड्ज-गान्धार–मध्यमानामल्पत्वं, पञ्चमर्षभयोः सञ्चारः। एवं द्व्यंशास्तिस्रः ॥६६॥

आर्षभ्या ऋषभ-निषाद-धैवता अंशाः, एत एवापन्यासाः। ऋषभो न्यासः। षड्ज-लोपे षाडवम्। षड्ज-पञ्चम-लोपे त्वन्यत्। गान्धार-निषादिनोः स्वरान्तरैः सह सञ्चारः। पञ्चमस्य लङ्घनं, मनाक् स्पर्शः ॥६७॥

अथ **निषादाया** निषादर्षभ-गान्धारास्त्रयोंऽशाः, एत एवापन्यासाः। निषादो न्यासः। पञ्चम-लोपे षाडवं, षड्ज--पञ्चम-हीनमितरत्। तौ[4] लङ्घनीयौ ॥६८॥

अथ **(षड्ज-)कैशिक्याः** षड्ज[5]-गान्धार-पञ्चमास्त्रयोंऽशाः। षड्ज-पञ्चम-निषादा अपन्यासाः। गान्धारो न्यासः।

---

1 मवेशौ 2 ऋषभ 3 ऊड 4 ताव 5 गान्धार्यद्य

नित्यपूर्णा । "दौर्बल्यमत्र कर्तव्यं धैवतस्यर्षभस्य च ।" एवं त्र्यंशास्तिस्रः ॥६९॥

षड्जोदीच्यवायाः षड्ज-मध्यम-निषाद-धैवताश्चत्वारोंऽशाः । धैवत-षड्जावपन्यासौ, मध्यमो न्यासः । ऋषभलोपे षाडवम्, ऋषभ-पञ्चम-लोपे चान्यत् ॥७०॥

आ(न्ध्र्या-)[1]श्चर्षभ[2]-गान्धार-निषादाश्चत्वारोंऽशाः । एत एवापन्यासाः । गान्धारो न्यासः । षड्ज-लोपे षाडवमौडुवितं नास्ति । गान्धारर्षभयोः संगतिः । निषाद-धैवतयोश्चांशानुपूर्व्या गमनम् ॥७१॥

[3]कार्मारव्याः पञ्चमर्षभ-निषाद-धैवता[4] अंशाः । एत एवापन्यासाः । पञ्चमो न्यासः । नित्यपूर्णा । गान्धारस्य तु सर्वतो गमनमिति । एवं चतुरंशास्तिस्रः ॥७२॥

अथ **षाड्ज्याः** षड्ज-मध्यम-गान्धार-पञ्चम-धैवता[5]ः पञ्चांशाः । गान्धार-पञ्चमावपन्यासौ, षड्जो न्यासः । षड्ज-धैवतयोः षड्ज-गान्धारयोश्चात्र सञ्चार[6]ः । गान्धारोऽतिबहलः । षाडवं निषाद-लोपेन, सपञ्चमेनौडुवितमिति ॥७३॥

गान्धार्याः षड्ज-गान्धार-मध्यम-पञ्चम-निषादाः पञ्चांशाः । षड्ज-पञ्चमावपन्यासौ । गान्धारो न्यासः । ऋषभं विना षाडवं, धैवतर्षभ-ही(-न-)मन्यत् "लङ्घनीयौ च तौ नित्यं, ऋषभाद्[7] धैवतं व्रजेदिति" ॥७४॥

---

(६९) भ. २८।१२४ (७४) भ. २८।१३३

---

1 अ 2 मर्षभ 3 रकमरिन्याः 4 तांशाः 5 तांशा
6 त्राद्योत्यं पञ्चाशः 7 भौद्

मध्यमायाः षड्जर्षभ-मध्यम-पञ्चम-धैवताः पञ्चांशाः। एत एवापन्यासाः। मध्यमो न्यासः। गान्धार-लोपे षाडवं, गान्धार-निषादं विनेतरत् ॥७५॥

रक्तगान्धार्याः षड्जे-पञ्चम-गान्धार-मध्यम-निषादाः पञ्चांशाः। षड्ज-पञ्चमावपन्यासौ। कदाचिन्मध्यमोऽपि। गान्धारो न्यासः। ऋषभ-लोपे षाडवं, ऋषभ-धैवत-लोपे त्वन्यत् ॥७६॥

(कैशिक्याः)....। धैवत-निषादौ यदांशौ तदा पञ्चम एव न्यासः। कदाचिदृषभोऽपीति ॥७७॥

अथ **षड्जमध्यमायाः** स-रि-ग-म-प-ध-नीति सप्तांशाः। एत एवापन्यासाः। षड्ज-मध्यमौ न्यासौ। नि-लोपे षाडवं, (ग-) नि-लोपे त्वन्यत्। निरल्पतर इति अंश-विकल्पः ॥७८॥

अथ जाति-विकल्पे स्वर-संनिवेशो यथा– **षड्जग्रामे** सरिगमपधनीति। **मध्यमग्रामे** मपधनिसरिगेति ॥७९॥ तेषां च स्वराणां चतुर्विधत्वमुक्तमेव। यथा– वादि-संवादि-विवाद्य-नुवादिन इति। तत्प्रतिबद्धाश्च वर्णा अपि चत्वारो भवन्ति। यदाह–"आरोही चावरोही च स्थायि-संचारिणौ तथा।
वर्णाश्चत्वार एवैते ह्यलङ्कारास्तदाश्रयाः" ॥८०॥

तत्र यो यत्र बहुलः सकल-गीत-शरीर-गोचरः स वादी

स्प.:–(६१–७८) ग्रंथकारने जातियों का यह संक्षिप्त वर्णन प्रास्ताविक रूपसे किया हुआ प्रतीत होता है। विस्तृत वर्णन आगे आवेगा।

(८०) भ. २९।१७.

---

1 र्षभ

स्थायी चाभिधीयते । तदनुचरा अन्ये संवादिनः सञ्चारिणश्च । आरोहावरोहौ नियामविवादिन एव (?) ॥८१॥

इति जात्यंश-कल्पनाख्यं प्रकरणं समाप्तम् ॥

६. अथ षष्ठं षाड्जीजाति-वर्णनाख्यं प्रकरणम्

(अथ षाड्ज्या भेदाः ।) ग्रहांशयोरथैतस्या [1]अपन्यासस्यं[2] [3]तथा षाडवस्यौडुवस्य[4] च भेदेन स्युः पञ्चनवतिर्भेदाः ॥८२॥

तत्र प्रथमतः **शुद्धषाड्जी** षड्जग्रहांशका षड्जग्रामोद्भवा जातिर्लिख्यते, अक्षर-ताडिता । शुद्ध[5]त्वे-ग्रहांशापन्यासानां समान-स्वरतया पूर्णतया च ॥८३॥ यदाह **दत्तिलाचार्यः**,

"तद्ग्रहा तदपन्यासा तदंशा च यदा भवेत् ।
मन्द्रन्यासा च पूर्णा च शुद्धा जातिस्तदोच्यते" ।

पूर्णत्वमत्र वैकल्पिकम्[6] । सं[7]ङ्करोद्भूतानामपि तथाभावात् । [अप-]न्यासस्तु मन्द्र एव । ते च[8] जाति-शरीरांशाः[9] ॥८४॥

इत्यस्याश्च षाड्ज्याः षड्ज एव स्वरो ग्रहः । [षड्ज एव स्वरो ग्रहः ।] स एव वादी चांशः । [10]अंशात्तार-गतिरित्यादि-[11] वचनात् । चतुर्थ-स्वरं यावन्मन्द्रो न्यासः । षड्जग्रामे च

---

(८३) द. ६२

(८४) इसके आगे षाड्जी के स्वरलेख का अन्तिम अंश 'गा गा गा गा०' इत्यादि ह० लि० में उपलब्ध है, जिसको हमने क्र० ८७ में षाड्जी के स्वरलेख के साथ यथास्थान जोड दिया है और इस अंश के प्रारंभ में × इस प्रकार तारक चिन्ह किया है ।

---

1 पप 2 यो 3 स्त 4 षाडवास्य 5 त्व 6 तम्
7 शं 8 त्र 9 भः 10 आंशा 11 मित्यादि

षड्जस्य संवादः पञ्चमेनैव। अपन्यास-परतापि तेनैव, न तु मध्यमेन। वादिनः संवादी मन्द्रकल्पः। अनयोः सदृशयो-र्मध्येऽननुं रागत्वान्न विवादिनो निवेशः ॥८५॥ तेन स्थान-चतुष्टये मन्द्र-षड्जो ब्रह्मणाँ प्रयुक्तो, यथा—'सा सा सा सा' इति। अतः परमाच्चतुर्थ-स्वरान्मन्द्रो निवर्तत इति वचनात्। संवादिनोऽपन्यासस्य पञ्चम-स्वरस्य मन्द्रत्वं नास्त्येव। नाप्यस्य तारत्वम् ॥८६॥

(अस्याः) स्वर-संनिवेशो यथा—

सां सां सां सां पा ध नि पा ध नि। री ग मा गा सा रि ग ध स धा। रि ग सा री मां सां सां सां सां। धा म ध नि नि स नि ध पा सा सा। री धा पा ध नि री सा सा मा। धा धा ध नि पां सां सां सां सां। सां सा गा सा मा सा सा सा प म म। गा ध नि नि ध पा म प री गा। *गा गा गा गा सा सा सा सा। धा सा रि ग री सा मा सा सा मा मा। धा नी पा ध नि री गा री सा। री सा सा सा सा सा सा [:] ॥८७॥

....पञ्चम-स्वर इति वचनात्। तेनोभयानुबन्धं-स्पर्शित्वेन पा इति स्वरूपेणैवावस्थानम्। सर्वस्या....विलम्बितकारस्तु पादानुंगते ह्यग्रस्थितयोर्धैवत-निषादयोः स्वरे त्वपकर्षार्थे तौ च

(८७) १ : तारकाङ्कित *'गा गा गा गा' इत्यादि स्वरपंक्तियाँ षाड्जी के स्वरलेख का उत्तरार्ध है, जो **ह० लि०** में कं० ८४ के आगे उपलब्ध है। अर्थात् स्थानभ्रष्ट था, जिसको हमने यहां जोड दिया है।

२ : यह शुद्धषाडजी का स्वरलेख है। यही स्वरलेख आगे की कंडिका ११२ में, तथा आक्षिप्तिका के रूप में कं० ११५ में पुनरावृत्त है। इन तीनों के स्वराक्षरों में कहीं कहीं थोड़ी भिन्नता है।

1 सा 2 ऽनु 3 ण 4 त 5 न्धा 6 नमुते 7 द

विवादि-स्वरौ । पूर्वावस्थित-पञ्चम-परित्यागेन वै....। सां सा सां (सा पा) नि ध पा ध नि ॥८८॥

ब्रह्म[1]-प्रोक्त-पदानि यथा—'लाटाभ्यां[2]' द्विधा प्रयुक्तौ, यथा—पां[3] नि ध पाध नि । अधःस्थित....विवाद इत्युच्चमधः प्रयुज्यते[4], तदेतत् किं क्षितावि(?)तारो निषादः प्रयुक्तः ॥८९॥ [से] तावेतौ गुडितौ, उच्चारेण च निपीडितौ कार्यौ । कलाति[5]-प्रसङ्गान्न पृथगुपात्तौ । ततः पुनः पञ्चमादूनतारं धैवतं प्रयुज्य[6] उच्चतारो निषादः प्रयुक्तः । एतावपि गुडितौ ॥९०॥

[एवं स्वरसंनिवेशो यथा । पूर्वं कालावसानस्थित-पाधनीति विवादिष्वेवं संनिकर्षास्वरसप्तके दिवादिव....विनष्टेतस्य ग्रहणं श्री इति ।]*

यथा—'तं० भं[7]वलला०० ट०' इत्यष्टमानैका कला ॥९१॥ अथ द्वितीय-कलायाः स्वर-सन्निवेशो यथा—पूर्व-कै[8]लावसान-स्थितेषु 'पाधनि' इति विवादिष्वेवं सन्निकर्षां[9]स्वर-सप्तके विवां[10]दिनौ, एवं तस्येमं विनष्टे (?) तस्य ग्रहणं 'री[11]' इति ॥९२॥ तदुत्तरौ पुनर्विवादि-संवादिनौ, यथा 'गंम[12]' इति । अस्योत्तरतोऽ[13]धःस्थितस्य गान्धारस्य मन्द्रो[14] 'म' इति। सामे....न् स्वरसप्तके....स्वग-(?)धं[15]ःस्थितस्य सा....स्वर—सन्निवेशः कार्यस्ततश्चैतेषां कार्याणां सम्मतः ॥९३॥

---

* उपरोक्त अंश कं० ९० पश्चात् हं० लि० में आये हैं, जो आगे कं० ९२ में पुनरुक्त हैं ।

---

1 ष 2 लोमा 3 धनि 4 त 5 धि 6 य 7 चत 8 का 9 स्व 10 दिवादिव 11 श्री 12 सप्त 13 मान 14 ससमो 15 धिः

तत्राप्येष विशेषः ।....गान्धारोऽपन्यासात् । तथा च सूत्रम्—
'अपन्यासो[1] भवत्यत्र गान्धारः पञ्चमस्तथा[2]' । इह द्वि-स्वरत्वा[3]-दितीह लक्षणार्थमुक्तम् ॥९४॥

गान्धारस्य तु द्वित्व[4]मत्र कार्यं प्रयोक्तृभिरिति । गान-प्रयुक्तौ 'गा गा' इति । अथाधःस्थितस्य मन्द्र-षड्जस्यायतस्य ग्रहणं यथा—('सा') इति । पुनराभ्यन्तरस्थित[5]-विवादि[6]नो ऋषभ-गान्धारयोः सम्पृक्त[7]योः प्रयोगो यथा—'रि[8] ग' इति ॥९५॥ पु[9]नरनयोरधःस्थितयोः (षड्ज-) धैवतयोर्योगः । तथा चोक्तम्....'सङ्[10](ग-)तिः । षड्ज-गान्धारयोस्तु स्यात्, षड्ज-धैवतयोस्तथा' इति । तेन प्रयुक्तो 'ध' इति । पु[11]नर्द्विल-घ्वोरधःस्थितयोः क[12]लावसान-निवृत्तौ धैवतौ मनाग्लम्बिनौ यथा....॥९६॥

ए[13]वं स्वर-संनिवेशे कृते सति 'री ग[14]म गा गा सा रिग धस धा' इति । तत्र ब्र[15]ह्मोक्त-पदं, यथा—'नयना॰ म्बु-जा॰ धि[16]' इत्यष्टपरिमाणा क[17]ला-सङ्ख्या ॥९७॥ अथ तृतीया कला-तत्र पूर्वोक्त-कलाव-[व-]सान-स्थिते 'स धा' इत्यत्रा-रोहि-स्वर-विश्राम-कारिणावुत्तर-विवादिनावृषभ-गान्धारौ, यथा—'[18]रि ग' इति । पुनरस्याधःस्थितो मन्द्र-षड्जो यथा—'सा' इति । पुनरारोहिणावृषभ-गान्धारावुत्तरौ यथा—'[19]री गा' इति ॥९८॥ अतस्तृतीयावसानिको मन्द्र-षड्जस्तथा "न्या[20]सश्चात्र

(९४) भ. २८।११२ (९६) भ. २८।११४ pb.

1 भगवनक्षरविशेषस्तु 2 समुपि 3 स्त्वा 4 काकल्यमत्र 5 र 6 नौ
7 या 8 स स 9 पुनरयो 10 सह 11 पुनर्द्वलयोर 12 र्बा– 13 पञ्च
14 री 15 प्रश्नो 16 म 17 अति 18 ऋषभ 19 ऋगा 20 नासिस्त्वत्र

भवेत् षड्जः" इति सूत्रम् । अंशस्यैव न्यासापन्यास-विन्यासा इति पर्यायाः । अंश-वि[1]न्यासो यथा—'सा सा सा सा' इति । एवं कृते स्वर-सं[2]न्निवेशे 'रिग सा री गा सा सा सा (सा)' इति । [3]अस्याधो ब्रह्मोक्त-पदं— [4]कं००००००० इत्यष्ट-परिमाणा तृतीया कला । एवं प्रथमो न्यास-खण्डस्तिस्र[5]श्च कलाः ॥९९॥

अथ द्वितीयोऽपन्यास-खण्डोऽभिधीयते । अतीत-न्यासखण्डे मन्द्र-षड्जः प्रयुक्तः, अतस्तदूर्ध्व-स्थि[6]तस्तारो धैवतः प्रयोक्तव्यः । षड्ज-धैवतयोः स्वर-सङ्गतिवशात् स तु द्विरभ्यस्तो भवति, 'धा धा' इति ॥१००॥ पुनर्निषाद-धैवतयोः सञ्चारः यथा 'नि ध' इति । पुनर्निषादेन षड्जस्य[7] योगो, यथा-'निस' इति । पुनर्निषाद-धैवतयोर्योगो, यथा— 'नि ध' इति । अतः परमधःस्थितः पञ्चमो मनाग् लक्षितः कार्यो, यथा— 'पा' इति । तदूर्ध्व-स्थितःकलान्ते षड्जस्तारो द्विरभ्यस्तो यथा-'सा सा' इति । इत्थं स्वर-सन्निवेशे सति 'धां धां० नि ध नि स नि ध पा सा सा' इति । [8]अस्याधो ब्रह्मोक्त-पदं यथा-'नग-(सूनु-)प्रणय' इति प्रथमा कला ॥१०१॥ अत उत्तर-स्थित-तार-निषाद-धैवतयोर्ग्रहणं [न] न्यासेन यथा 'नी धा' इति । अनयोर्विवादिनोरग्रतोऽधःस्थितः पञ्चमः कार्यः 'पा' इति । पुनर्धैवत-निषादावुत्तर-स्थितौ तारौ (प्रयोज्यौ) यथा-'ध नि' इति । पुनरुत्तर-स्थितावृषभ-गान्धारौ प्रयो-(ज्यौ) यथा— 'री गा' इति ।

(९९) भ. २८।११३

[1] व [2] संनिशे [3] अतो [4] जं [5] स्त्रिशच्च [6] स्थेत
[7] स्या [8] अतो

अत उत्तरं षड्ज-गान्धारयोः सङ्गतिर्यथा-‘सा गा’ इति । [1]एवं स्वरसन्निवेशे कृते- ‘नी धा पा धनि री गा सा गा’ इति । अस्याधो ब्रह्मोक्तपदानि, यथा— ‘के० ली०० [2]सं मु० द्रु०’ इति द्वितीया कला ॥१०२॥

अथ पुनरधःस्थित-[3]मन्द्रषड्जस्य प्रयोगः, यथा—‘सा’ इति । (अत उत्तरं) षड्ज-धैवतयोः सङ्गत्या मन्द्र-धैवतस्य प्रयोगो, यथा—‘धा’ इति । तदुत्तरं विवादिनोर्धैवत-निषादयो- [योक्तं] र्योगो, यथा—‘ध नि’ (इति)। उत्तरं तदधः पुनः पञ्चमः ‘पा’ इति । एवं स्थिते न्यासवदपन्यासः षड्ज एव कार्यः, ‘सां सां सां सां’ इति। एवं समस्ता कला यथा—‘सा धा धनि पा सां सां सां (सां)’ इति । अस्याधो ब्रह्मोक्त-पदं यथा—‘वं०[०]’००००००० । (इति) तृतीया कला । अपन्यास-खण्डो द्वितीयः ॥१०३॥

अथ तृतीये [4]विन्यास-खण्डे षड्ज-गान्धारयोः सङ्गतिरत्र द्विरभ्यस्तो मन्द्रः षड्जः, ‘सां सां’ इति। पुनर्गान्धार-षड्जौ ‘गां सां’ इति । तदूर्ध्वं तार-मध्यमः संवादी चतुर्धा न्यस्तः, [5]अतिबहलो, यथा-‘मां मां मां मां’ इति । एवं स्वर-संनिवेशे (कृते) ‘सां सां (गां सां) मां मां मां (मां)’ इति। अस्याधो ब्रह्मोक्तपदाक्षराणि यथा— ‘सरस-कृत-[6]तिलक,’ इति प्रथमा कला ॥१०४॥ पुनर्मध्यमोऽनुवर्तनीयः [7]संवादीनां भूयस्त्वात्, यथा—‘मा’ इति। अतः परमनुवादी पञ्चमः । स चानुवादिभ्यामेव मध्यम-स्वराभ्यां सह सम्प्रयुक्तः कार्यः, यथा-‘प म म’

---

[1] पञ्चम　[2] स्यस्तं० ग०　[3] द्र　[4] विनसि　[5] प्रति　[6] नि　[7] संमादि

इति। उत्तरमधःस्थितोऽनुवा[1]दी [गान्धारः] केवल एव 'पा[2]' इति। पुनरुप-(रि)-स्थितयो[3]र्धैवत-निषादयोर्विवादिनोरनुलोम-विलोम-प्रयोगो, यथा—'धनि निध' इति। पुनरपन्यासः पञ्चम एवानुवादी, यथा—'पा' इति। पुनर्मध्यम-पञ्चमयोरनुवादि[4]नोर्योगो, यथा—'मप[5]' इति। ततो विवादिनोस्तारयो ऋषभ-गान्धारयोर्योगो, यथा—('रि) ग' इति। एवं समस्तो यथा—'मा प म म पा धनि निध पा मप रिग'।* अस्याधो ब्रह्मोक्त-पदाक्षराणि, यथा—'पं००० का०० नुं ले प००००'। एवं द्वितीया कला ॥१०५॥

पुनस्तृतीय-कलायामपन्यासभूतो गान्धारोऽतिबहुलत्वाच्चतुर्धाभ्यस्तो मन्द्रः कार्यो, यथा—'गा गा गा गा' इति। पुनः षड्ज एव कलावसानेंऽशवद्धि[6]न्या-(स-)-भूतश्चतुर्धा प्रयुक्तो, यथा—'सा सा सा सा' इति। एवं स्वर-संनिवेशे समस्ता कला—'गां गां गां गां सां सां सां सां' इति। अस्याधो ब्रह्मोक्त-पदाक्षराणि यथा—'[7]नं०००००००'। एवं तृतीया कला। कला-त्रयेण तृतीयो विन्यासखण्डः ॥१०६॥

अथ चतुर्थे संन्यास-खण्डे प्रथमकलायां धैवत-षड्जौ संवादिनौ स्वर-सङ्गत्या एकत्र यो[8]ज्यौ, यथा 'धा सा[9]' इति। पुनर्विवादि-ऋषभस्वरयोर्मध्ये गान्धार एव योज्यो, यथा—'रिगरि' इति। पुनर्मध्यम-गान्धारावूर्ध्वाधःस्थितावनुवादिनावेकत्र योज्यौ,

*(१०५) इस अष्टम कला के स्वरलेख में तथा रत्नाकरोक्त स्वरलेख में बहुत भिन्नता है। यही स्थिति अन्य कयी स्वरलेखों की है।

1 धात्री 2 धा 3 गो 4 य 5 त्त 6 न्य 7 गं 8 ध्यौ 9 सा धा

यथा 'म ग'[1] इति। पुनर्गान्धारात्[2] तृतीय-स्थान-स्थितः[3] षड्जो(ऽव)-रोही मन्द्रो[4], यथा—'सा' इति। पुनरस्योर्ध्वं चतुर्थ-स्थान-स्थित-तार-मध्यम-स्वरस्य कलावसानिकस्य बहुल-त्वात् त्रिरभ्यासो, यथा—'मा मा मा' इति। एवं समस्त-कला यथा-'धां सां रिग री मग सा मां मां मां' इति। अस्याधो ब्रह्मोक्त-पदाक्षराणि यथा, 'प्रण० मा००००० मि काम' इति प्रथमा कला ॥१०७॥

[अतीतमध्यमस्योर्ध्वें तारौ विवादिनौ धैवतनिषादौ भवतो यथा। सा धा इति। पुनर्विवादिऋषभस्वरयोर्मध्यं गांधार एवं योद्य इति। योज्यो यथा रिगरीति। पुनर्मध्यमगांधारावूर्ध्वाधः स्थितावनुवादिनावेकत्र योज्यौ। यथा। सगेति पुनर्गांधार-स्तृतीयस्थानस्थितः षड्जोवाराही मन्द्रो यथा। वारा ही मन्द्रो यथा।

सा इति पुनरभ्योर्ध्वं चतुर्थस्थानस्थितमतारमध्यमस्वरस्य कलावसानिकस्यच बहलत्त्वा त्रिरभ्यासो यथा॥ मा मा मा इति॥

पञ्चम समस्तकला यथा धां सारिगसा मां मां मां इति॥

अस्याधोब्रह्मोक्त-पदाक्षराणि यथा। ००००० मिका० म इति प्रथमकाला॥]*

अतीत-मध्यमस्योर्ध्वं तारौ विवादिनौ धैवत-निषादौ भवतो,

*उपरोक्त अंश कं० १०७ के आगे पुनरुक्त है।

1 सा ग 2 रः 3 तौ 4 मन्द्राया

यथा—'धा नी' इति। पुनरनयोरधःस्थितस्यानुवादिनोऽपन्यास-रूपस्य पञ्चमस्य ग्रहणं यथा—'पा' इति। पुनरस्योर्ध्वस्थित-तारयोर्विवादिनोर्धैवत[2]-निषादयोर्ग्रहणं, यथा—'ध नि' इति। पुनर्द्वितीय-सप्तकाधःस्थितयोऋषभ-गान्धारयोर्योगो यथा—'री गा' इति। पुनरावृत्त्याऽधः[3]स्थित ऋषभो यथा 'री' इति। पुनरस्याधःस्थितो मन्द्र-षड्जो यथा—'सा' इति। एवं[4] समस्त-कला-योगो, यथा— "धा नी पा धनि री गा री सा" इति। अस्याधो ब्रह्मोक्त-पदाक्षराणि, यथा— "दे॰ हे॰॰ ध ना न लं" इति द्वितीय-कला ॥१०८॥

पुनस्तृतीय-कलाया आदावृषभ-गान्धारौ विवादिनावेव योज्यौ, यथा—'रि ग' इति। अनयोरधःस्थितयोरनुवादी मन्द्र-षड्जो योज्यः, 'सा' इति। पुनस्तौ[5] विवादिनावेव ('री गा' इति)....॥१०९॥

शुद्ध-षाड्जी-जातिश्चचत्पुटे[6] ताले द्विगुणाष्टमिकां कलां कृत्वा द्वादश कला गातव्याः। कला-नामानि च सूत्रकृदुक्तानि, यथा—

"ध्रुवका[7] सर्पिणी कृष्णा[8] पद्मिन्यथ विसर्जिता।
विक्षिप्ताख्या पताका च पतिता चेति नामतः॥"*

---

* (११०) इस श्लोक को 'सूत्रकृत्' कह कर **नान्यदेव** ने नाट्यशास्त्र का आधार बतलाया है, परन्तु वह नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नहीं है। **अभिनवगुप्त** ने अपनी टीका में इसको किसी अन्य ग्रन्थ से उद्धृत किया है। (**ना॰ शा॰**— IV, पृ॰ १६८, अ॰ ३१, श्लो॰ ३०–३१ की टीका; **सं॰ र॰** ५/१२)

---

1 वा 2 दैवत 3 त्यौऽधः 4 पंच 5 स्ता 6 त्वपुटे
7 विका 8 कृण्या

अस्यां च जातौ [1]भगवत्स्तुतिस्तोत्र-सुमना द्विपदी छन्दसा चतुष्पदी प्रतिकलम-(क्ष-)रेषु कलाभिर्निर्भिद्य[2] पूरयित्वा द्वादशधा-स्वर-कला-षाड्[3]जी गातव्या। एकतः स्वर-कला-समासौ[4] वाऽष्ट-कलाभिरेकया कल-(या) द्वादश [5]कलाविभिद्य गातव्याः ॥११०॥

चतुष्पदी[6] यथा—"तं भव-ललाट-नयनाम्बुजाधिकं नग-सूनु-प्रणय-केलि-समुद्भवम्। सरसकृत-तिल(क-पङ्-)कानुलेपनं प्रण-मामि कामदेहेन्धनानलम्" ॥१११॥

समस्त-कलाभिः [7]शुद्धा षाड्जी यथा—

सा सा सा सा पा नि ध पा ध नि धा।

री ग म गा गा सा रि ध स धा॥

रि ग सा री गा सां सां सां सां।

धा धा नि ध नि स नि ध पा सा सा॥

नी धा पा ध नि री गा सा गा।

सा धा ध नि पा सां सां सां सां॥

सा सा गा सा मा॰ मा॰ मा॰ मा॰।

तं ०० भव [8]लं ला ०० ०० (ट)॥

न य॰ ना॰ म्बुजा ०० धि

[9]कं ० ० ० ० ० ० ० ० ०॥

नग [10]सूं ० ० ० नु ० प्र ण य

केलि ०० समुद्भ ०॥

---

1 भगवद्धतिस्तोक्त 2 भयं 3 षड्जा 4 दा 5 कलयन्ति 6 ऽपदेशी
7 शुद्ध षड्जो. 8 त 9 जे 10 मू

वं ०० ०० ०० ००० ।

सरस कृत तिलक ० ॥

मा प मा गा ध नि नि ध पा म प [री गा] ।

गा गा गा गा सां सां सां सां ॥

धा सा रि ग री म ग सा मा मा मा ।

धा नी पा ध नि री गा री सा ॥

रि ग सा री गा सा सा सा सा ।

पं०० ०० का०० नु० ले०० ०० प ।

नं००० ००० ॥

प्रणमा०० ०० मि[1] का० म ।

दे[2]० हेन्धंना० नं[3] ।

लं०० ०० ०० ०० ॥११२॥

अत्र च प्रथम-कलादौ 'सा' इति ग्रहोंऽशश्च[4]। पुनस्तृतीय-कलाया अवसाने 'सा'-चतुष्टयं न्यासः। पुनः षष्ठ-कलावसाने 'सा'-चतुष्टयमपन्यासः। पुनर्नव-कलावसानिक-'सा'-चतुष्टयं विन्यासः। पुनर्द्वादश-कलावसाने 'सा'-चतुष्टयं संन्यास इति खण्ड[5]-चतुष्क-[ष्ट]-मेव च ग्रहांश-न्यासापन्यासादिषु चैकत्वाज्जातेः स्वराख्यायाः शुद्धत्वम्।

(११२) जातियों की आक्षिप्तिकाओं के अशुद्ध शब्दों को हमने सं. **रत्नाकर** का आधार लेकर शुद्ध किया है। स्वराक्षर वैसे ही रहने दिये गये हैं। यह आक्षिप्तिका लेख अव्यवस्थित है।

[1] मिकक० मा [2] त्व [3] ना [4] शाश्च [5] षंड

यथाऽऽह दत्तिलः,

"[1]अंशाढ्यमन्य-न्यास(-स्तु) स्वर-जाति-(षु) नामकृत् ।
(तदग्र-) हा तदपन्यासा त[2]दंशा च यदा भवेत् ॥
मन्द्र-न्यासा च पूर्णा च शुद्धा जातिस्तदोच्यते ।"
इति ॥११३ ॥*

---

*(११३) द० ६१–६२

.(८५–११३)। इन कंडिकाओं में ग्रंथकार ने कुछ महत्त्व की बातें कहीं हैं, जो इस प्रकार हैं :—

(१) षड्जग्रामिक सप्तक में षड्ज का संवाद पञ्चम के साथ ही होता है (८५)।

(२) षाड्जी जाति में पञ्चम स्वर षड्ज का संवादी होने से (शुद्धावस्था में) पञ्चम ही अपन्यास होता है, मध्यम नहीं (८५)।

(३) इन दोनों सदृश स्वरों के मध्य में (षड्ज तथा पञ्चम के बीच में) विवादी (एवं अनुवादी) स्वरों का प्रयोग नहीं है, कारण उक्त स्वर (इस स्वर–चलन में) राग–सहायक नहीं हैं। इस नियम के अनुसार इस स्वरबन्ध में 'सा सा सा सा' के पश्चात् 'प' इस प्रकार प्रयोग किया गया है। अर्थात् इस स्थान में षड्ज तथा पञ्चम के बीच में अन्य स्वरों का प्रयोग रागरञ्जक नहीं होगा। तात्पर्य षड्ज का उच्चारण चार बार करने के बाद सीधे पञ्चम पर जाता है। उसी तरह कं० १०० में मन्द्र षड्ज के पश्चात् तार धैवत का उच्चारण निर्दिष्ट है। पुनश्च कं० १०४ में मन्द्र षड्ज तथा गान्धार के पश्चात् तार मध्यम प्रयुक्त है। तत्पश्चात् मध्यस्थानीय पञ्चम–मध्यम के आगे तार ऋषभ–गान्धार प्रस्तुत है। कं० १०७ में मन्द्र षड्ज के पश्चात् तार मध्यम निर्दिष्ट है। ह० लि० में मन्द्र शब्द स्पष्ट है, तथापि ऐसे स्थान पर 'मध्य' शब्द होना उचित होगा। षाड्जी के रत्नाकरोक्त प्रस्तार में कला–१ में मध्य षड्ज से पञ्चम, मध्य पञ्चम से तार षड्ज (कला–४ में), तथा मन्द्र पञ्चम से मध्य षड्ज (कला–६ में) इस प्रकार दूरी के स्वर लिये गये हैं। तात्पर्य यहाँ षड्ज-पञ्चम-संचार का प्रयोग किया गया है। उपरान्त इस जाति में ध़-सा तथा ग़-सा इस प्रकार स्वर-संगति नियमानुसार तो होती ही है।

---

1 अंशः स्याम 2 तदंकारपदा

(४) वादी स्वर का संवादी स्वर मन्द्र सप्तक का होना चाहिए (८५)।

(५) "मन्द्र सप्तक में स्वर–चलन चतुर्थ स्वर के पूर्व ही समाप्त होना चाहिए" इस नियम के अनुसार (षड्ज के) संवादी तथा अपन्यास स्वर पञ्चम के मन्द्रत्व का निषेध है। तार पञ्चम भी प्रयोग में नहीं आता (८६)।

उपर बताये हुए नियम क्र० (४) का अर्थ स्पष्ट नहीं है। अन्य नियम भी अस्पष्ट एवं चिन्तनीय हैं।

ii षाड्जी के स्वरबन्ध के प्रारम्भिक स्वर 'सा सा सा सा' मन्द्र–स्थानीय हैं, ऐसा नान्यदेव का कथन है (कं० ९३, ९५, ९८, ९९), परन्तु **रत्नाकर** में इन्हीं स्वरों को मध्य–स्थानीय बतलाया गया है तथा **कल्लिनाथ** का स्पष्टीकरण भी इसी तरह स्पष्ट है :—

"तत्र षड्जग्रामे शुद्धस्वर-मेलने प्रथम-कलायां तावन्मध्य-स्थानस्थितः षड्जः" इत्यादि (**सं० र०** I, पृ० २०१, पङ्क्ति ४, ५)।

iii पद्य की पङ्क्तियों को चरण अथवा पाद कहते हैं, उसी प्रकार आक्षिप्तिका की तथा प्रस्तार की प्रत्येक पङ्क्ति को 'कला' संज्ञा दी जाती है। यह कला इन प्रस्तारों में अष्टमात्रिक होती है। प्रत्येक मात्रा पाँच निमेष अर्थात् पाँच ह्रस्वाक्षरोच्चार काल सम्मित कालमान की होती है, वह भी लय एवं मार्ग के अनुसार एकगुणित, द्विगुणित, और त्रिगुणित होती है। (**ना० शा०** ३१/१-६)

(९०) 'गुडितौ' = 'निपीडितौ'; तात्पर्य एक लघु में दो स्वरों का उच्चारण है। (८८) में प्रयुक्त 'अपकर्ष' शब्द का भी यही अर्थ है।

(९४) गान्धार को विवादी तथा मध्यम को अनुवादी कहा गया है।

(९५) 'आयत' का अर्थ दीर्घ है।

(९६) 'धैवतौ मनाग्लम्बिनौ' कहा गया है, किन्तु, इस कला के अन्त में एक ही धैवत है, जो दीर्घ है।

(९९) तृतीय कला के अन्त में चार बार आये हुये षड्ज को न्यास कहा गया है तथा अंश स्वर को ही स्थानवशात् न्यास आदि संज्ञा दी जाती है, ऐसा व्याख्यान किया गया है। इसी प्रकार का स्पष्टीकरण कं० ९४ में किया गया है। नाट्यशास्त्र में भी अंश का किया गया वर्णन इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है (**ना० शा०** २८/६९)।

"अंशाश्च पञ्च[1] षाड्ज्याः स्युर्निषादर्षभ-वर्जिताः ।
अपन्यासस्तु गान्धारः पञ्चमश्चाथ सङ्गतिः ॥
षड्ज-गान्धारयोस्तु स्यात्षड्ज-धैवतयोस्तथा ।
षाडवं तु निषादे स्यात्, नास्याश्चौडुवितं भवेत्" इति ॥११४॥

समस्त-कलाभिः स्वर-जातिं गीत्वा वा चतुष्पदी गातव्या, यथा—

म पा धनि पा सा सा सा सा ।
सा सा गा सा मा सा मा मा ॥
मा पमम पाध निनिध पा म प री गा ।
गा गा गा गा सा सा सा सा ॥

---

(१०३) अन्त में आये हुये षड्ज को अपन्यास कहा है ।

(१०४) षड्ज तथा गान्धार की संगति बतायी है तथा मध्यम का बहुलत्व बताकर गान्धार को षड्ज का अनुवादी कहा है । पञ्चम को भी अनुवादी कहा है ।

(१०५) रि-ग, ध-नि के विवादित्व के विषय में नान्यदेव द्वारा विशेष प्रकाश डाला गया है ।

(१०६) अन्तिम षड्ज को विन्यास कहा है ।

(१०७) षड्ज तथा धैवत को परस्पर संवादी कहकर गान्धार को षड्ज का अनुवादी बताया है ।

(११०) षाड्जी की आक्षिप्तिका की कलायें अर्थात् चरण कुल मिलाकर बारह होते हैं ।

ग्रंथकार ने उपरोक्त विवेचन में कला १, २, ३ को न्यास–खण्ड; कला ४, ५, ६, को अपन्यास-खण्ड, कला ७, ८, ९, को विन्यास-खण्ड एवं कला १०, ११, तथा १२ को संन्यास-खण्ड कहा है ।

---

(११४) द. ६३, ६४

---

[1] पञ्चमौ

धा सा री गरि [मग] सा मा मा मा ।
धा नी पा धनि री गा री सा ।
रिग सा री गा सा सा सा सा ॥११५॥

---

(११५) १ : यह शुद्ध–षाड्जी का स्वरलेख अर्थात् 'प्रस्तार' है। यही स्वरलेख किंचित् भिन्न रूप से कं० ८७ में ऊपर आया है तथा कं० ११२ में आक्षिप्तिका के रूप में पुनरावृत्त है। षाड्जी के ९५ भेदों के स्वरलेखों में इसको हमने प्रथम क्रमाङ्क दिया है। षाड्जी प्रकार क्र० २ आदि स्वरलेख कं० १२२ से प्रारम्भ होते हैं।

२ : इस स्वरलेख की प्रारम्भिक पाँच पंक्तियाँ **ह० लि०** में लुप्त हैं, अतः यह स्वरलेख उसकी छठवीं पंक्ति से प्रारम्भ हुआ है।

३ : षाड्जी जाति का संपूर्ण स्वरलेख अर्थात् प्रस्तार **रत्नाकर** में निम्न-प्रकार से उपलब्ध है:—

(१) "सा सा सा सा पा निध पा धनि
(२) री गम गा गा सा रिग धस धा
(३) रिग सा री गा सा सा सा सा
(४) धा धा नी नीस निध पा सा सा
(५) नी धा पा धनि री गा सा सा
(६) सा धां धंनिं पां सा सा सा सा
(७) सा सा गा सा मा पा मा मा
(८) सा गा मा धनि निध पा गा रिग
(९) गा गा गा गा सा सा सा सा
(१०) धां सा री गरि सा मा मा मा
(११) धा नी पा धनि री गा री सा
(१२) रिग सा री गा सा सा सा सा।"

(सं० र० I, पृ० १९९–२००)

इन दोनों स्वरलेखों की तुलना करने से ज्ञात होगा कि, नान्यदेव के स्वरलेख की पङ्क्तियाँ क्र० १, २, ४, ५, ६ तथा ७ रत्नाकरोक्त पङ्क्तियों क्र० ६, ७, ९, १०, ११ तथा १२ के अधिकांश समान है।

४ : ये सभी स्वरलेख तालबद्ध हैं तथा प्रत्येक पङ्क्ति ताल की आठ मात्रा में विभक्त है। इस प्रकार के स्वरलेखों को स्वरबन्ध नाम देना उचित होगा। प्रचार में ऐसी रचना का नाम 'सरगम' है। **मतंग** तथा **शार्ङ्गदेव** ने इन्हीं स्वर-बन्धों को 'प्रस्तार' कहा है। गीत-शब्द-युक्त तालबद्ध स्वरलेखों के लिये **रत्नाकर** में 'आक्षिप्तिका' संज्ञा प्रयुक्त है (अ० २, श्लो० २६), जिसको प्रचार में चीजों का 'नोटेशन' कहते हैं। परन्तु **शार्ङ्गदेव** ने नोटेशन-सहित जाति-गीत दिये हैं। उन के लिए भी प्रस्तार संज्ञा, प्रयुक्त की है, तथा वही संज्ञा **कल्लिनाथ** ने प्रयुक्त की है—"स्वरसंख्या प्रस्तारत एव द्रष्टव्या" इ० (**सं० र० I**, पृ० २०६) आक्षिप्तिका संज्ञा को **शार्ङ्गदेव** ने तथा **कल्लिनाथ** ने ग्रामरागों के नोटेशनयुक्त गीतों के लिए प्रयुक्त किया है। यह संज्ञा-भेद संगीत के गान्धर्व तथा देशी भेदों पर आधारित होगा, ऐसा तर्क कर सकते हैं।

५ : **बृहद्देशी** में दिये गये जातियों के प्रस्तारों में षाड्जी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, धैवती, नैषादी, षड्जोदीच्यवती, ष० कैशिकी तथा रक्तगान्धारी जातियों के प्रस्तार लुप्त हैं। अवशिष्ट जातियों के जो प्रस्तार मुद्रित हैं, उनकी त्रुटि की पूर्ति ग्रंथ के संपादक ने **रत्नाकर** के आधार से की है, ऐसा प्रतीत होता है। मतंगोक्त तथा रत्नाकरोक्त प्रस्तारों में थोड़ी भिन्नता है। मन्द्र-तार स्थान के आवश्यक चिन्ह मतंगोक्त प्रस्तारों में बहुत से स्वरों पर नहीं दिये गये हैं और जहाँ दिये गये हैं, उनमें से कितने एक भिन्न स्वरों पर दिये गये हैं।

६ : नान्यदेवोक्त स्वरबन्धों में तथा उनके गीतों के शब्दों में बहुत ही गड़बड़ी है। जातिगीतों के अशुद्ध शब्दों को सुधारने के लिये हमने रत्नाकरोक्त पाठ का आधार लिया है। स्वरबन्धों को या स्वराक्षरों को सुधारने की जहाँ आवश्यकता प्रतीत हुई, वहाँ हमने नान्यदेव द्वारा किये हुये विवेचन का अधिकतर आश्रय लिया है।

७ : प्रचलित प्रत्येक राग में अनेक प्रकार के स्वरबन्ध [Compositions] अर्थात् शब्दहीन स्वरलेख ('सरगम') तथा पदतालयुक्त स्वरलेख अर्थात् नोटेशन-युक्त चीजें आज उपलब्ध हैं, किन्तु षाड्ज्यादि प्रत्येक जाति का प्रस्तार

अथवा आक्षिप्तिका सभी प्राचीन ग्रन्थों में केवल एकही उपलब्ध है। अतः अनुमान कर सकते हैं कि प्रत्येक जाति का मूल प्रस्तार प्राचीन समय में एक ही सर्वसंमत तथा सर्वमान्य था। इस प्रस्तार के स्वरताल में कोई भी ईश–स्तुति–गीत के शब्दों को निबद्ध करते थे और ऐसे गीत को जाति की (अथवा ग्रामरागों की) आक्षिप्तिका कहते थे। प्रत्येक जाति के ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास आदि सब प्रकार के जटिल नियमों का पालन करके इन प्रस्तारों की रचना की गई है। ये रचनायें अति प्राचीन काल में की गई थीं। तथा भरतमुनि के अथवा तत्पूर्व समय से परंपरा द्वारा सुरक्षित थीं। अतः इन रचनाओं के रचयिता ब्रह्मा आदि माने जाते थे, तो इसमें आश्चर्य नहीं। जातियाँ प्रचलित थाट–रागों के समान थीं अर्थात् जातियों द्वारा मेल भी सिद्ध होते थे। परिणामस्वरूप उनके स्वरबन्धों के लिये इस प्रकार की सावधानी बरतना आवश्यक ही था। **मतंग** के एक दो सदियों के पूर्व ही जाति–ग्रामराग तथा ध्रुवा–प्रबन्ध आदि प्राचीन संगीत का लोप हुआ, अथवा उनका रूपान्तर देशी संगीत में हुआ और ग्रामरागों के स्थान पर भाषादि देशी रागों का प्रचलन हुआ। जैसे जैसे जाति–गायन अप्रचलित एवं लुप्त होकर 'प्राचीन' बनता गया, वैसे–वैसे इसके संबन्ध में श्रद्धा तथा पावित्र्य की भावना बढ़ती गयी। **रत्नाकर** के समय में मतंगकालीन 'भाषारागों' का भी लोप हुआ। परिणामतः जाति की आक्षिप्तिकाओं को वेदमन्त्र के समान पवित्र तथा अपरिवर्तनीय मानने लगे। परन्तु ये स्वरबन्ध अब तो केवल ग्रन्थों में ही देखने को मिलते थे, न उनके स्वरूपों का ज्ञान किसी को था, न वे गाये जाते थे। स्वाभाविकतया शार्ङ्गदेव जैसे शास्त्रकार जाति के स्वरबन्धों के एकाध स्वर को भी यहाँ का वहाँ करने को पाप समझने लगे। हमारे समय में भी ५० वर्ष पूर्व के संगीतकार विशेषतः ध्रुपद–गायक, ध्रुपद के बंदिश के विषय में भी इसी तरह की निष्ठा तथा आग्रहपूर्ण रवैया रखते थे।

जातियों के स्वरबन्धों के पावित्र्य के विषय में **शार्ङ्गदेव** का कथन इस प्रकार है:—

"ब्रह्मप्रोक्त–पदैः सम्यक्प्रागुक्ताः शंकरस्तुतौ ॥ १।७।११३ ॥
अपि ब्रह्महणं पापाज्जातयः प्रपुनन्त्यमूः ।
ऋचो यजूंषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा ॥११४॥
तथा सामसमुद्भूता जातयो वेद–संमिताः ।"

(सं० र०, अ० १)

अस्याधः समस्ता चतुष्पदी यथा—"तं भव-ललाट-नयना-म्बुजाधिकं[1](न-)ग-सूनु-प्रणय-केलि-समुद्भवम् । सरस-कृत-(तिलकपङ्कानु-)लेपनं, प्रणमामि कामदेहेन्धनानलम्[2]" इति ॥ इयं द्विपदी भगवतो[3] भवस्य ललाट-लोचन-जन्मनो[4] वन्हेर्नमस्कारोर्त्थां इति **षाड्जी** शुद्धा जातिः ॥११६॥

दश-लक्षणानि वर्णालङ्कारौ स्वर-पदाक्षर-निवेशः ।
ताल-कला-विधिरेवं कथितः षाड्ज्यास्तु शुद्धायाः ॥११७॥

इति षाड्जी-जाति-वर्णनाख्यं प्रकरणं समाप्तम् ॥

७. अथ सप्तमं षाड्जी-भेद-वर्णनं नाम प्रकरणम्

[6]अधुना च पञ्चनवतिभेदानस्या ग्रहादि-विकृतायाः ।
वर्णयति नान्यदेवो यथोपदेशं, न विस्तरतः ॥११८॥

एका शुद्धा विकृता मापन्यासा तथैका च ।
अंश-विकृताश्चतस्रश्चतस्र[7] एव ग्रहेण विकृताश्च ॥११९॥

विकृता ग्रहांश-भेदैः षोडश-वासा वदन्ति जातिज्ञाः ।
अन्याश्चतुर्विंशतिरंशापन्यासक-ग्रह-विभागात् ॥१२०॥

तात्पर्य **रत्नाकर** के समय म संगीतशास्त्र के पण्डित तथा संगीतकार यहाँ तक मानने लगे थे कि, जातियों के गायन से ब्रह्महत्या का पाप भी निरस्त हो सकता है। जातियों की उत्पत्ति सामवेद से अथवा सामगान से हुई, ऐसा उल्लेख **रत्नाकर** के उपरोक्त श्लोक में है ही।

---

1 जं 2 धनोनलाम् 3 ता 4 नां 5 छा 6 अमुना 7 पच

चत्वारिंशत्पञ्च भेदानभिवदन्ति षाडव-विकारात् ।
एवं (च) पञ्चनवति(हि) भेदाः षाड्ज्या निगद्यन्ते ॥१२१॥

(१) (षाड्जी मा-)पन्यास-विकृता यथा—

(२) (स-ग्रह-सांशा मा)-पन्यास-विकृता यथा—

सां सां सां सां मा नि ध मा ध नि री ग म गा गा स रि ग ध स धा रि ग सा री गा सा॰ सा॰ सा॰ धा धा नि ध नि स मा सा सा । नी धा मा ध नि री गा सा सा । सा धा ध नि मा सा सा सा सा । मा मा गा सा मा मा मा मा मा मा पम म गा ध नि नि ध मा प म री मा । गा गा गा गा मा गा सा सा । धा सा रि ग री ग म सा मा सा मा मा । धा नी मा ध नि री गा री सा रि ग सा री गा मा मा सा सा ॥१२२॥

(३) स-ग्रह-गांशा यथा—

सा गा गा गा गा पा नि ध पा ध नि । री ग म गा गा सा रि ग ध स धा रि ग सा री गा गा गा गा गा·········· ····॥१२३॥

---

(१२२) i. षाड्जी के स-ग्रह-मापन्यास-युक्त अन्य भेद आगे क्र० १९ से आये हुए हैं।

ii. कं० ८७ तथा ११५ में शुद्धा षाड्जी का प्रस्तार आया है, वही षाड्जी का भेद क्र० १ है।

(१२३) यह स्वरलेख अपूर्ण है।

[धा मा धा नी पा पा । सां सां धा सा मा म री री । री मा री पा मा प - - - - । ग म ग म री री स री री री मा री रे री मा धा - - मा मा । धा मा नी सा गा सां सां सां । धा नी धा मा - - पा पा ॥ शीर्षकं जान (?) पा [1]णिका दक्ष [2]प्रोक्ता । पाणिका त्रयोदश समाप्ता ॥—॥ पा प ध नी मा ग रि मा रि म म ध रि नि सा ग रि ग रि । मा ग सा ग रि धा मा गा नि गा ॥ गुहजननम ००० । का० म० मतुलं । विमलं जटिलं । धा ० म ० दं ० सुरव ० दं । वर दं ०० मुमा गण । पठित [3]मव्यक्तं ० [4]तं ० दे वं० । [5]मं धा मा धां धा नि म मा प रि गा गा री ग म [6]गं ध ध नि० - - - - ग रि गा गा । री री मा ग म । ग रि नी नी नि रि नि री प - - धा मा री री मा गा ध त्रि० [7]नेत्रं० - - ० ०० । श ० शा ० ङ्क [इ] कृत शे ००० ख [8]रं सं सारार्णव भीतो [9]ऽहं० शरणं व्रजामि श०ङ्करं । पुरुषं परं उधारी (?) । धा मा मा मा री मा मा री नी नी नी । नी री धा मा मा री [10]री गा मा मा गा नी री मा मा री ॥ नी री - - - - री री [ः] । धा मा मा मा री मा मा । री री मा नी नी नी नी नी नी । नी री मा धा मा री ग मा गा । री री गा मा - - ग नी री - - - - - - - - - - ००

(१२४) षाड्जी जाति के स्वरलेख क्र० ३ के अन्त में पाणिका गीत की यह आक्षिप्तिका ह० लि० (प० २४) में मिश्रित है । इसकी कई अशुद्धिओं को हम सुधार न सके ।

1 ण 2 क्त 3 प 4 क्तं 5 ध्य 6 ग्र 7 जे 8 रा 9 ह 10 रग्र,

----------- ०० ०० ०० आ ०० ०० ०० । गुणरहितं ।
० ०० ० आ ०० ०० ०० ० । आ ०० ०० ०० ०० ॥१२४॥]

(४) (स-ग्रह-मांश-विकृता यथा—)

(सा मा मा मा) पा [सा सा] नी धा पा ध नि री गा मा मा । मा धा ध नि पा मा मा सा सा सा । मा मा गा मा मा मा मा मा [:] । मा प म म पा ध नि नि ध पा म प री गा गा गा गा गा सा मा सा सा धा मा रि ग री म ग मा मा मा मा । धा नी पा ध नि री गा री मा रि ग मा री गा मा मा सा सा इति ॥१२५॥

(५) स-ग्रह-मांश-विकृता यथा—

सा पा पा पा पा नि ध पा ध नि री ग म गा गा परिग ध प धा --------- पा पा पा पा । धा धा[1] नि ध नि प नि ध पा सा सा । नी धा पा ध नि री गा पा गा पा धा ध नि पा पा पा सा सा ऽ पा पा गा पा मा मा मा मा मा प म म गा ध नि नि ध पा म ध री गा मा गा पा गा पा पा सा सां । धा पा रि ग री स ग पा मा मा मा । धा नी पा ध नि री गा री पारि पारि ग पारीगापापा सा सा इति ॥१२६॥

(६) स-ग्रह-धैवतांश-विकृता यथा—

सा धा धा धा पा नि ध पा ध नि री म[3] - गा गा धारिग

---

[1] ग [2] वा [3] ग.

ध धारि ग धारीगा धा धा धा धा। धा धा नि ध नि ध नि ध पा सा सा। नी धा पा ध नि निरीगा धा नी[1] धा धा नि ध पा धा धा सा सा धा धा गा धा मा मा मा मा। मा पम म गा ध नि निध पाम परीगा। गा गा गा गा। धा धा सा सा धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा। धानीपा धनिरी गारी धारिग धारीगा धा धा धा सा इति ॥१२७॥

(७) ग-ग्रह-मध्यमांश-विकृता यथा—

गा मा मा मा पा[2] धनि पानिधा रीगम गा गा मा रि ग धम धारिग मारीगा मा मा मा मा। धा धा न ध नि म नि ध पा सा सा। नी धा पा धनि री गा मा मा मा मा पा ध नि पा मा मा सा सा। मा मा गा मा मा मा मा मा मा पम म पा ध नि निध पाम परीगा। गा गा गा गा पा पा सा सा। धा मा रि ग री प ग मा मा सा सा। धा नी पा धनि री गा री मा[3]। री ग मा री गा मा मा सा सा इति ॥१२८॥

(८) ग[4]-ग्रह-पञ्चमांश-विकृता यथा—

गा पापापा नि ध पा ध पा ध निरीग मा गा गा पारिग धपधा पारिग धपधारिग पारीगा पापापापा धा धा नि ध निप निध पा सा सा नी धा पा ध नि री गा पा गा। पा धा ध नि पापापा सा मा। पा पा गा गा मा मा मा मा। माप म

---

[1] गा [2] गा [3] गा [4] पा

म गा धनि पाम परीगा । गा गा गा गा पापा सासा । धापा रिगरी मग पा मामामा । धानीपाध निरीगा री गा रि ग पारीगा पा पा सा सा इति ॥१२९॥

(९) ग[1]-ग्रह[तु]-धैवतांश-विकृता यथा—

गा धा धा धा पा निध पा ध नि री ग म गा गा धारिग ध ध धा । री गा धा री गा धा धा धा धा । धा धा नि नि ध नि ध पा सा सा । नी धा पा ध नि री गा धा गा धा धा नि ध नि पा धा धा सा सा धा धा गा धा मा मा मा । मापमम गा ध नि नि ध नि ध माम परीगा गा गा गा गा धा धा सा सा । धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा धानी पा ध निरी गारी धा । रिग धारी गा धा धा सा सा इति ॥१३०॥

(१०) म-ग्रह-गान्धारांश-विकृता यथा—

मा गा गा गा [गा] पा नि ध पा ध निरीगम गा गा गा रि ध ग ध ध धा रि ग गा री गा गा गा गा गा । री गा नि ध नि ध नि ध पा मा सा नी धा पा ध निरी गा गा धा ध निरी गारी गारिग गारी गा गा गा सा सा इति ॥१३१॥

(११) म-ग्रह-पञ्चमांश-विकृता यथा—

मा पापापा नि ध पा ध निरीग म गा गा पारिग ध प धा रिग पारीगा पापापा । पापा निध नि प नि ध ध पा सा सा ।

---

[1] म

धा धनि पापापा सासा । पापा गापा मामामामा । माप म म गा ध नि नि ध पा म परीगा । गा गा गा गापापा सासा धापारि ग री म ग पा मा मा मा धानीपा ध नि री गा री पारि ग पा री गा पापा सासा इति ॥१३२॥

(१२) म-ग्रह-धैवतांश-विकृता यथा—

मा धा धा धा पानिध पाध निरी ग[1] म गा गा धारिग ध स धा रि ग ध स धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा नि ध नि ध नि ध पा सा सा । नी धा पा ध नि री गा धा गा । धा धा धनि पा धा धा सा सा । धा धा गा धा मा मा मा मा । माप म म गा ध नि नि ध पामप धा[2] गा । गा गा गा गा धा धा सा सा । धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा[3] धानी पाध निरी गारी धारि ग धारी गा धा धा सा सा इति ॥१३३॥

(१३) प-ग्रह-गान्धारांश-विकृता यथा—

पा गा गा गा पा नि ध पा ध नि री ग म गा गा गा रि ग ध ग सा (ध) रि ग गा री गा गा गा गा गा धा धा नि ध नि ग नि ध पा सा सा नी धा पा धनि री गा गा गा । गा धा ध नि पा गा गा सा सा । गा गा गा सा सा सा सा। मा प म म गा धनि निध पा म प री गा । गा गा गा गा

---

[1] म [2] मा [3] सा

गा गा सा सा। धा गा रि ग ग री म ग मा मा मा मा।
धा नी पा ध निरी गा री गारिग गा री गा गा गा सा सा
इति ॥१३४॥

(१४) प-ग्रह-मध्यमांश-विकृता यथा—

पा मा मा मा पा निध पा धनि री ग म गा गा मारिग
ध म धा रि ग मा री गा मा मा मा मा। नी धा पा ध नि
रीगा मा गा। मा गा मा धा ध नि गा पा मा मा सा सा मा
मा गा मा मा मा मा मा। मा प म म म मा धनि नि ध
पा म - - - - - - - - - गा गा सा सा सा सा। धा म री ग रि
म ग मा मा मा मा। धा नी पाध नि री गा री मा। रि ग
मा री (ग) मा मा, सा सा इति ॥१३५॥

(१५) अथ पञ्चम-ग्रह-धैवतांश-विकृता यथा—

पा धा धा धा पा नि ध पा ध नि री गम गा गा धारि ग
ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा धा नि ध नि ध
ध पा मा मा। नी धा पा ध नि री गा धा गा। धा धा ध
नि पा धा धा सा। सा धा धा गा धा धा मा मा मा मा प
म म गा ध नि नि ध पाम परीगा। गा गा गा गा धा धा
सा सा। धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा। धा नी पा
नि री गा री धा। रि ग धा री गा धा धा साँ सा इति ॥१३६॥

[1] सा [2] मा मा

(१६) अथ धैवत-ग्रह-गान्धारां(श-) विकृता यथा—

धा गा गा गा[1] (पा) निध पाध नि री ग म गा गा (ग) रिग धग (ध) गारि गा गा री गा गा गा गा गा धा धा निध नि ग नि ध पा सा सा । नी धा पा ध नि री गा गा गा । पा धा धा नि प गा गा सा सा गा गा गा गा मा मा मा मा । माप म म गा धनि नि ध पा म प री गा । गा गा गा गा गा सा सा धा गा रि ग री म ग गा मा मा मा । धा नी पाध नि रि ग री गा । रि ग गा री गा गा गा सा सा इति ॥१३७॥

(१७) अथ धैवत-ग्रह-मध्यमांश-विकृता यथा--

धा मा[2] मा मा पा[3]निधप धनिरीगम गा[4] मारिगम धारि ग पा री गा मा मा मा मा धा मा रि ग री ग म मा मा सा सा । धानी पा ध नि री गा री मा[5]। रि ग मा री गा (मा मा) सा सा इति ॥१३८॥

(१८) अथ धैवत-ग्रह-पञ्चमांश-विकृता यथा—

धा पा पा पा [पा] पा निध पा ध नि री ग म गा गा । मारिग धप धारिग धप धारिग पापापापापा पा धा धा नि ध निप निप पा सा सा । नी धा पा ध नि री गा पा गा । पा धा धनि पा पा पा सा सा । पा पा गा पा मा मा मा । मप मम गा धनि निध पाम परीगा । गा गा गा गा पा पा सा

---

[1] मा [2] धा [3] निनिपपा [4] मा [5] पा

सा । धा धा रि ग गा म री पा मा मा धानी पा ध नि री गा री पा । रि ग पा री गा पा पा सा सा ॥१३९॥

(१९) षड्ज-(ग्रह-) गान्धारां-(श)मापन्यास-विकृता यथा—

सा गा गा [1]गा (पा) नि ध पा ध नि री गम मा गा । गा रि ध ध ग धा रि ग री गा गा गा गा गा । धा धा नि ग नि ध पा सा सा । नी धा पा ध नि री गा गा गा । धा गा ध नि मा गा गा सा सा । गा गा गा गा पा मा मा । मा प म म गा ध नि मा म प री गा । धा गा रि गरी म ग गा मा मा मा । धा नी पा ध नि री गा री गा रि [2]गं गा । री गा गा गा सा सा इति ॥१४०॥

(२०) षड्ज-ग्रह-[3]मध्यमांश-मापन्यास-विकृता यथा—

सा मा [4]मा मा पा ध नि पा नि ध री गम गा गा गा रि ग धम धा रिग मारी गा मा मा मा मा । धा धा नि ध नि ग नि ध नि ध सा सा नी धा पा ध नि री गा मा गा सा धा ध नि पा मा सा सा । मा गा गा मा मा मा मा मा । मा पम म गा धनि निध पाम प री गा गा गा गा मा मा सा सा । धा मा रि ग री म ग मा मा गा मा । नी धा पा ध नि री गा । री मा रि ग मा री गा मा मा सा सा इति ॥१४१॥

---

[1] धा [2] मा [3] विकृतांशमध्यमा [4] सा

(२१) षड्ज-ग्रह-पञ्चमांश-(मापन्यास-)विकृता यथा—

सा पा पा पा[1] (पा) निध पा ध निरीगम गा गा गा रि ग ध प धा रिग पा री गा पा पा पा पा धा धा नि ध निप नि ध पा सा सा। नी धा पा ध नि नी गा पा गा पा धा निध पा पा पा सा सा। पा पा गा पा सा मा मा मा मा प स म पा धनि नि ध पा म प री गा। गा गा गा गा मा मा सा सा। धा पा रि ग री स ग पा मा मा मा। धा नी पा ध नि री गा री पारि ग पारी गा पा पा सा सा इति ॥१४२॥

(२२) षड्ज-(ग्रह)-धैवतांश-मापन्यास-विकृता यथा—

सा धा[2] धा धा पा नि ध पा ध नि री ग म गा गा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा। धा धा नि ध नि ध नि ध पा सा सा। नीधा पा धनि नी धा धा धा। धा धा ध नि मा धा धा सा सा। धा धा गा धा सा सा मा मा। माप मप गा ध नि निध मा मम मरी गा। गा गा गा गा धा धा सा सा। धा धा रि ग री मग धा मा। मा मा धा नी गा धनि री गं[3] री धा रिग धारीगा धा धा सा सा इति ॥१४३॥

(२३) ग-ग्रह-सांश-मापन्यास-विकृता यथा—

गा सा सा सा पानिध मा ध निरी ग म गा गा सा रि ग ध

---

1 मा 2 सा 3 रा

स धारिग सा री गा सा सा सा सा। धा धा नि ध नि स प ध मा सा सा। नी धा पा ध नि री गा सा गा मा धा ध नि मा सा सा सा सा ॥ सा सा गा सा मा मा मा मा मा मा। मा प म म गा ध नि ध नि ध मा म परी गा। गा गा गा गा सा सा। सा सा धा मा रि ग री म ग सा सा सा मा मा। धा नी मा धनिरी गा री सा। रि ग सारी (ग) सा सा सा सा इति ॥१४४॥

(२४) ग-ग्रह[1]-गांश[2]-मापन्यास-विकृता यथा—

गा[3] गा गा गा मा नि ध मा ध नि। रीग म री गा धा रि ध ग ध ध ग गा रि ग धारी गा गा गा सा सा। मा मा नि ध नि ग नि ध मा मा सा। नी धा मा धा नि। री गा गा गा। धा[4] (गा) धा ध नि मा गा गा। गा धा ध नि मा गा गा सा सा। गा गा गा गा मा मा मा मा। धा प री म म ध नि धनि ध मा म प री गा गा गा गा गा गा गा सा सा। धा गा रि गा री म ग गा मा मा मा। धा नी गा ध नि री गा री गा। रि ग गा री गा गा गा[5] सा सा इति ॥१४५॥

---

(१४४) हस्तलिखित में यह स्वरलेख क्र० २४ का था, जिसको क्र० २३ का स्थान हमने दिया है।

---

1 मा 2 सांश 3 धा 4 गा 5 मा

(२५) ग-ग्रह-मध्यमांश-मापन्यास-विकृता यथा—

गा मा मा मा [ना] मा नि ध मा ध नि री ग म गा गा। मारिग धस धा रि ग मा री गा मा मा मा मा धा धा नि ध नि म नि ध सा सा सा सा। नी धा मा ध नि री गा मा गा। मा धा ध नि सा सा मा सा सा मा मा गा मा मा मा मा। मा प म म गा ध नि निध सा म प री गा गा गा गा मा पा सा सा। धा रि ग री म ग मा मा मा मा धा नी मा ध नि री गा री मा। रि ग मा री गा मा मा सा सा इति ॥१४६॥

(२६) ग-ग्रह-पञ्चमांश-मापन्यास-विकृता यथा—

गा पा पा पा मा धनि मा नि धरी गम गा गा पा रि गा ध ध प धा धा रि ग पा री गा पा पा पा पा धा धा नि ध नि प नि ध मा सा सा। नी धा मा ध नि री गा पा गा। पा धा धा नी मा पा सा सा सा। पा पा गा पा मा मा मा मा मा प म म गा ध नि निध माम प री गा। गा गा गा गा पा पा सा सा। धापारिग री म ग पा मा मा मा पा नी मा ध नि री गारी पा रि ग पा री गा पा पा सा सा इति ॥१४७॥

[ग-ग्रह-पञ्चमांश-मापन्यास-विकृता यथा—

गा पा पा पा मा ध नि मा नि ध री ग म गा गा पा रि गा ध ध प धा धारि ग पारी गा पा पा पा पा धा धा नि ध

नि प नि प ध मा सा सा । नी धा मा ध नि री गा पा गा । पा धा धा नि मा पा सा सा सा । पा पा गा पा मा मा मा मा पा प म म म गा ध नि नि ध मा म परी गा । गा गा गा गा पापा सा सा । धा पा रि ग री म ग पा मा मा मा पा नी मा ध नि री गा री पारिग पा री गा पा पा सा सा इति ॥१४८॥]

[प-ग्रह-धैवतांश-मापन्यास-विकृता यथा—

गा धा धा धा पा नि ध पा ध नि री री म गा गा धा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा धा नि ध नि ध नि ध मा सा सा सा । नी धा मा ध नि री धा गा गा धा गा। धा धा ध नि मा धा धा सा सा धा धा गा धा मा मा मा मा । मा प म म गा ध नि निध मा पम री गा । गा गा गा गा धा धा सा सा । धा धा रि ग ग री म ग धा धा मा मा धा नी पा ध नि री गा री धारिग धा धा सा सा इति ॥१४९॥]

(२७) ग-ग्रह-धैवतांश-मापन्यास-विकृता यथा—

गा धा धा धा पा नि ध पा ध नि री री म गा गा धा रिग ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा धा नि ध नि

(१४८) यह स्वरलेख क्र० २६ की पुनरुक्ति है। यह तथा अग्रिम स्वरलेख ह० लि० में प. २७ पर उपलब्ध है।

(१४९) उपरोक्त स्वरलेख क्र० २७ की पुनरावृत्ति है।

[1] मा

धनि ध मा सा सा सा। नी धा मा ध निरी धा गा गा धा गा। धा धा धनि मा धा धा सा सा धा धा गा धा मा मा मा मा॥ मा पम म गा ध नि नि ध मा प म री गा। गा गा गा गा मा पा सा सा। धारि ग री म ग मामा मामा धानी मा ध नि री गा री मा। रि ग मारी गा [1]धा धा सा सा इति ॥१५०॥

(२८) म-ग्रह-[2]सांश-मापन्यास-विकृता यथा—

मा [3]सा सा सा (पा) नि ध पा ध नि री ग म गा गा सा रि ग ध स धा धा। रि ग सा री सा सा सा सा सा धा धा नि ध नि स मा सा सा। नी धा पा ध नि री गा सा गा सा धा ध नि मा सा सा सा सा सा सा गा सा मा मा मा मा। मा प म म गा ध नि निध माम परीगा। गा गा गा गा सा सा सा धा सा रि ग री मप सा मा मा मा। धानी मा ध निरी गा [4]री सा रि ग सा री गा सा सा सा सा इति ॥१५१॥

(२९) म-ग्रह-[5]गांश-मापन्यास-विकृता यथा—

मा गा गा [6]गा नि ध मा ध नि। री ग म गारि ग ध ग धा नी मा ध नि री गारी [7]गा रिग गा री [8]गा गा गा सा सा इति ॥१५२॥

---

(१५२) यह स्वरलेख अपूर्ण है।

---

[1] मा मा [2] मांश [3] मा मा मा [4] सा गा
[5] मांश [6] मा [7] पा [8] मा

(३०) म-ग्रह-मांश-मापन्यास-विकृता यथा—

मा मा मा मा मा नि ध मा ध नि री ग म मा गा सा रिग ध ध धा। रि ग मा री गा मा मा मा मा। धा धा निध नि म नि ध मा सा सा नी धा मा ध नि नी गा मा गा। मा गा ध नि मा मा सा सा। मा पा गा मा मा मा मा। मा प म म पा ध नि नि ध मा म प री गा। गा गा गा गा मा सा सा धा मा रि ग री मामापामा धानी रि ग री मा रि ग मा री गा मामा सासा इति ॥१५३॥

(३१) म-ग्रह-पांश-मापन्यास-विकृता यथा—

मा पा पा (पा) मा नि ध माध नि री ग म गा पा पा रि गा धप धारिग पा री गा पा पा पा धा धा नि ध ध नि ध नि ध मा सा सा नी धा मा ध नि री गा पा गा। पा धा ध नि मा पा पा सा सा पा पा गा मा मा मा मा मा मा पम म गा ध नि नि ध मा म प री गा। गा गा गा गा पा पा सा सा। धा पा रि ग रीग म ग मा मा मा मा। धा नी मा ध नि री गा री पा री ग [पा] पा री गा पा पा सा सा इति ॥१५४॥

(३२) म-ग्रह-धांश-मापन्यास-विकृता यथा—

मा धा धा धा मा नि ध म ध निरी म म गा गा धा रि ग ध धा धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा धा नि ध नि ध नि ध नि नि ध मा सा सा नी धा मा ध नि री गा धा गा। धा धा ध नि मा धा धा सा सा। धा धा गा धा

मा मा मा सा पा पम मगा धनि निध माम परीगा। गा गा गा गा धा धा सा सा। धा धा रि ग री म ग धा धा मा मा मा। धा नी सा ध नि। रीगारि [1]धारि गा धा री गा धा धा सा सा इति ॥१५५॥

(३३) प-ग्रह-षड्जांश-मापन्यास-विकृता यथा—

पा सा सा सा मा नि ध मा ध नि री ग म गा गा सा रि ग ध स धारि ग सा री गा सा सा सा सा। धा धा नि ध नि सा नि ध मा सा सा नी धा मा धा निरी गा पा गा पा धा नि ध सा सा सा सा सा सा गा सा मा मा मा मा। माप म म गा ध नि नि ध मा म प री गा। गा गा गा सा सा सा सा। धा सा रि ग री ग म सा मा मा मा। धा नी मा ध नि री गारी [2]सा रि गा सा री गा सा सा सा सा ॥१५६॥

(३४) प-ग्रह-गांश-मापन्यास-विकृता यथा—

पा गा गा गा मा नि ध मा [मा] धनि। री ग म गा गा रि गा ध ग गारिग गा री गा गा गा गा गा। धा धा नि ध नि म नि ध पा सा सा नी धा मा ध नि री गा गा गा गा गा धा ध नि मा गा गा गा सा सा। गा गा गा। सा सा सा सा। मा प म म ग ध नि नि ध मा म प री गा। गा गा गा गा सा सा सा सा। धा गा रि ग री म गा गा मा मा मा धा नी मा ध नि री गा री गा। रि ग गा री गा गा गा सा सा ॥१५७॥

---

[1] ग [2] पा [3] मा

(३५) प-ग्रह-मांश-मापन्यास-विकृता यथा—

पा मा मा मा मा नि ध मा ध नि री ग म गा गा मा रि ग ध म धा रि गा मारी गा । मा मा मा मा । धा धा नि ध नि ध मा सा सा । नी धा मा ध नि री गा मा मा । मा मा ध नि मा मा मा सा सा सा । मा मा मा मा सा सा सा सा मा प म म गा ध नि ध पा म ध री गा । गा मा गा गा मा मा सा सा धा मा रि ग री म प मा नी मा मा धा (मारिग मारिग) मा (मा सा सा) ॥१५८॥

(३६) प-ग्रह-पांश-मापन्यास-विकृता यथा—

पा पा पा पा मा नि ध मा ध निरी ग म गा गा पा रि ग धप धा धा धा नि ध नि प नि ध मा सा सा । नी धा पा ध नि री गा ऽ पा धा ध नि री गा पा धा । पा धा ध नि मा पा पा पा सा सा । पा पा मा - - - - - पा मा मा मा मा मा मा प नि म गा ध नि नि ध मा म परी गा । गा गा गा गा पा पा सा सा । धा पा रि ग री ग पा पा पा मा मा धा नी मा ध नि री गा री पा[1]रि ग (पा रि ग) पा पा सा सा ॥१५९॥

(३७) प-ग्रह-धांश-मापन्यास-विकृता यथा—

पा धा धा धा मा नि ध मा ध नि री ग म धा धा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा । धा धा नि ध नि

---

[1] धा [2] गा रि प

ध नि ध नि ध मा सा सा । धा नी मा ध नि री गा धा पा धा धा ध नि मा धा धा धा सा सा सा । धा धा धा धा मा मा मा मा म म गा ध नि नि ध मा म प री गा । गा गा गा गा धा धा सा सा धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा। धा नी मा ध नि री गा री धा । रि ग धारी गा धा धा सा सा ॥१६०॥

(३८) ध-ग्रह-सांश-मापन्यास-विकृता यथा—

धा सा सा [ध] सा मा नि ध मा ध नि री ग म गा गा सारिग ध स धा रि ग सा री गा री गा सा सा सा सा धा धा नि ध नि स नि ध मा सा सा । नी धा पा ध नि री गा सा गा ऽ सा धा नि ध मा मा मा सा सा मा मा मा मा । मा प म म गा ध नि नि ध मा म । प री गा । गा गा गा गा सा सा सा सा । धा सा रि ग री म ग मा मा मा मा । धा नी मा ध नि री गा री सा । [1]रि ग सा री गा सा सा सा सा ॥१६१॥

(३९) ध-ग्रह-गां [रा] श-मापन्यास-विकृता यथा—

धा गा गा गा मा नि ध मा ध नि । री ग म गा गा रि ग ध ग धा । नि ग गा री गा गा गा गा ध धा नि धनि म नि ध मा सा सा । नी धा मा ध नि री गा गा गा गा धा ध नि मा गा गा सा सा । गा गा गा गा मा मा मा मा प म म गा ध नि नि ध माम परीगा । गा गा गा गा गा मा सा सा ।

---

[1] धि

धा गा रि ग री स ग गा मा मा मा । धा नी मा धनि री गा री गा । रि ग गा री गा गा गा सा सा ॥१६२॥

(४०) ध-ग्रह-मांश-मापन्यास-विकृता यथा—

धा मा मा मा मा नि ध मा ध नि री गा म गा गा मा रि ग ध म धा रि ग गा री गा मा मा मा मा धा धा नि ध नि स नि ध मा सा सा । नी धा मा ध निरी गा मा गा । मा धा ध नि मा मा मा सा सा । मा मा गा मा मा मा मा मा । मा प म म गा धनि नि ध मा म प री गा । मा मा मा मा मा मा सा सा । धा मा रिग री म ग मा मा मा मा धा नी मा धनि री गा री मा रि ग मा री गा मा मा सा सा ॥१६३॥

(४१) ध-ग्रह-पांश-मापन्यास-विकृता यथा—

धा पा पा पा मा धनि मा निध री ग म गा गा पा रि ग ध प धा । रि ग पा री गा पा पा पा पा । धा धा नि ध नि ध नि ध पा सा सा । सा धा सा ध नि गा गा पा गा । पा धा निध पा पा पा सा सा । पा पा गा गा । मा मा मा मा मा प म म गा धनि नि ध मा म प री गा । गा गा गा गा पा पा पा पा सा सा ऽ धा धा रिग रीस ग पा मा मा मा । धा नी मा धनि री गा री पा । रि ग पा री गा पा पा सा सा ॥१६४॥

(४२) ध-ग्रह-धांश-मापन्यास-विकृता यथा—

धा धा धा धा मा निध मा ध नि री गम गा गा गा रि ग धा ध धा रि ग धा री गा। धा धा धा धा। धा धा नि धनि धनि मा सा सा। नी धा मा ध नि री री गा धा गा धा धा नि ध मा धा धा सा सा। धनी धा मा ध नि री गा धा गा। धा धा निध मा धा धा सा सा। धा धा गा धा मा मा। माप म म गा ध नि निध माम प री गा। गा गा गा गा धा धा मा मा मा। धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा। धा मा मा ध नि री गा री धारिग धारीगा धा धा सा सा ॥१६५॥

(४३) स-ग्रह-सांश-षाडव-विकृता यथा—

सा सा सा सा पाग धा री गम गा सा रि म ध स धा रि ग सा री गा सा सा सा सा सा। धा धा ग ध ग ध ग ध पा सा सा। गा धा पा ध ग री गा सा गा। सा धा ध ग पा सा सा सा। सा सा सा गा सा मा मा मा। मा मप मगा धा गा ग ध पाम परीगा। गा गा गा गा। सा सा सा सा। धा सा रि ग री मग सा मा मा धा गा। पा ध ग री गे[1] री सां[2] रि ग सा री गा सा सा सा सा ॥१६६॥

(१६६) षाड्जी जाति में निषाद वर्ज्य किया जाता है, तब उसका षाडव रूप होता है। यह तथा आगे के स्वर-लेख षाड्जी के षाडव भेद के हैं, अतः उनमें निषाद स्वर नहीं है।

[1] सा [2] गा

द्वि—कः (?) एषा गान्धार-स्थाने निविष्टत्वा-(त्) षाड्ज्यां गान्धारांशे षाडवं नास्ति ॥१६७॥

(४४) शुद्ध-षाडवाऽपन्यास-म-कृता [षाडवा] यथा—

सा सा सा सा मा गध मा गध मा गध री ग म गा गा सा रि ग धस धा [नि] ग सा री गा। सा सा सा सा सा धा धा ग ध ग स ग ध मा सा सा। गा धा सा ध गरी सा गा। सा धा ध री मा सा सा सा सा मा सा सा गा मा मा मा मा मा। मा प मम गा ध म ग ध मा म परी गा। गा गा गा गा मा सा मा मा धा धा रि ग री म ग मा मा मा मा धा गा मा ध ग री गा री सा। रि ग सा री गँ[3] सा साँ[4] सा सा ॥१६८॥

---

(१६७) i. षाड्जी जाति का षाडव रूप निषाद वर्ज्य करने से बनता है। किन्तु उसमें जब गान्धार को अंश किया जाता है, तब निषाद उसका संवादी स्वर होने के कारण उसको वर्ज्य नहीं कर सकते। हर एक जाति में अंश के संवादी की उपस्थिति आवश्यक है, अतः कई जाति के षाडव-औडुव रूप बनाये जाने में अंश-संवादी के कारण बाधा आती है। इस परिस्थिति को षाडव-औडुव का अपवाद कहते हैं। इन अपवादों के समग्र उदाहरण नाट्यशास्त्र में प्रस्तुत है (**ना. शा.** २८।६६-७१)

ii. **ह० लि०** में उपरोक्त वाक्य खण्डित तथा भ्रष्ट है। इसमें—"गान्धारांशे षाडवं नास्ति।" ऐसा नियम कहा है, इसका अर्थ "गान्धार ग्रह तथा अंश दोनों होने पर षाडव भेद नहीं बन सकता" अर्थात् निषाद वर्ज्य नहीं हो सकता, ऐसा लेना ठीक रहेगा।

---

[1] स्थान [2] षड् [3] मा [4] मा मा मा

(४५) मं[1]-ग्रह-मांश[2]-षाडवा विकृता यथा—

मा मा मा मा पा ग ध पा ध गा री ग म गा गा मा रि ग ध ग मारिग मा री गा मा मा मा मा। धा धा ध ग स ग ध सा सा सा। गा धा पा ध ग री गा मा गा सा ध ग पा मा मा सा सा मा धा मा मा। मा मा मा मा। मा प म मा ध ग ग ध म प री गा गा गा गा गा मा मा सा मा धा मा रि ग ग री म ग मा मा मा मा। धा गा प। ध गरी गा री मा। रिग मारीगा मा मा साँ[3] सा ॥१६९॥

(४६) प-ग्रह-पांश[4]-षाडवाँ[5] यथा—

पा पा पा पा पा ग ध पा ध ग री ग म गा गा पा रि ग ध प धा रि पा री गा पा पा पा पा। धा धा री ध ग प ग ध पा सा सा। गा धा पा ध ग री गा पा गा। पा धा ग ध पा पा पा पा सा सा पा पा गा पा मा मा मा मा मा प म म ध ग ग ध पा म ध री गा। गा गा पा पा सा सा। पा ग रि ग री म ग पा मा मा मा। धा गा पा ध गरी गा री पा रि गा (पा रि गा) पा पा सा सा ॥१७०॥

(४७) ध-ग्रह-धांशं[6]-षाडवा यथा—

धा धा धा धा पा ग ध ग। री ग म गा गा धा रि ग ध ध धा रि गा। धा धा धा धा ग ध ग ध ग ध पा सा सा। गा धा पा ध ग पा धा धा गा धा मा मा मा मा मा

---

[1] मा [2] सां स [3] मा मा [4] पांश [5] वो [6] शः

प स सा गा ध म पा म प री गा । गा गा गा गा धा धा सा सा । धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा धा गा पा ध ग ग री गा री धा रि ग धारी गा धा धा सा सा ॥१७१॥

(४८) ग-ग्रह-सांश-विकृता षाडवा यथा—

गा सा सा सा पा ग ध पा ध ग री ग म गा गा सा रि ग ध स धा रि ग सा री गा सा सा सा सा धा धा ग ध ग स ग ध पा सा सा । गा धा पा ध ग री गा सा सा सा । सा धा ध ग पा सा सा सा सा । सा सा गा सा मा मा मा मा । माप म म गा ध ग पा म प री गा । गा गा गा गा सा सा सा । धा स रि ग री म ग मा मा मा मा । धा गा पा ध (री) ग री सां[1] रि ग सा री गा सा सा सा सा ॥१७२॥

(४९) म-ग्रह-सांश[2]-षाडवा यथा—

मा सा सा सा पा ग ध पा ध ग री ग म गा गा सा रि ग ध स सां[3] रि ग सा री गा सा सा सा सा ॥१७२॥

(५०) प-ग्रह-सांश-षाडवा यथा—

पा सा सा सां[4] प ग पा ध ग री री सा री । सा धा ध ग पा सा सा मा गा सा मा मा मा मा । मा प म म मा ध ग ग ध पा ग प री गा । गा गा गा गा सा सा सा सा । धा

(१७२) प्रस्तार क्र. ४९ खण्डित अतएव अपूर्ण है ।

1 गा 2 मांग 3 धा 4 मा

सा रि ग री म ग सा सा मा मा । धा गा पा ध ग री । गा री सारिग सारीगा सा सा सा सा ॥१७३॥

[प-ग्रह-सांश-षाडवा यथा—

पा सा सा मा प ग पा ध ग री ग म मा गा सा रि ग ध ध धा रि ग सा री गा सा सा सा । धा धा ग ध ग स ग ध पा सा सा । गा धा पा ध ध री गा सा गा । सा धा ध ग सा सा सा सा गा । सा सा गा सा मा मा मा मा । मा प म गा ध ग ग ध मा म प री गा । गा गा गा गा सा सा सा सा । धा सा रि ग री म ग सा मा मा । धा गा पा ध ग री गा री सारिग सा री गा सा सा सा सा सा ॥१७४॥]

(५१) ध-ग्रह-सांश-षाडवा यथा—

धा सा सा साँ ग ध पा ध ग । री ग म गा गा सा रि ग ध सा धा रि ग सा री गा सा सा सा सा सा धा धा ग ध ग स ग ध पा सा सा । गा धा प ध ग री गा सा गा । सा धा ध ग पा सा सा सा सा । सा सा गा सा । मा मा मा मा । मा प म म गा ध ग ग ध पा म प री गा । गा मा गा गा । सा सा सा सा । धा सा रि ग री म ग सा मा मा धा पा धम री गा री सारिग सा री गा सा सा सा (सा) ॥१७५॥

स्प.:—(१७४) यह स्वरलेख क्र. ५० की पुनरुक्ति है।

---

[1] शः [2] पा

(५२) स-ग्रह-गांश-षाडवा यथा—

सा गा गा गा[1] ग ध पा ध ग। री ग म गा गा री ग ध गा धा रि ग मा री मा गा गा गा धा धा री ध ग ध। पा सा सा गा धा ध ग पा सा सा गा गा गा गा मा मा मा मा प म म गा ध ग पा म ध री गा गा गा गा गा गा सा सा। ध गा रि ग री म ग मा मा मा पा धा गा पा ध ग री गा री गा री गा। रिग गा[2] री गा गा गा सा सा ॥१७६॥

(५३) स-ग्रह-मांश-षाडवा यथा—

सा मा मा मा पा ग ध पा ध म री ग म गा गा मा रि ग ध म धा रि ग मा री गा मा मा मा मा मा। धा धा ग ध ग स ग स पा सा सा। गा धा पा धग ग री गा। पा गा। मा धा पा ध ग ग री गा। पा गा। मा धा ध ग मा मा मा सा सा सा। मा प म म म गा ध म म ध पा म प री गा। गा गा गा गा मा सा सा सा सा। धा मा रि ग ग री म ग री म ग मा मा मा मा। गा धा पा ध ग री गा री मा[3]। रि ग मा[4] (री) गा मा मा सा[5] सा ॥१७७॥

---

(१७६) जाति–प्रकार क्र. ५२, ५६, ५९ तथा ६२ के अंश स्वर गान्धार होते हुए भी, षाडव हैं। इनमें अंश स्वर से ग्रह स्वर भिन्न हैं, फलस्वरूप ये भेद विकृत हैं, इस कारण प्रतीत होता है कि, गान्धार अंश होने पर भी इनके षाडवरूप का अपवाद नहीं हुआ।

---

[1] पा [2] मा [3] गा [4] सा [5] मा

(५४) स-ग्रह-पांश-षाडवा यथा—

सा पा पा पा ग ध पा ध ग री म । गा गा पा रि ग ध । प धा रि ग पा री गा । पा पा पा धा धा ग ध ग ध ग ध पा सा सा सा । गा धा पा ध गरी गा पा गा । पा धा ध ग पा पा सा सा । पा पा गा धा मा मा मा मा । सा पा म म गा ध ग ग ध पा म प री गा गा गा गा गा पा पा सा सा । धा पा रि ग री म ग पा मा मा मा मा । धा गा पा ध ग री गा री पा रि ग पा री गा पा पा सा सा ॥१७८॥

(५५) स-ग्रह-धांश-षाडवा यथा—

सा धा धा धा ग ध पा ध ध ग री ग म गा गा धा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा धा । धा धा ग ध ग ध पा सा सा । गा धा पा ध ग री गा धा गा । धा धा ग ध पा पा पा सा सा । धा धा गा धा मा मा मा मा मा प म म म गा ध ग ध ग पा म प री गा । गा गा गा गा गा धा धा सा सा । धा धा रि ग री म ग धा मा मा । धा धा पा ध पा ध प री गा री धा । रि ग धा री गा धा धा सा सा ॥१७९॥

(५६) ग-ग्रह-मांश-षाडवा यथा—

गा मा मा मा मा पा ध ग ध पा ध ग । री ग म गा मा रि ग ध म धा रि ग मा री गा । मा मा मा मा । धा धा ग ध ग म ग ध पा सा सा । गा पा पा ध ग री गा मा

---

[1] पा

गा । मा धा ध ग । पा मा सा सा सा सा । मा मा गा मा
मा मा मा मा प म म गा ध ग ग ध पा म प री गा । गा
गा गा गा मा मा सा सा । धा मा रि ग री म ग मा मा मा
मा । धा गा धा ध ग री गा री मा रि ग मा री गा मा मा
सा सा ॥१८०॥

(५७) ग-ग्रह-पांश-षाडवा यथा—

गा पा पा (पा) ग ध पा ध ग । री ग म गा मा रि ग
ध प धा रि ग पा री गा पा पा पा धा धा ग ध ग प ग ध
पा सा सा । गा धा पा ध री गा पा गा । पा धा ध ग पा
पा सा सा सा । पा पा गा पा मा मा मा मा । मा प म म
गा ध ग ग ध पा म प री गा गा गा गा पा पा सा सा । धा
पा रि ग री म ग पा सा मा मा धा गा पा ध ग री गा री गा
री पा रि ग पा[1] री गँ[2] पा पा सा सा ॥१८१॥

(५८) गँ[3]-ग्रह-धांश-षाडवा यथा—

गाँ[4] धा धा धा पा ग ध पा ध री ग म गा मा धा रि ग
ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा धा ग ध पा सा
सा । गा धा पा ध ग रीगा धारी । धा धा ध ग पा पा सा
सा धा गा धा मा मा मा मा मा प मम गा ध ग ग ध मा म
प री गा । गा गा गा गा धा धा सा सा । धा धा रि ग री

(१८०) इसके पूर्व के ग-ग्रह-सांश-षाडवा का प्रस्तार ह० लि० में अनुपलब्ध है।

1 धा 2 मा 3 प 4 पा

म ग धा मा मा मा । धा गा पा ध ग री गा री धा रि गा ।
धा री गा धा धा सा सा ॥१८२॥

(५९) म-ग्रह-गांश-षाडवा यथा—

मा गा गा गा प ग ध पा री धा री म ग गा गा गा रि
ग ध ग धा रि ग पा री गा गा गा गा गा धा धा ग ध ग ध
पा सा सा धा पा ध ग री गा । गा गा गा । गा धा ध नी
ग धा पा सा सा । गा गा गा गा । मा मा मा मा । मा प
म म म गा ध म ग ध पा म प री गा । गा गा गा गा गा
सा सा । धा गा रि ग री म ग गा मा मा । धा गा पा ध
ग री गा री गा । रि ग गा री गा गा (गा) सा सा ॥१८३॥

(६०) म-ग्रह-पांश-षाडवा यथा—

मा पा पा पा पा ग ध पा ध ग री ग म गा पा रि ग ध
ध धा रि ग पा री गा पा पा पा । धा धा ग ध ग ध ग ध
पा सा सा । गा धा पा ध ग री गा पा गा धा पा ध ग पा
पा सा सा सा । पा पा पा गा पा मा मा मा मा मा प म म
गा ध ग पा धा । धा सा सा । धा धा गा धा मा मा मा
मा । मा प म म गा ध ग ग ध पा म प री गा गा गा गा
पा सा सा धा पा रि ग री प ग पा मा मा मा । धा गा पा
धा ग री गा री पा रि ग पा री गा पा पा सा सा ॥१८४॥

---

[1] धा

(६१) म-ग्रह-धांश-षाडवा [ड वा] यथा—

मा धा धा धा पा ग ध पा ध ग । री री म गा गा धा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा । धा धा धा धा । धा धा ग ध पा सा सा सा । सा धा पा ध ग री गा धा गा ध ग पा धा धा सा सा । धा धा गा धा मा मा मा मा । माप मम गा ध ग पा म प री गा । गा गा गा धा धा सा सा । धा धा रि ग री म ग री म ग धा मा मा मा । धा गा पा ध ग री गा री धा रि ग धा री गा धा धा सा सा ॥१८५॥

(६२) प-ग्रह-गांश-षाडवा यथा—

पा गा गा गा पा ग ध पा ध ग गा री गा म गा गा रि गा रि ग ध ग धा रि ग धा री गा गा गा गा । धा धा ग ध ग ग ग ध पा सा सा । गा धा पा ध ग री गा गा गा गा गा धा [त] पा गा गा गा सा सा । गा गा गा गा मा मा मा मा मा पम म गा ध ग ग ध पा म प री गा । गा गा गा गा गा गा सा सा । धा मा रि ग ग री म ग गा मा मा मा । धा गा पा ध ग री गा (री गा री ग गा रि ग) गा[1] गा ॥१८६॥

(६३) प[2]-ग्रह-मांश-षाडवा यथा—

पा मा मा मा पा ग ध पा ध ग री ग म गा । गा पा रि ग ध मा धा री ग म गा गा मा रि ग ध म धा रि ग मा री

---

[1] सा सा [2] ग

गा मा मा मा मा। धा धा ग ध ग म ध पा सा सा। धा धा गा धा पा ध ग री गा सा गा। मा धा [व] ग पा मा मा सा सा। सा सा गा सा मा मा मा मा। मा प म म गा ध री ग ध पा म प री गा। गा गा गा गा। सा सा सा सा। धा मा रि ग री म ग मा मा मा मा धा गा पा ध ग री गा री मा रि ग मा री गा मा मा सा सा ॥१८७॥

(६४) प-ग्रह-धांश-षाडवा यथा—

पा धा धा (धा) पा ग ध पा ध ग री ग म गा गा धा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा। ग ध ग ध ग ध धा सा सा सा। गा धा पा ध ग री गा धा गा धा धा ग ध पा धा धा सा सा। धा धा गा धा मा मा मा मा। मा प म म गा ध ग [त] ध मा म प री गा। गा गा गा गा गा गा धा धा सा सा। धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा धा पा ग ध री गारी धा रि ग धा री गा धा धा सा सा ॥१८८॥

(६५) धं[2]-ग्रह-गां[3]श-षाडवा यथा—

धा गा गा गां[4] पा ग ध पा ध ग री ग म गा गा गा रि ग ध ग धा रि ग धा री गा गा मा गा गा गा। धा धा ग ध ग म ग ध पा सा सा। गा धा धा ध ग री गा गा गा गा धा ध प पा गा गा सा सा गा गा गा गा मा मा मा

---

1 सा सा 2 प ध ग्रह 3 मांश 4 मा

मा प म म गा ध ग ग ध पा म री गा। गा गा गा गा गा सा। धा गा रि गा री म ग गा मा मा मा मा। धा धा पा ग ध री गा मा गा रि ग गा री गा गा गा सा सा ॥१८९॥

(६६) ध-ग्रह-मांश-षाडवा यथा—

धा मा मा मा पा री ध पा ध ग री ग म गा गा मा रि ग ध म धा रि ग धा रि ग मा री गा मा मा मा मा। धा धा ग ध ग ध ध सा सा। गा धा पा ग ध री गा मा गा। मा धा मा ध ग पा मा मा सा सा मा मा मा। मा मा मा मा मा मा मा प म म गा ध ग ध ग पा म प री गा। गा गा गा गा मा मा मा मा। धा मा रि ग री म ग मा मा मा मा। धा गा पा ध ग री गा मा। रि गा मा री गा [पा] मा मा सा सा ॥१९०॥

(६७) ध-ग्रह-पांश-षाडवा यथा—

धा पा पा पा प ध पा ध ग री ग म गा गा पा रि गा ध प धा। रि ग पा री गा पा पा-------धा धा ग ध ग ध ग ध पा सा सा। गा धा पा ग ध ग री गा पा गा। पा धा ध ग पा पा पा सा सा। पा पा गा पा मा मा मा मा प म म। गा ध ग ध ग पा म प री गा। गा गा गा गा पा पा। धा पा रि गा री म ग पा मा मा धा मा पा ध ग री गा री पा रि ग पा री (ग) पा पा सा सा ॥१९१॥

---

1 म 2 गा

(६८) स-ग्रह-गांश-मापन्यास विकृता षाडवा यथा—

सा गा गा (गा) पा ग ध पा ध ग री ग म मा गा गा रि ग गारि गारी गा गा गा गा। धा धा ग ध ग ग ग ध पा सा सा गा धा पा ध ध री पा गा पा। धा धा ध ग पा पा पा सा सा गा गा गा गा गा मा मा मा। मा पम म गा ध ग ध ग पा म री गा। गा गा गा गा गा गा सा सा। धा गा रि ग री म ग गा मा मा धा गा मा ध म री गा रि ग गा री (गा गा) गा सा सा ॥१९२॥

(६९) स-ग्रह-मांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

सा मा मा मा मा ग ध ध ग ग धा री ग म गा गा मा रि ग ध म धा रि ग मा री मा मा मा मा। धा धा ग ध ग म ग ग मा सा सा। गा धा मा ग ध री गा मा। मा धा ध ग मा मा सा सा। मा मा मा मा मा मा मा मा। मा प म म गा ध ग ग ध मा स प री गा। गा गा गा गा मा मा सा सा धा सा रि ग री म ग मा मा मा मा। धा गा मा। धा गा मा ग री मा रि ग मा री गा मा मा सा सा ॥१९३॥

(७०) स[1]-ग्रह-पांश[2]-मापन्यास-षाडवा यथा—

सा[3] पा पा पा मा ग ध मा ध ग ध मा ध ग री ग म गा गा पा रि ग ध प धा रि ग पा री गा पा पा पा पा धा धा ग ध पा सा सा। गा धा मा ध ग री मा पा गा पा धा ध गा

[1] म [2] मां [3] मा

मा पा पा सा सा। पा पा गा पा। मा मा मा मा मा प म गा ध ग ग ध मा म प री गा गा गा गा गा। पा पा सा सा। धा पा रि ग री म ग पा मा मा मा। धा गा पा ध ग री गा री (पा री गा) पा री गा पा पा सा सा ॥१९४॥

(७१) स-ग्रह-धांश-मापन्यास-वि-(कृता) षाडवा यथा——

सा धा धा धा मा ग ध मा ग ध मा ध ग री ग म गा गा धा रि गा ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा धा ग ध ग ध ग ध मा सा सा। गा धा मा ग ध री गा री धा गा धा धा ध री मा पा पा पा सा सा। धा धा गा धा मा मा मा मा। मा प मा म गा ध ग ग ध मा म प री गा। गा गा गा गा गा (धा री गा धा री गा) धा धा सा सा ॥१९५॥

(७२) ग-ग्रह-स[1]ांश-मापन्यास-षाडवा यथा——

गा सा सा सा मा ग ध मा ध ग री ग म गा गा सा रि ग ध स धा रिग सा गा गा सा सा सा सा। धा धा ग ध ग स ग ध मा सा सा गा धा मा ध ग री गा सा गा। मा धा ध ग मा सा सा सा। सा सा गा सा मा मा मा मा मा प म म गा ध ग ध मा म म गा ध ग ध मा म प री गा। गा गा गा गा सा सा मा सा धा मा रि ग री म ग मा मा सा मा। धा ग मा ध ग री गा री सा री ग सा री गा। सा सा सा सा ॥१९६॥

---

[1] मां

(७३) ग-ग्रह-[1]मांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

गा मा मा मा मा ग ध सा ध ग री ग म गा गा मा रि ग ध स धा रि ग मा री गा मा मा मा मा मा। धा धा ग ध म ग ध मा सा सा गा धा मा ध गा मा धा ध ग मा मा मा सा सा। गा गा गा गा मा मा मा मा। मा प म मा गा ध ग पाम प री गा गा गा गा गा मा मा सा सा धा मा स ग री म ग मा मा मा सा। धा मा मा ध म री गा [2]री [3]मां। रि ग मा री गा मा मा सा सा ॥१९७॥

(७४) ग-ग्रह-[4]पांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

गा पा पा पा मा ग ध मा ध ग री ग म मा गा पा रि ग ध प धा रि म पा री गा पा पा। धा धा ध ग ग ग ध ग ध पा सा सा धा मा मा ध ग री गा पा गा। पा धा ध ग पा पा सा सा। पा पा गा पा मा मा मा। मा प म गा ध गगध पा म प री गा गा गा गा गा पा पा सा सा। धा पा रि ग री म ग पा मा मा मा धा ग पा ध ग री गा री पा रि ग पा री गा पा पा सा सा ॥१९८॥

(७५) ग-ग्रह-धांश-मापन्यासा यथा—

गा धा धा धा मा ध ग मा ध ग गा धा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा धा ग ध ग ध मा मा मा। गा

(१९८) ७४–७५ स्वरलेखों का क्रम ह० लि० में विपर्यस्त दिया है।

1 सां 2 मा 3 गा 4 मांश

धा मा ध ग री गा धा गा धा धा ध ग मा धा धा धा सा
सा । गा धा धा गा धा मा मा मा मा । पा प म म गा ध
ग ध ग पा म प री गा । गा गा गा गा गा धा धा सा सा ।
धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा धा गा मा ध ग री गा
री गा री धा रि ग धा री गा धा धा सा सा [सा] ॥१९९॥

(७६) म[1]-ग्रह सां[2]श-मा[3]पन्यास-षाडवा यथा—

मा सा सा[4] सा मा ग ध मा ग ध री ग म ग गा गा मा
रि ग ध स धा धा रि ग सा री गा सा सा सा सा । सा ।
धा धा ग ध ग स ग ध पा सा सा । गा धा मा ध ग री
गा सा सा । सा धा ध ग मा मा सा मा मा । सा सा गा
सा मा मा मा मा । मा प म म गा ध ग ग ध मा मा म
प री गा । गा गा गा गा सा सा सा सा । धा सा रि ग री
म ग सा मा मा मा मा । धा गा मा ध ग ध री गा री सा ।
रि ग सा[5] री गा सा सा सा सा ॥२००॥

(७७) म[6]-ग्रह-गांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

मा गा गा गा मा ग ध मा ध ग री ग म गा गा मा रि
ग म ग धा रि गा सा री गा गा गा गा गा । धा धा ग ध
ग ग ग ध मा सा सा । गा धा मा धा ग री गा मा गा ।
गा धा धग मा गा गा गा गा सः मा । मा प म म गा ध
ग री ध म प री गा । गा गा गा गा गा सा सा धा गा रि ग

---

[1] ग [2] मां [3] पा [4] मा [5] मा [6] ग

री म ग गा मा मा धा गा मा ध ग री गा री गा रि ग गा री गा गा गा सा सा ॥२०१॥

(७८) म-ग्रह-पांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

मा पा पा पा मा ग ध ग री ग म गा गा सा रि ग ध प धा रि ग गा री गा पा पा पा पा। धा धा ग ध ग ध मा सा मा। गा धा मा ध ग री गा पा गा पा धा ध ग पा पा पा सा सा। पा पा गा पा मा मा मा मा मा मा। प म म गा ध ग ग ध ग ध मा म प री गा गा गा गा पा पा सा सा धा पा रि ग री म ग पा मा मा मा। धा गा पा ध ग री गा पा रि ग पा री गा पा पा सा सा ॥२०२॥

(७९) म-ग्रह-धांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

मा धा धा धा मा ग ध ग मा म ध री ग म गा गा धा रि ग ध ध धा रि ग धा री गा धा धा धा धा ग ध ग ध मा सा सा। गा धा मा ध ग री गा धा गा धा धा ध ग मा धा धा धा सा सा। धा धा गा धा मा मा मा। मा प म म गा ध ग ध ग मा म प री गा गा गा गा। धा धा सा सा धा धा सा सा धा धा रि ग री म ग धा मा मा धा गा मा धा गा री गा री धा रि ग धा री गा धा धा सा सा ॥२०३॥

(८०) प-ग्रह-सांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

पा सा सा सा सा ग धा मा ध ग री ग म गा गा मा रि

---

1 मा 2 धा

ग ध म धा रि ग सा । री गा सा सा सा सा । धा धा ग ध ग स ग ध मा मा मा । गा धा मा मा ध ग री गा सा गा धा सा ध ध म मा सा सा सा सा गा सा गा सा मा मा मा । मा प म म म गा ध ग मा म प री गा । गा गा गा गा गा सा सा सा सा धा सा रि ग री म ग सा सा मा मा । धा गा मा ध ग ध री गा री [मा] सा रि ग सा री गा सा सा सा सा ॥२०४॥

(८१) प-ग्रह-गांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

पा गा गा गा मा ग ध मा ध ग री ग म गा गा रि ग ध ग धा रि ग गा री मा गा गा गा । धा धा धा ध ग ग ग ध मा मा मा गा धा मा ध ग री गा गा गा ध गा धा ध ग मा गा गा सा सा । गा गा मा मा मा । मा प म म गा ध ग ग ध मा प म री गा गा गा गा गा सा सा । धा गा रि ग री म ग गा मा मा मा मा । धा गा मा म ध री गा री गा । रि ग गा री गा गा गा सा सा ॥२०५॥

(८२) पं[2]-ग्रह-मां[3]श-मापन्यास-षाडवा यथा—

पां[4] मा मा मा मा ग ध ध ग री गा री ग मा मा मा मा रि ग धम धारिग मा री गा मा मा मा मा । धा धा ग ध म ग ग ध मा सा सा । गा धा मा ध ग री गा मा गा । मा धा ध ग मा मा मा मा मा मा । मा मा मा मा मा मा सा

---

[1] धा [2] ग [3] मांत [4] मा

मा मा प म म गा ध गा ग ध मा म प री गा। गा गा गा गा गा। मा मा सा मा। धा गा रि ग री म ग मा मा मा मा। धा गा मा ध ग री गा री मा रि ग मा री गा मा मा सा सा ॥२०६॥

(८३) प-ग्रह-धांश-मापन्यास-षाडवा यथा—

पा धा धा धा[1] मा ग ध मा ध ग री ग म गा गा धा रि ग ध म धा रि ग धा री गा। धा धा धा धा धा धा ग ध ग ध ग ध पा सा सा। धा पा ध ग री गा धा धा ग ध ग ध मा धा धा सा सा। धा धा गा धा मा मा मा मा मा मा प म म मा ध ग ग ध मा म प री गा गा गा गा धा धा सा सा। धा धा रि ग री म ग धा मा मा मा। धा गा मा ध ग री गा री (धा री गा) धा रि गा धा धा सा सा ॥२०७॥

(८४) (ध-)ग्रह-सांश[2]-मापन्या(स-)षाडवा यथा—

धा सा[3] सा सा मा ग ध मा ध ग री ग म गा गा सा रि ग ध ध धा रि ग सा री गा सा सा सा सा धा धा ग ध ग स ग ध मा मा। मा धा मा ध ग री गा। सा सा। सा धा ध ग सा सा सा सा सा सा। गा सा मा मा मा मा। मा प म म गा ध ग ग ध मा म प री गा। गा गा गा मा सा सा सा। धा सा रि ग री म म सा मा मा मा। धा गा मा ध ग री गा री सा रि ग सा री गा सा सा सा सा ॥२०८॥

---

[1] मा [2] शांसांश [3] मा मा मा

(८५) (ध-) ग्रह-गांश[1]-मापन्यास-षाडवा यथा—

धा गा गा गा मा ग ध मा ध ग री ग म गा गा रि ग ध ग धा रि ग गा री गा सा सा सा सा। धा धा ग ध ग ग ग ध मा सा सा। गा धा मा ध ग री गा गा गा। गा धा ध ग गा गा गा सा सा। गा गा गा गा। मा मा मा मा। मा प म गा ध ग मा म प री गा। गा गा गा गा सा सा। धा गा रि ग री म ग मा मा मा मा। धा ग मा ध ग री गा री गा रि गा[2] गा री गा गा गा सा सा ॥२०९॥

(८६) ध-ग्र-(ह-)मांश मापन्या-(स-)षाडवा यथा—

धा मा[3] मा मा गा ग ध ध ग री ग री ग म गा गा मा रि ग म गा गा मा रि ग म धा धा रि ग मा री गा मा मा मा। धा ध ग ध ग म ग ध मा सा सा। गा धा मा ध ग री गा मा गा। मा धा ध ग मा मा मा सा सा। मा मा गा मा सा सा सा। मा प म गा ध ग ध ग मा म प री गा। गा गा गा गा मा मा सा सा। धा मा रि ग री म ग मा मा मा मा। धा गा मा ग ध री गा री मा। रि ग मा री गा मा मा सा सा ॥२१०॥

(८७) ध-ग्रह-पांश-मापन्यास-षाडव-विकृता यथा—

धा पा पा पा री गा री पा रि ग पा री गा पा पा। मा ग ध मा ध ग री ग म मा गा गा पा रि ग ध प धा रि ग पा

---

[1] शांश [2] म मा [3] धा

री गा पा पा पा पा धा धा ग ध गा ग ध मा मा । गा धा मा ध ग री गा पा गा पा धा ध ग मा पा मा मा । पा पा गा पा मा मा मा मा । मा प म म गा ध ग मा मा प री गा । गा गा गा गा पा सा सा । धा पा रि ग री म ग पा मा मा । धा गा धा गा मा ध ग री गा री पा[1] । रि ग पा री गा पा पा सा सा[2] ॥ इति शुद्ध-विकृत[3]-भेदे च षा[4]ड्जी जा[5]तिः समाप्ता ॥२११॥

इति षाड्जी-भेद-वर्णनं प्रकरणं समाप्तम् ॥

(१२२–२११) A: षाड्जी के स्वरलेख के प्रत्येक भेद के प्रारम्भ में स्वरलेख के प्रकार के विषय में ग्रंथकर्ता द्वारा सूचना प्रस्तुत है, परन्तु स्वरलेख के स्वरूप के साथ कई स्थान पर ये सूचनाएँ मेल नहीं रखती हैं, अतः सूचनाएँ लिखने में गड़बड़ी हुई है। यह समझकर स्वरलेख के स्वरूप के अनुसार इन सूचनाओं को हमने परिवर्तित किया है, जिनका मूल स्वरूप निम्नतम कोष्ठ में देखने से ज्ञात हो सकेगा। स्वरलेख के प्रारम्भ की तथा अन्तिम अंश की परीक्षा करके स्वरलेख का स्वरूप हमने निश्चित किया है।

B : षाड्जी के शुद्ध तथा विकृत भेदों के प्रस्तारों के स्वरचलन निम्नोक्त नियमों के अनुसार बनाये गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है :—

(१) प्रस्तार के प्रारम्भ में जाति के विशिष्ट भेद का ग्रह-स्वर एक बार आता है।

(२) उसके पश्चात् जाति के विशिष्ट भेद के अंशस्वर का त्रिवार उच्चारण होता है।

(३) अन्तिम विभाग में अंशस्वरसहित 'रिग' स्वरसमूह दो बार आता है;

(४) उसके पश्चात् अंशस्वर का दो बार उच्चारण।

(५) तदनन्तर अन्त में न्यास स्वर अर्थात् जो वास्तव में अंशस्वर ही है, द्विवार लिया जाता है। उदाहरणार्थ :—

---

[1] या [2] रा [3] ति [4] ष [5] ति

C : षाड्जी के सं-ग्रह-मांश-विकृत भेद के प्रारम्भिक तथा अन्तिम स्वरसमूहों की योजना इस प्रकार होती है :—

(१) प्रारम्भिक ग्रह स्वर :—' सा ', एक बार।

(२) उसके पश्चात् अंशस्वर मध्यम का त्रिवार उच्चारण :—' मा मा मा '।

(३) अन्तिम पङ्क्ति के अंशस्वरसहित ' रिग ' स्वरों का दुबारा उच्चारण :– ' मारिग, मारिग '।

(४) तदनन्तर द्विरुच्चारित अंशस्वर :—' मा मा ' और

(५) अन्त में दो बार न्यास स्वर लिया जाता है, जो अंश ही होता है और कई प्रकारों में ग्रह भी होता है :—' सा सा '।

इस योजना के अनुसार इस भेद के प्रस्तार के प्रारम्भिक स्वरसमुदाय :— ' सा मा मा मा ' तथा अन्तिम स्वरसमुदाय :—' मारिग, मारिग मा मा सा सा ' इस प्रकार प्रयुक्त होते हैं।

इसी प्रकार षड्ज ग्रह तथा पञ्चम अंश स्वर होने पर प्रारम्भिक स्वरसमुदाय– ' सा पा पा पा ' तथा अन्तिम अंश ' पारिग, पारिग, पा पा सा सा ' इस प्रकार होते हैं। पञ्चम ग्रह तथा गान्धार अंश हो, तो ' पा गा गा गा ' इत्यादि के अनुसार प्रस्तार का रूप परिवर्तित होगा।

D : **नान्यदेव** द्वारा प्रस्तुत प्रस्तारों में स्वरों के तार-मन्द्र चिन्हों का अभाव है, तथा जो चिन्ह निर्दिष्ट हैं, वे कई स्थानों पर समुचित नहीं हैं।

E : इन प्रस्तारों में स्वराक्षरों के नीचे – अथवा ‿ ऐसा चिन्ह कई स्थानों पर प्रस्तुत है, वह अर्धमात्रिक चिन्ह है। कई स्थानों पर वह निरर्थक प्रतीत होता है।

F : प्रस्तारों के प्रारम्भिक तथा अन्तिम अंश छोडकर मध्य के अंश हमने जैसे–के–वैसे ही रहने दिये हैं।

G : कतिपय प्रस्तार पुनरुक्त प्रतीत हुए, उनको क्रमाङ्क नहीं देते हुए [ ] इस प्रकार कौंस में डाल दिये हैं।

H : उपरोक्त प्रस्तार क्र. (४) को **ह० लि०** में क्र. ९ दिया हुआ है। इस विषय में **ह० लि०** के क्रमाङ्कों में पुनरुक्ति तथा गड़बड़ी भी है। **ह० लि०** में दिये हुए क्रमाङ्क हमने प्रत्येक प्रस्तार के अन्त में कौंस में डाले हैं।

I : इस प्रकार **ह० लि०** से कुल ८७ भेद ही उपलब्ध होते हैं।

J : षाड्जी के पंचानबे भेदों की गणना का ब्योरा नीचे दे रहे हैं :—

(A) संपूर्ण अंशविकृत = ४

ग्रह		अंश
स	—	ग
स	—	म
स	—	प
स	—	ध

(B) संपूर्ण ग्रहविकृत = ४

ग्रह		अंश
ग	—	स
म	—	स
प	—	स
ध	—	स

(C) संपूर्ण ग्रहांशविकृत = १६

ग्रह		अंश
ग	—	ग
म	—	म
प	—	प
ध	—	ध
ग	—	म
ग	—	प
ग	—	ध
म	—	ग
म	—	प
म	—	ध
प	—	ग
प	—	म
प	—	ध
ध	—	ग
ध	—	म
ध	—	प

कुल —— २४

(D) संपूर्ण मापन्यास विकृत = २४

ग्रह		अंश
(स	—	स)
स	—	ग
स	—	म
स	—	प
स	—	ध
ग	—	स
ग	—	ग
ग	—	म
ग	—	प
ग	—	ध
म	—	स
म	—	ग
म	—	म
म	—	प
म	—	ध
प	—	स
प	—	ग
प	—	म
प	—	प
प	—	ध
ध	—	स
ध	—	ग
ध	—	म
ध	—	प
ध	—	ध

ये प्रकार वास्तव में २५ होते हैं, परन्तु कौंस में डाले हुए स-ग्रहांश-मापन्यासयुक्त प्रकार को नान्यदेव ने

प्रारम्भ में शुद्ध षाड्जी क साथ गिनाया है,—अतः एक कमती होकर कुल २४ हो जाते हैं, जैसा नान्यदेव का अभिमत है।

(E) षाडव भेद = २५

ग्रह अंश

स — स

स —- स मापन्यासयुक्त

म — म

प — प

ध — ध

ग — स

म — स

प — स

ध — स

स — ग

स — म

स — प

स — ध

ग्रह अंश

ग — म

ग — प

ग — ध

म — ग

म — प

म — ध

प — ग

प — म

प — ध

ध — ग

ध — म

ध — प

कुल – — २५

गान्धार ग्रहांश होने पर षाडव का अपवाद होता है, फलस्वरूप एक भेद कम होता है, अर्थात् २४ प्रकार होते है। सग्रहांश-मापन्यास-षाडवभेद को नान्यदेव ने इसी गण में डाला है, अतः ये कुल २५ भेद हो गये हैं।

(F) षाडव मापन्यास प्रकार = २०

ग्रह — अंश

(स — स)

स — ग

स — म

स — प

स — ध

ग — स

ग — म

ग — प

ग — ध

ग्रह — अंश

म — स

म — ग

म — प

म — ध

प — स

प — ग

प — म

प — ध

ध — स

ध — ग

ध — म

ध — प

पूर्वोक्त षाडव २५ तथा उपरोक्त २० मिलाकर कुल षाडव प्रकार ४५ होते

८. अथ अष्टमं जाति-कला-मान-विवेचनं नाम प्रकरणम्

स्याद्द्वादश-कला षाड्जी षड्जोदीच्यवती तथा ।
मध्यमा रक्तगान्धारी कैशिकी षड्जकैशिकी ॥२१२॥
तथा षोडशभिश्चान्ध्री नैषादी धैवती तथा ।
गान्धारोदीच्यवा चान्या तथा गान्धारपञ्चमी ॥२१३॥
मध्यमोदीच्यवा चापि तथा कार्मारवी मता ।
आर्षभी चैव गान्धारी तथान्या षड्जमध्यमा ॥२१४॥
द्वात्रिंशत्कलिका वापि [1]नन्दयन्ती प्रतिष्ठिता ।
अष्टाभिः पञ्चमी ज्ञेया [2]कलामात्रप्रतिष्ठितिः ॥२१५॥

इति जाति-कला-मान-विवेचनं नाम प्रकरणं समाप्तम् ॥

९. अथ नवमम् आर्षभ्यादि-जाति-वर्णनाख्यं प्रकरणम्

(अथ) **आर्षभी** । तत्र सूत्रम्—
"आर्षभ्यां च भवन्त्यंशा धैवतर्षभ-सप्तमाः ।
तत एव (ह्य) पन्यासा (न्यासश्च) ऋषभः स्मृतः" ॥२१६॥

दत्तिलश्चाह—
"आर्षभ्यां च स्मृता अंशा निषादर्षभ-धैवताः ।
षड्ज-पञ्चम-हीने तु षाडवौडुविते कमात्" ॥२१७॥

हैं। इनमें कौंस में डाला हुआ स-स-मापन्यास-प्रकार पूर्वोक्त षाडवभेद (E) में सम्मिलित है। **ii.** उपरोक्त (A) = ४ तथा (B) = ४ कोमिलाकर आठ भेदों के स्वरलेख **ह० लि०** में लुप्त हैं तथा ३ स्वरलेख पुनरावृत्त प्रतीत होते हैं, जो क्र. २६, २७, तथा ५० की पुनरुक्ति है।

---

(२१६) ध. २८।११५ (२१७) द. ६५

---

[1] नियन्ती च [2] कलाभिमात्रजतिष्ठितिः

अत्र त्रिष्वप्यंशेष्वस्याः[1] संस्थापिते ऋषभ एव- - - - - - । पूर्णदशायां षड्ज-पञ्चमावल्पौ कार्यौ। षाडवौडुविते च तयोरभावः। (यथा) आह विशिखिलाचार्यः, "आर्षभ्यामृषभ—धैवत—निषादवन्तोंऽशापन्यासाश्च, ऋषभो न्यासः। षड्ज-हीनं षाडवम्। औडुवितं षड्ज-पञ्चमापेतम्। षाडवौडुवित—कलाऽल्पत्वम्। पञ्चमस्यारोहणादेवाल्पत्वं (लङ्-) घनं, विवादि—सञ्चारश्चेति" ॥२१८॥

अस्मिन्नेवार्थे[3] देवराजः, "धैवतर्षभ—निषादैरार्षभी त्वंशकैर्विवादि—[ग] नियमाद्विवाद-पूर्वे स्वल्पतरः षाडवौडुव-(व-) त्तद्" इति ॥२१९॥

गाथा च तस्यां 'चित्रा' नाम। तयार्धसम—चतुष्पदी गैतव्या,[4] यथा—"गुण—लोचनाधिकमनन्तमज (र)-म-(म-) रमक्षयमजेयम्। प्रणमामि चित्र—मणि—(दर्पणा-) मल—निकेतं[5] भवममेयम्[6]" ॥२२०॥

इयमप्यष्ट-कलाभिर्गातव्या। ग्रहांशापन्यास-स्वर-संनिवेशो यथा—री गा सा रि ग धा री म परी री री। री री नि ध नि ध नि ध प प री म म प नी। मा धा री पा सा गा गा गा। री ध नि री ग स ध ग नि री री री। री ग म री सा सा रि रि ग सा गा। नि ध पा री री रि प गा री स ध सा स। रि स रि सा नि ग रि ग सा मा म ग री। [सा री री

---

1 षस्या 2 गा 3 वार्षे 4 गीताव्या 5 निकिन 6 मय

म ग रि स ध स री । री री इयं च मधुकुया देश्यावणया ।
×री गा सा धा री म ग री री री । री री ध नि ध प म प
नि । पा धा नि धा पा सा सा । गा री ध नि ग रि स ध
ग रि री री ।

अपन्यासः ।

री म ग री स ध स रि स । री गा मा पा नि ध पा री री
रि प गा । गरि सारी सारि री रि ग ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ]°

मा म ग री धा नी री म ग ।
गुण लो ०० चना ००० धि
क म ०० [धिकम ००] नन्त ००० (ममर) ।
मजर ०० मक्षय० ।
मजे ०० ० ०० ०० ०० यं
प्रण ०० ० मा ०० मि ०० चि० त्र
म० णि० द० पं० णा ००० म
लनि ०० के ००० ०० तं ०००
भवम ०० मेयं ००
री स ध सा री ॥२२१॥

---

(२२१) i. ×'इयं च मधुकुर्या वेश्या वणया' यह वाक्य स्वरलेख के मध्य में ह० लि० में आया है।

ii. °स्वरप्रस्तार का यह अंश अधिक प्रतीत होता है । अष्टम कला लुप्त है ।

×इयं च मधुकर्यौ, देश्यां गातव्यौ ।

इति ऋषभांशा **शुद्धार्षभी** जातिः ॥२२२॥

भेदानार्षभिकायाः संक्षेपात् क्षिप्त-सकल-वैरि-कुलः ।
वर्णयति वर्णनीयो जगतां जगतीपतिर्नान्यः ॥२२३॥

आद्या शुद्धा, द्वितीया च रि-ग्रहा ऋषभांशका ।
नि-रि-धापन्यासकृता भिदा तु विकृतोच्यते ॥२२४॥

[म ◡०० ० प ◡००] रि-ग्रहा च निषादांशा------।
रि-ग्रहा धैवतांशा च, ध-ग्रहा ऋषभांशका ॥२२५॥

ध-ग्रहा च निषादांशा, ध-ग्रहा धैवतांशका ।
(नि-ग्रहा च निषादांशा, नि-ग्रहा ऋषभांशका ॥२२६॥

नि-ग्रहा धैवतांशा च, ग्रहांश-विकृता नव ।
अष्टावपन्यासकृताद्विकाराद्विकृतास्तथा ॥२२७॥

ग्रहांश-षाडव-भिदा भिन्नाश्चाष्टादशापराः ।
अष्टादशैव विकृता ग्रहांशौडुविता मताः ॥२२८॥

चतुष्पञ्चाशदेवं[3] स्युरार्षभ्या विकृतौ भिदाः ।
इत्यार्षभी समाप्ता ॥२२९॥

अथ **गान्धार्याः** स्वर-सन्निवेशोऽभिधीयते—

षड्ज-मध्यम-गान्धाराः पञ्चमः सनिषादवान् ।
अंशाः पञ्च भवन्त्येतेऽपन्यासौ षड्ज-पञ्चमौ ॥२३०॥

×(२२२) यह वाक्य स्वरलेख के मध्य में ह० लि० में स्थित है, जिसको हमने यथास्थान डाला है ।

---

1 मधुकुर्या 2 वणया 3 पञ्चादशदेवं

नित्यं न्यासस्तु गान्धारः, षाडवं चर्षभं विना ।
धैवतर्षभ-हीनं च भवेदौडुवितं तथा ॥२३१॥

लङ्घनीयौ च तौ नित्यमृषभो धैवतं व्रजेत् ।
गीयते मध्यमे ग्रामे गान्धारी जातिवेदिभिः ॥२३२॥

देश्यां च गान्धारपञ्चमे, (वेला-) वल्यां वा गीयते ।
(अस्याः स्वर-संनिवेशो) यथा—

गा गा सा नी सा गा गा । ग म पा ध प मा नि ध नि स । नि ध पा नी मा प री गा गा गा गा गा । गा ग म पा पा ध प मा नि ध नि स नि स । नि ध पा नी मा प री गा गा गा सा सा । गा सा गा गा गा - - - । गा ग म पा पा ध मा नि ध नि स । नि ध पा नी मा प रि गा गा गा गा । री गा मा प ध री गा मा मा । नी नी नी नी नी नी नी । गा ग म पा पा ध प म नि ध नि स । नि ध प नी मा प री गा गा गा गा गा । नी नी पा नी गा मा गा गा सा । गा मा गा गा गा गा ग म गा । गा पा सा मा नि ध नि स नि ध पा नी । मा प रि गा गा गा गा गा गा गा गा ॥२३३॥

अस्यां च जातौ वैदिकेन च्छन्दसा ब्रह्म-गीता चतुष्पदी यथा—"(एतं) रजनि-वधू-मुख-विभ्रम-दं[1] [प] निशामय वरोरु[2] । तव मुखविलास-वपुं[3]श्चारुममल-मृदु-किरण (-मय-) ममृत-भवम् ॥ [एतं] रजत-गिरि-शिखर[4]-मणि-शकलशङ्ख—

[1] त्पा [2] वल्पा [3] म [4] निशासिवतकणि [5] बहुवारूप [6] शिबिर

वरयुवतिदन्तं-[व]-पङ्क्ति-निभम् । प्रणमामि प्रणय-रति-कलह-रवनुदं शशिनम् ” ॥२३४॥

गा गा सा सा नी सा गा गा गा ।

गा ग म पा पा ध प मा नि ध निसा ।

नि ध पा नी सा प री गा गा मा गा गा ।

री गा मा प ध री गा मा मा ।

गा गा सा नी सा गा गा गा ।

गा ग म पा पा ध प मा नि ध नि स ।

नि ध प नी पा पा री गा गा गा गा ।

गा ग म पा पा ध प मा नि ध नि स ।

नि ध पा नी मा प री गा गा गा सा सा ।

गा सा गा गा गा ग म गा गा ।

गा ग म पा पा ध प मा नि ध नि स नि ध प नी ।

मा प री गा गा गा गा ०० ॥२३५॥

री गा मा पध री गा मा मा ।

(ए ००० तं ०००)

र० ज ०० निव ०० धू० मुख

वि ०० भ्र० म ००० दं ००० [य] ००००

निशा० मय ०० वरोरु ००००

1 दन्ति 2 कमहं

त० व० मुख ०० विला० स०

वपुश्चारु [रूप]० मम० ल०

मृदु किर०ण [म० य०]

म० मृत भवमेतं०

रजत गि० रि शिखर- - - - ॥२३६॥

नी नी नी नी नी नी नी नी नी ।

गा ग म पा प ध प मा नि ध नि सा ।

नि ध प नी मा प रि गा गा गा गा ।

गा नी पा नी गा मा गा गा ।

गा सा गा गा गा ग म गा गा ।

गा पा मा सा नि ध ध ध ।

नि ध प नि सा प रि गा गा गा गा ॥२३७॥

मणिशकल शं० ख

वर० युवति० द०न्त

प ०० ०० ङ्किनि ०० भं०००

प्रणमामि प्रणय

रतिकलहकरणम ०० हं ०० ०० ०० ००

शशिनं०००० ॥२३८॥

(२३६) गान्धारी जाति के इस प्रस्तार के कुछ खण्डों का क्रम विपर्यस्त है, अल्पाधिक्य भी है ।

अथ गान्धार्या रिपुमृपुगन्ध-[1]द्विपदा रणेमुपाधास्य (?) ।
विकृतिवशाद्भेदानिहं[2] कथयति[3] पृथ्वीपतिर्नान्यः ॥२३९॥

सग-म-प-नीति च नियता अंशा एते भवन्ति गान्धार्याः ।
पञ्चमं[4]-षड्जौ चापन्यासौ[5], न्यासो भवेच्च गान्धारः[6] ॥२४०॥

आद्यैका शुद्धैवं स-ग्रह-सांशा तथाऽपरा विकृता ।
स-ग्रह-सांशा मां[7]-पन्यासा, मांशा च जायते जातिः ॥२४१॥

स-ग्रह-पांशाऽथ परा, परा च स-ग्रह-निषादांशा ।
[ग्र-ग्रह-गांशा च तथा रा-ग्रह षड्जां- - - - ॥२४२॥]

विकृता गं[8]-ग्रह-गांशा, ग-ग्रह-पांशा[9], ग-ग्रह-निषादांशा ।
म-ग्रह-षड्जांशा विकृता, मं[10]-ग्रह-गान्धारांश-विकृता च ॥२४३॥

म-ग्रह-मांशा, म-ग्रह-पांशा, म-ग्रह-निषादांशा ।
प-ग्रह-गान्धारांशा, प-ग्रह-मध्यमांशा भिन्ना च ॥२४४॥

अथ पञ्चम-स्वर-ग्रह-पञ्चम-कलितांशा विकृति-भागिन्यः[11] ।
अपरा च पञ्चम-ग्रह-सहित-निषादांशा शोभते[12] जातिः ॥२४५॥

नि-ग्रह-सांशा, नि[13]-ग्रह-गान्धारांशौ[14], नि[15]-ग्रह-मांशा ।
नि-ग्रह-पांशौ[16], निग्रह-निषादांशविकृता च ॥२४६॥

एवं [17]चतुर्विंशतिरंश-ग्रह-भेद-सम्भव-विभागात् ।
मापन्यासं[18]-विशेषादपि चतुर्विंशतिर्विकृताः ॥२४७॥

पञ्चमस्यापवादेन चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
जायन्ते जातयस्त्वेताः षाडवस्य विभागतः ॥२४८॥

---

1 न्द् 2 नहि 3 कवयति 4 मौ 5 आस 6 षड्जौ चाप आस षड्ज 7 वा
8 च 9 पीशा 10 यथा 11 न्या 12 ता 13 मग्रह 14 रागाव 15 मि
16 षाड्ज्या निग्रहषाड्ज्या पादरचितांश 17 चविंशति 18 त्पास

ग-वर्जमितरांशा[1]पवादादौडुविता तथा ।
षड्विंशतिश्च[2] (वि-) ज्ञेया **गान्धार्या** विकृता बुधैः ॥२४९॥

अथ **मध्यमा** । तत्र सूत्रं यथा—

"**मध्यमाया भवन्त्यंशा विना गान्धार-सप्तमौ ।**
एत[3] एव ह्यपन्यासा न्यासस्त्वत्र च मध्यमः ॥२५०॥
गान्धार-सप्तमापेतं पाञ्च-स्वर्यं विधीयते[4] ।
षाट्स्वर्यं[5] चाथ गान्धारं कर्तव्यं तु प्रयोगतः ॥२५१॥
षड्ज-मध्यमयोश्चात्र[6] कार्यं बाहुल्यमेव च ।
गान्धार-लङ्घनं चात्र नित्यं कार्यं प्रयोक्तृभिः" ॥२५२॥

"पञ्चांशा[7] मध्यमायाश्च (ज्ञे)या द्वि-श्रुति-[वि-]वर्जिताः ।
अपन्यासास्त एवास्या विद्वद्भिः परिकीर्तिताः ।
क्रमात्तु ताभ्यां[8] हीनत्वं, बहुलौ षड्ज-मध्यमौ" इति ॥२५३॥

तत्र शुद्धायाः स्वर-संनिवेशो[9] यथा—

मा मा मा मा पा धा नि नी ध प । मा प म म मा मा गा री री । मा मा री सा गा मा मा मा मा सा । मा नि ध नि स नि ध प ध मा मा । नी नी री री री री पा । री म प म मा गा सा सा सा । गा नी सा गा ध प मा ध नि मा । पा पा नि पा नि प मा मा मा सा ॥२५४॥

(२५०–२५२) भ. २८ । १३९–१४१
(२५३) द. ७८ pb

1 गा 2 षडौवेवंश तं 3 अत 4 श्चिषा 5 षड्जारं 6 मध्यमाया 7 ग
8 तासां 9 मुरतनिवेशो

अस्यां च वैदिकेन च्छन्दसा ब्रह्मोक्ता चतुष्पदी यथा—

"पातु भव-मूर्ध-जानन-[महा] किरीट-मणि-दर्पणम् ।
गौरीकरकमल-पल्लव-सुतेजितं सुकिरणम्" ॥२५५॥

मा मा मा मा पा ध नि नी नि ध ।
मा प म मा मा मा मा गा री री ।
पा मा री मग मसा मा मा मा ।
मा नि ध नि स नि ध पमप ध मामा ।
नी नी री री नी री री पा ।
नी म प मा पा सा सा सा सा ।
गानी सा गा ध प मा नि ध मा ।
मा मा पा नि ध प मा० मा० ॥२५६॥

पा ०० तुभव ००० मू०
र्ध जा ०० नन ०० [हि]
कि० री ०० ट ०००
मणि० द ०० ० ०० र्प० णं०
गौरी० करक०
मल० पल्ल० व ०० सु ००
तेजितं ० ००
सु ०० किरणम् ॥२५७॥

तदिह ग्रहांशकापन्यासैः षाड-(वौडु)-वित-भेदात् ।
मध्यमजातेर्विकृतौ भेदानाख्याति नृपति-मुखरकः ॥२५८॥

1 स्तर्ध 2 जता

एका शुद्धा मध्यम-जातिर्ग्रह-विकृताश्चतस्रोऽपि ।
अंश-विकृता[1] श्चतस्रः (षोडश भवन्ति ग्रहांश-विकृताश्च) ॥२५९॥
प्रथिता ग्रहांशकापन्यासैर्विंशतिश्चतस्रश्च[2] ।
----तश्च षाडवादिहास्याः षडेतेऽप्यौडुवादप्यैतावत् ॥२६०॥
(श-)तमधिकं सप्तत्या जातेरपि सकल-वृत्ति-भेदेन ।
प्रथितौजसेति कथितं पृथ्वीनाथेन नान्यदेवेन ॥२६१॥

[इति मध्यमा समाप्ता ।]

पञ्चमी-लक्षणम्—

" द्वावंशावथ पञ्चम्या ऋषभ[3]: पञ्चमस्तथा ।
अपन्यासौ तु तावेव[4] न्यासश्चैवाथ पञ्चमः ॥२६२॥
मध्यमाया विधिस्तत्र[5] षाडवौडुविते स्मृतः ।
दौर्बल्यं चात्र विज्ञेयं षड्ज-गान्धार[6]-मध्यमैः ॥२६३॥
कुर्यादस्यां च सञ्चार[7]: पञ्चमस्यर्षभस्य च ।
गान्धार-गमनं[8] चैव कार्यं (ह्यल्पश्च सप्तमः ") ॥२६४॥

यदाह **दत्तिलः**

" पञ्चम्यां मुनिभिः प्रोक्तावंशावृषभ-पञ्चमौ ।
सनिषादावपन्यासौ मध्यमर्षभ[9]-सङ्गतिः ॥२६५॥
षड्ज-मध्यम-गान्धारा अल्पास्तु परिकीर्तिताः ।
स्यान्निषादाच्च[10] गान्धारो[11] मध्यमावच्च[12] हीनता ॥२६६॥

(२६२–२६४) भ. २८ । २४३–२४५; (२६५, २६६) द० ८०, ८१

---

1 अंशा विंशति 2 श्चतिश्च 3 कबल 4 भावेव 5 स्तु० 6 मान्धार
7 वारः 8 रागामनं 9 मायत्र 10 त्स 11 रान् 12 त्स

(गान्धार्यामथ पञ्चम्यां यत्सञ्चारादि कीर्तितम् ।)
तदस्यामपि[1] विज्ञेयं [स्यात्] (किन्तु पूर्णस्वरा सदा ")॥२६७॥

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -स्वर-पदेति च । विवृतिर्यथा [परि इति न्यासौ] परीत्यपन्यासौ । ग-लोपे षाडवं, ग-नि[2]-लोपे[3] त्वौडुवितं मध्यमावर्त[4] । षड्ज-मध्यमयोरनंशत्वात् । गान्धारस्य लोप्यत्वात् ॥ तेषाम्[5] अल्पत्वेऽल्पतरत्वार्थं वचनम् । प-रि [6]इत्यनयोरन्योन्यसङ्गति[7]: । पूर्णावस्थायां च निषादाद् गान्धार-गमनं चाल्पं परिकीर्तितम् । एवं च पञ्चमी शुद्धा एका[8], ऋषभांशे[9] विकृता एका । इमे द्वे पूर्णे । द्वौ च षाडवौ । एकं[10] औडुवितश्चेति, ऋषभांश औडुविताभावादिति । ब्रह्मवाक्यमेतत्— "मध्यमग्रामे [11]चोक्षपञ्चमे [निर्]देश्या [12]मन्धालिकायां च गेया" ॥२६८॥

पञ्चम्याः स्वर-सन्निवेशो यथा—

पा ध नि नी पा नी नी मा पा । गा गा सा सा मा मा - - । पा पा धा नी नि ध पा पा पा । पा पा री री री री री री । मारिग सा स ध नी नी । सा सां - मा मा पा- - - । धा मा धा नी पा पा पा पा ॥२६९॥

अस्यां च जातौ ब्रह्मोक्त-वैदिकेन च्छन्दसा चतुष्पदी यथा— "हर-मूर्धजाननं महेशममरपति-बाहु-स्तम्भनमनन्तम् । प्रणमामि पुरुष-मुख-पद्म-लक्ष्[13]मी-हरमम्बिका-पतिमजेयम्" ॥२७०॥

(२६७) द. ८३

1 सपि 2 मि 3 पो 4 वेत 5 सिव्ये 6 स 7 तः
8 तुका 9 गे 10 एक औडवितं 11 चोक्त 12 ग 13 महृमलछिद्द

पा ध नि नी नी मा नी मा पा ।
गा गा सा सा मा मा पा पा ।
पा पा धा नी नी नी गा सा ।
पा पा री री री री री री ।
गा रि ग पा प ध नी नी नी नी ।
सा सा मा मा पा पा पा पा ।
धा नी पा पा पा पा ॥२७१॥

[अस्यां]
हर० मू० र्ध जा० न
नं० म हे० श म म र
पति बा० हुस्त० म्भ
नमनन्तं
प्र ण मा० मि पुरुष
मुख पद्म लक्ष्मी०००
हरम० म्बिका० प
तिम ०० जे० यं० ॥२७२॥

विकृता-सङ्ख्या—
पञ्चमी चात्र शुद्धैका चतस्रश्च ग्रहांशयोः ।
ग्रहांशयो[2] रपन्यासादेकादश तथा पराः ॥२७३॥
षाडवा द्वादशविधा दशचौडुवितास्तथा ।
चत्वारिंशदितीहास्याः प्रकारा[3] विकृतौ मताः ॥
इति शुद्धा पञ्चमी जातिः समाप्ता ॥२७४॥

---

1 ख 2 शाया 3 कोरा

"**धैवत्यां** धैवतर्षभांशौ न्यासश्चापि धैवतः ।
अपन्यासा भवन्त्यत्र धैवतर्षभ-मध्यमाः ॥२७५॥

षाडवं पञ्चमे न[1] स्यान्न षड्जेन विना[2] परम् ।
आरोहिणौ च तौ कार्यौ लङ्घनीयौ तथैव च ॥२७६॥

निषादश्चर्षभश्चैव गान्धारो बलवां[3]स्तथा" इति ॥२७७॥

दत्तिलाचार्योऽप्याह—

"धैवत्यां गुरुभिः प्रोक्तावंशावृषभ-धैवतौ ।
(स-) मध्यमावपन्यासौ प्रागुक्ता[4] हीनतो[5]-क्रमात्" इति ॥२७८॥

(रि-) धावंशौ, धो न्यासः । स-ध-मा अपन्यासाः । प-लोपे षाडवम् । पूर्णदशायां च स-पावारोहि-वर्ण-गतौ कार्यौ । लोप्यत्वाल्लङ्घनं सिद्धमेव पुनर्वचनं प्रकर्षा-[न्या]र्थम् ॥२७९॥

अस्याः स्वर-संनिवे-[शनिवे] शो यथा—

[परा] धा धा नि नि धनि पा मा मा । धा धा नि ध नि सा सा सा सा सा सा सा । निध धा पा म ध ध नि ध नि नी धा । सा सा रि ग रि ग सा सा । धा धा नी पा मा मा । धा धा पा म ध धारिग नि ध ग । धा धा रि ध रि म पा रि ग । सा सा सा सा नी नी नी नी । सारिग रि ग सा धा धा । री ग रि ग रि ग मा मा मा मा मा । नी नी धा धा

(२७५–२७७) भ. २८।११८–१२०; (२७८) द. ६६

1 न्य 2 ता 3 च 4 ता 5 स्तेन 6 धौ

पारिग सारिग । मा धा सा मा धा नी धा धा नी धा धा ॥
षड्जग्रामे[1] चोक्षकैशिकेन देश्यां सिहल्यां[2] च गीयते ॥२८०॥

अस्यामपि वैदिकेन च्छन्दसा ब्रह्म-गीता चतुष्पदी यथा—

"तरुणामलेन्दु-मणि-भूषितामलं[3]-शिरोजम् ।
[भुज] भुजगाधिप-कुण्डल-विलास-कृत-शोभम् ॥
नग-सूनु-लक्ष्मी-देहार्ध-मिश्रितं[4]-शरीरम् ।
प्रणमामि भूत-गीतोपहार-परितुष्टम्" ॥२८१॥

धा धा नि ध नि प मा मा मा मा ।
धा धा नि ध नि स सा सा सा सा ।
स प ध पा म ध धा नि ध ध नी धा सा ।
धा धा नी पा धा धा पा मा मा ।
मा सा रि ग रि ग सा रि ग सा सा ॥२८२ ॥

तरुणा ००० मलेन्दु मणिभू ००० षि ता० मलशिरो ०० ० ००
जं ०० ।
भुजगा ०० धिप ।
कुं० ड ल विला० स - - - [जगा० धि ००] ॥२८३॥

पा धा धा नी पा धा धा मा मा ।
धा धा नि ध ध नि धा ।
स धा नि ध नि स नि ध पा पा ।
रि ग सा सा सा सा नी नी नी नी ।
मारिग रिग मारीसा धा ।

---

[1] मो [2] संहतिका [3] नन [4] स्तुमहित [5] मीशम

रीग रिम ग मा मा मा मा मा ।
नी नी धा धा पा रि ग सा रि ग ।
मा धा मा मा धा नी धा धा ।
कुंडल विला० स० ॥
कृत० शो०० ००भं नगसूनु लक्ष्मी देहार्ध मिश्रितश०००री००रं०
प्रण० मा०० मि भू० त
गी० तो० पहा०० र०
परितु००० ष्टं०० ॥२८४॥

जानीहि धैवतीमपि शुद्धामेकां ग्रहांशयोश्चतस्रः ।
अपि च ग्रहांशकापन्यासाद् द्वादश च बिभ्रति विकृतिः ॥२८५॥

षोडश-षोडश-भेदैरस्याः षाडवौडुव-क्रमात् ।
वर्णयति[1] नान्यदेवो भेदानप्यूनपञ्चाशत् ॥
इति शुद्धा **धैवती** जातिः समाप्ता ॥२८६॥

निषादवती-लक्षणम्—

" निषादवत्या अं(शाः स्युः) गान्धारर्षभ-सप्तमाः ।
एत एव ह्यपन्यासा, निषादो न्यास इष्यते॥२८७॥

धैवत्या इवं[2] कर्तव्ये षाडवौडुविते तथा ।
तद्वच्च लङ्घनीयौ तु बलवन्तौ[3] तथैव च " ॥२८८॥

(२८७–२८८) भ. १२१–१२२ pb.

1 श्रुति 2 धैव धैवत्यमिपिव 3 च भवन्तौ

दत्तिलोऽप्याह—

"अंशा निषादवत्यास्तु द्विश्रुती सर्षभौ[1] स्मृतौ ।
धैवतीवद्भवेच्छेषं, न्यासः स्यात्सप्तमस्त्विह" ॥२८९॥

तत्र रि-ग-नीत्यंशाः[2], एत एवापन्यासाः । धैवतीवत्[3] प-लोपे (षाडवं, स-प-लोपाद्) औडुवितम् । तौ लङ्घनीयौ चारोहिणौ, अंशा[4] बलवन्त इति । षड्जग्रामे निषादवती चोक्षसाधारितेन[5] देश्यां [त्रिभुवनाख्यां] वेलावल्यां[6] गेया ॥२९०॥

(अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—)

नी नी नी नी० नी० पा सा मा पा नी नी । [नी नी । सा धा मा मा । धा धा नी नी री गा मा मा मा सा पा नि नी नी नी । [या या] नी नी री री री री । री गा मा मा री गा सा सा ।] धा मा री गा सा धा नी नी । सा सा गा गा नी नी धा नी । सा सा धा नी नी नी नी नी । सा० सा० गा० सा० मा० मा० मा० मा० । नी पा धा [या] गा मा मा । री गा सा सा री गा नी नी । नी नी पा ध नि नी नी नी नी । सा० सा० सा० सा० मा मा मा मा । मा मा मा मा नी धा मा मा । धा धा नी नी री गा मा मा । मा मा पा ध नि नी नी नी नी । पा पा नी मा री री री री । री गा मा मा री गा सा सा । धा मारी गा सा धा नी नी । पा मा री गा नी नी नी नी ॥२९१॥

(२८९) द. ६७ pb.

1 ऋष 2 री 3 षध 4 अ आंसा 5 चोक्त्वा साधारितेन 6 ते लावण्यां

अस्यां च वैदिकेन च्छन्दसा ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा—

" तं सुर-वन्दित-महिष-महासुर-मथनमुमापतिं[2] भोग-युतं ।
नग-सुत-कामिनी[3]-दिव्य-विशेष-(क-)भूषित-शुभ[4]-नख-[-ल-] दर्पणकम् ॥
अहि-मुख-मणि-[5]खचितोज्ज्वल-नूपुर-बाल-भुजगेन्द्र-रवकलितं ।
द्रुतमभिव्रजामि [6]शरणमनिन्दितं[7]-पाद-युग-पङ्कज-विलासम् " ॥२९२॥

नी नी नी नी मा पा नी नी ।
तं० सु र व०न्दित ॥
पा सा सा मा मा नी नी नी नी ।
म हि ष म हा० सु र ॥
सा सा गा नी नी धा नी ।
[8]मं थ न मु मा० प तिं [ण] ॥
सा सा धा नी नी नी नी नी ।
भो० ग यु तं ००० ॥
सा सा गा सा मा मा मा मा ।
न ग सु त का[9]० मि नी ॥
मा मा- - - - - - - - - - ।
दि व्य वि शे० ष (क) ॥
री री सा सा री गा नी नी ।
भू० च क शु भ न ख ॥

---

1 लिन 2 भागु 3 नि 4 कद्युल 5 षचितौजल 6 स 7 मितित्वितं 8 मलिन
9 भा

नी नी पा पा ध ध नी नी ।

द॰ र्पं ण॰ कं॰॰ ॥

सा सा ग सा मा मा मा मा ।

(अ हि) मु ख म णि ख चि ॥

धा मा मा मा नी ध मा मा ।

तो॰ ज्ज्व ल नू॰ पु र ॥

धा धा नी नी री गा मा मा ।

बा॰ ल भु जं॰ ग म ॥

मा गा पा ध नि नी नी नी नी ।

र व क लि ॰॰ तं ॰॰॰ ॥

पा पा मा मा री री री री (ध) ।

द्रु त म भि व्र जा॰ मि (ध) ॥

री गा मा मा री गा मा मा ।

श र ण म नि॰ न्दि त ॥

री गा सा धा नी नी॰ धा ।

पा॰ द यु ग पं॰ क ॥

सा री गा नी नी नी नी ।

ज वि ला॰ सं ॰॰ ॥२९३॥

अथ विकृतौ संख्या—

निषादिनी च शुद्धैका [1]नवधा च ग्रहांशयोः ।

अष्टौ ग्रहांशा[2]पन्यासादष्टादश च षाडवात् ॥२९४॥

---

[1] माधानाः [2] शसो

अष्टादशौडुवादेवं चतुःपञ्चाशदीरिताः ।
[1]राजनारायणेनाथ श्रीमन्नान्येन भूभुजा[2] ॥२९५॥

(इति **निषादवती** जातिः समाप्ता ।)

इति सप्त जातयः समाप्ताः ॥

इति आर्षभ्यादि-जाति-वर्णनाख्यं नवमं प्रकरणं समाप्तम् ॥

१०. अथ दशमं सङ्करोद्भव-जाति-प्रकरणम्

अथ सङ्करोद्भवासु (जातिषु) **षड्जकैशिकी**-लक्षणम् ।
तत्र सूत्रम्–"गान्धारी-षाड्जीभ्यां संयोगात् षड्जकैशिकी जातिः" । इति ॥२९६॥

अंशाः पञ्चम-गान्धार-[3]षड्जाख्याश्च स्वरास्त्रयः ।
अपन्यासास्त्रयश्चैव [4]षड्ज-पञ्चम-सप्तमाः ॥२९७॥

गान्धार एको न्यासस्तु [5]दुर्बलौ [6]मध्यमर्षभौ ।
[7]नित्यपूर्णा न [8]तेनात्र विद्येते षाडवौडुवे ।
जाति-द्वयोद्भवत्वाच्च तद्धर्म-ग्रह इष्यत, इति ॥२९८॥

---

(२९६) श्लोक २९६ के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक **ह० लि०** के पत्र ३९ पर आये हैं, जो कैशिक जाति के हैं । अतः हमने वहाँ पर डाले हैं:—

"अथास्याः षड्जगांधारौ तथा मध्यम-पंचमौ ।
धैवतश्च निषादश्च षडंशाः परिकीर्तिताः ।
अपन्यासाश्चैत एव न्यासौ गांधार-सप्तमौ ।
पर्यायेण भवंत्येते न्यासापन्यासयोः स्वराः ।
षाडवं षड्जलोपे तु स-ध लोपे च षाडवम् ।"

(२९७, २९८) उपरोक्त श्लोक **ह० लि०** के पत्र ४५ पर कैशिकी जाति के वर्णन में लिखित हैं । षाड्जी जाति के होने के कारण हमने उन्हे यहाँ लिया है ।

---

(२९६) भ. २८।४८

---

[1] राजा नारायणौ [2] जाः [3] ऋषभा [4] षट् [5] सौ [6] धोवत [7] नित्यमूलं [8] यानात्र

अस्याः स्वर-सांनिवेशो यथा—

सा सा पा नी गा री ग म ग मा म । मा मा मा मा सा॰ सा॰ सा॰ । धा धा पा पा धा धा री रि प । री री नी नी नी नी नी । धा धा पा ध नि मा मा पा पा । धा धा पा ध नि धा धा पा । सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ [सा॰ सा॰]। धा धा पा पा धा धा री रि प । री री नी नी नी नी नी नी । धा धा पा ध नि मा मा पा पा । धा धा पा म नि धा धा पा पा । सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ । सा॰ सा॰ धा धा धा पा ध नि । धा धा पा ध नि धा धा पा । सा सा रि ग सा रि ग धा धा । मा धा पा पा धा धा नी नी । री री गा गा सा सा सा सा । धा स रि री सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ । सा स रि री स रि री सा॰ सा॰ सा॰ । मा॰ मा॰ मा॰ मा॰ नि ध प ध मा म । री नी प म प पा प म प री री॰ । गा मा गा गा मा मा मा गा ॥२९९॥

अस्यां च षोडश-कलाभि[1] र्जातौ प्रतिकलमेवांशापन्यासाः । प्रयोज्यौ विदारी[3]-मध्यगौ गीतकान्त-स्थितौ च निषाद-गान्धारौ न्यास-भूताविति ॥३००॥

अत्र ब्रह्मोक्त-गीतिर्वैदिकेन[4] च्छन्दसा यथा—

" [प्र] देवमसकल-शशि[5]-तिलकं द्विरद-गतिं निपुणमतिं[6] [॰]
मुग्ध[7]-मुखाम्बुरुह[8]-दिव्य-कान्तिम् ।
हरम-[तु] म्बुदोदधि-[9]निनादं

1 र्यां 2 सुधोधा 3 री 4 दकेन 5 राशि 6 मितिं 7 मुख 8 तनुरुह 9 वि

अचल-वर-सूनु-देहार्ध-मिश्रित-शरीरं
प्रणमामि तं[1]महमनुपम-मुख-क[ल] मलम्" ॥३०१॥

सा॰ सा॰ पा मा॰ गा री म ग मा मा ।
दे॰ ॰ ॰ ॰[ध]॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।
मा मा मा सा सा सा सा ।
वं॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।
धा धा पा धा धा री रि ग ।
अ स क ल॰ श शि ति ल ।
री री नी नी नी नी नी नी ।
कं॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।
धा धा पा ध नि मा ।
द्वि र द ग तिं (॰) ।
नि धा पा नि धा धा पा पा ।
पु ण्य म तिं॰ ॰ ॰ ॰ ।
सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ ।
मु ग्ध मु खां॰ बु॰ ॰ (॰) ।
धा धा पा ध नि धा धा पा ।
रु ह दि॰ व्य कांतिं॰ ।
सा सा सा रिग सा रिग धा धा ।
ह र मं बु॰॰ दो॰॰ (॰) द ।

[1] उपग्रह

मा धा पा पा धा धा नी नी
धि नि ना दं० ० ० ०
री री० गा सा सा सा गा० ।
अ च ल व र सू० नु (०) ।
धा सा रिग री री सा० सा० सा० पा पा
० दे ०० हा ० र्ध मि श्रि ०००
सा सरि री स रि री सा० सा० सा० ॥
त श० री ०० रं ० ० ० ०
मा० मा० मा० मा० नि ध मा मा ।
प्र ण मा मि० त० म ह (०) ।
नी नी पा मप पा पम पा पम प ध री
म नु प म० मु ख० क० म०
गा गा गा गा गा गा गा गा ॥
लं ० ० ० ० ० ० ० ॥३०२॥

भेदानस्या जातेर्विकृतौ विवृणोति षड्जकैशिक्याः ।
वाङ्मय-[1]निर्माण-मतिर्नान्यपतिर्भुवन-[2]लसदमर-कीर्तिः ॥३०३॥

स-ग-म-[3]पँ-[ति]-ध-निभिरिहांशै[4]र्ग्रहैरपन्यासकृतै[5]स्तथा भेदान् । द्वादश-शती समधिका नवत्या च षड्भिरपि चेयम् । **तुम्बरु**-भरत-[6]मतङ्गाद्यैर्यथोदितं **कश्यपेना**पि ॥३०४॥

(इ-) यं च मध्यमग्रामे गान्धारपञ्च-(मे-) न देश्या वेलावल्या [मोट वा] हिन्दोलेन वा गीयते । इति **षड्जकैशिकी** जातिः समाप्ता ॥३०५॥

---

[1] निमात [2] लसुदसन [3] य [4] हाप्तै [5] त [6] मताधै

अथ षड्जोदीच्यवती-लक्षणं यथा–

तत्र सूत्रम्–

“ गान्धारी-षाड्जीभ्यां धैवत्या [1]अंशसाद्भवेद्या च ।
षड्जोदीच्यवती विज्ञेया सा नामतो जातिः ॥” इति ॥३०६॥

मध्यम-षड्ज-निषादा धैवत-सहिता भवन्ति वा [2]ह्यंशाः ।
षड्जश्च [3]धैवतश्च स्वरावपन्यासिना[4]वस्याम् ॥३०७॥
[5]मध्यम एव न्यासो [6]लोपादृषभस्य षाडवं ज्ञेयम् ।
ऋषभस्य पञ्चमस्य (च) लोपादौडुवितमपि विद्यात्[7] ॥३०८॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा–

सा सा सा सा सा० मा० मा० मा० गा । मा पा मा गा मा धा । सा० सा० सा० सा० पा० पा नी धा । धा नी सा० सा० धा नी पा मा । गा सा० सा० सा० सा० गा । धा धा मा धा नी धा धा नी धा धा । सा० गा० सा० गां गा० सा० सा० सा० । गा धा पा धा पा पा मा धा । सा गा गा गा गा पा नी धा । धा नी सा धा नी पा मा । गा० सा० सा० सा० सा० सा० सा० सा० गा० । धा धा पा धा मा मा मा ॥३०९॥

अस्यां ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा–

“ शैलेश-सूनु-प्रणय-प्रसङ्ग[8]-सविलास[9]-खेलन-विनोदम् ।
अधिकं मुखेन्दु-नयनं नमामि देवासुरेश तव[10] रुचिरम् ” ॥३१०॥

(३०६) भ. २८।४८ pb.

1 मं 2 शंशाः 3 मध्यम 4 वा 5 मवम 6 लोपावृ 7 विद्यते
8 यान्अंगा 9 की 10 सुरेशेन च

शुद्ध-जाति-समुद्भवत्वाच्चेयं विकृत-रागैरवगन्तव्या ॥३११॥

स्वर-पदाभ्यां यथा—

सा सा सा सा मा मा गा गा ।

शै ० ० ० ले ० ० ० ॥

सा मा पा मा गा मा मा धा ।

श० सू० ० ० ० नु ॥

सा सा मा गा पा पा नी धा ।

प्र ण य ० प्र सं ० ग ॥

गा सा सा सा (सा) सा सा गा ।

स वि ला ० स खे ० ल ॥

धा धा पा धा पा नी धा धा ।

न वि नो ० दं ० ० ० ॥

सा गा गा गा गा गा सा सा ।

अ ० धि ० कं ० ० ० ॥

नी धा पा धा पा मा मा धा ।

मु ० खे ० ० ० ० न्दु ॥

धा नी सा[1] सा धा नी पा पा ।

न य नं ० न मा ० मि ॥

गा सा सा सा सा सा सा सा ।

दे ० वा ० सु रे ० श ॥

धा धा पा धा मा मा मा मा ।

त व रु चि रम् ० ० ० ॥३१२॥

---

1 -ति 2 मा

भेदानस्या जातेः कथयति विकृतौ....प्रथित-कीर्तिः ।
अरिराजमल्ल-मोह-मुरारिरिह भूपतिर्नान्यः ॥३१३॥

अंश-ग्रहयोः सापन्यासादस्याश्चषोड-[मसु]-श विकाराः ।
षोडश चापन्यासाद् द्वात्रिंशत् षाडवाश्चैव ॥३१४॥

द्वात्रिंशच्चौडुवितात् षण्णवति-भेद-भाजनामिमाम् ।
षड्जोदीच्यवतीमिति[2] जातिं जानन्ति जातिज्ञाः ॥

इति **षड्जोदीच्यवा** जातिः समाप्ता ॥३१५॥

अथ **षड्जमध्यमा**-लक्षणम् । तत्र सूत्रम्—

"स्यात् षाड्जी-मध्यमाभ्यां संयोगात् षड्जमध्यमा जातिः"
इति ॥३१६॥

षड्जर्षभ-गान्धार-मध्यम-(पञ्चम-धैवत-) निषादाश्च ॥
अंशास्त एवापन्यासाः षड्जमध्यमा-जातेः ॥३१७॥

न्यासौ मध्यम-षड्जौ, निषादं-लोपे च षाडवं विद्यात् ॥
गान्धार-निषाद-लोपे त्वौडुवितमपि[7] निषादोऽल्पः ॥३१८॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—

मा गा स् ग प् ध प मा नि ध नि म् । मा॰ मा॰ सा रि् ग म् ग नि ध् प ध् पा । मा गा री गा मा मा सा॰ सा॰ । मा ग म मा मा सा रि ग् प् ध प म ग मा गा । ध प् ध पा री रि ग् [दि] ग स ध॰ सा॰ सा॰ । नि ध॰ सा॰ री ग

(३१६) भ. २८।४८

1 चौदेवर्षभ 2 भिति 3 खड्गममा 4 अंशास्तथैत 5 दे 6 मध्यम–निषाद 7 त्तौडवितमप्यौ

म मा मा मा । मा मा मा ग् म्। प ध् ध प प ध ग मा गा । धा प ध पा री रि ग् म् ग रि ग म० ध० सा सा० । धा मा ध नि् ध् स ध् प म् प मा पा । मा म् ग मा मा न् ध ध प् ध् प म् ग म् गा स ग् । धा प ध पा री रि ग् म ग् रि ग स० ध० सा० सा० । नि ध सा री म मं ग मा मा मा मा ॥३१९॥

अत्र ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा——

" रजनि-वधू-मुख-विलास-लोचनं
प्रविकसित-कुमुद-दले[1]-फेन- संनिभम् ।
कामि-[नी-] जन-नयन-हृदयाभिनन्दिनं[2]
प्रणमाणि देवं कुमुदा[3]धिवासिनम् ॥३२०॥

मा गा स ग पा प ध सा नि ध नि ध ।
र ज नी ० व धू ०० मु ० ख ० ॥
मा० मा० स रि गम धनि धप धम ।
वि ला स ० [श०] लो० ०० ०० च० ॥
स री री पा सा मा सा सा ।
नं ० ० ० ० ० ० ० ॥
मा ग म मा मा नि ।
प्र वि ० क सि त ॥
ध प ध ग मा मा ।
कु ० मु ० द ०० ॥

1 जल 2 नन्दितं 3 मुकुटा

धा पध परि रिग गग रिग सध सा सा ।
द लं० ०० (फे) न० सं० ०० ००० नि ॥
निध सारी म गा मा मा मा मा ।
भं० ०० ० ००० ॥
मा मा गा पगम धध पपप धम पम पग ।
का ० मि [नी] ज न न य न ॥
धा प ध पारी रिग ममग रि ग स० ध् सा० ।
हृ द० या० भि० नं०० ०० ० ० ० दि ॥
मा मा नि ध ध प म् प पा पा ।
नं (० ० ० ० ० ० ० ० ०) ॥
मा मा ग नि ध् प ध प म ग म गा म गा ।
प्र००० ०० ०० ०० ण ००० मा मि दे ००० वं ०० ॥
धा प ध पा री रि ग् म ग ऱी ग स० ध सा सा० [निभ] ०००००० ।
कु मु ० दा ० धि ० वा ० ० ० ० ० ० ० ० सि ॥
नि ध सा० री ग म पा मा मा मा मा ।
नं (० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०) ॥३२१॥

अथ षड्जमध्यमाया अंशा [अ]पन्यास[1]-षाडवौडुवितैः ।
न्यासादपि विकृता इह[2] कथयति मिथिलाधिपतिर्नान्यः ॥३२२॥
ग्रहांशादपन्यासा(च्च) ज्ञेया द्वात्रिंशकाधिका ।
चतुःशती तथैतावत् षाडवौडवितादपि ॥३२३॥

---

[1] सा [2] रिह

एवं स्याद् द्वादशशती षण्णवत्यधिका सदा ।
जातेः षड्जमध्यमायाः सङ्ख्या विकृति-सम्भवा[1] ॥
(इति) **षड्जमध्यमा** जातिः समाप्ता ॥३२४॥

अथ **रक्तगान्धारी**-लक्षणं, तत्र सूत्रम्—

" गान्धारी-पञ्चम्योः सप्तम्याश्चैव रक्तगान्धारी " इति ॥३२५॥

षड्ज-पञ्चम[2]-गान्धारैर्निषाद-मध्यमै[3] र्ग्रहैरंशैः ।
पञ्चम-मध्यम-षड्जैश्चापन्यासैश्च मध्यम-विकल्पात् ॥३२६॥
गान्धारोऽथ न्यासः, षाडवमपि ऋषभ-लोपतो यत्र ।
[4]रि-ध-लोपादौडुवितं यस्याः स्यात् सा च[5] रक्तगान्धारी ॥३२७॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—

पा नी सा० गा सा पा नी । सा पा पा पा पा सा मा गा मा ।
मा पा धा पा मा पा ध प ध पा । मा मा मा मा मा मा मा मा ।
धा नी पा म प धा नी पा पा । मा पा सा ध़ नि पा पा पा पा ।
री गा मा पा पा पा मा पा । री गा मा पा पा पा पा । पा पा पा पा पा पा पा पा ।
री गा सा० सा री० ग । गा गा मा पा पा धम धा नि ध़ पा पा ।
मा पा मा प रि मा गा गा गा गा ॥३२८॥

---

(३२५) भ. २८।५२

---

1 सम्भवाच 2 षर्भ 3 म 4 मधुकी 5 सह

अत्र ब्रह्मोक्ता चतुष्पदी यथा—

“ तं बाल-रजनिकर-तिलक-भूषण-विभूतिम् ।
प्रणमामि गौरी-वदनाम्बुज-प्रीतिकरम् ” ॥३२९॥

पा नी मा॰ मा॰ गा मा पा नी ।
मा ॰ पा पा पा मा मा गा मा ।
मा पा धा पा मा पा ध़ प मा ।
मा मा मा मा मा मा मा मा ।
धा नी पा पम धानी पा पा ।
मा पा मा नि ध पा पा पा ।
[मा पा मा नि़ ध पा पा पा पा ।]
री गा मा पा पा पा मा पा ।
री॰ गा मा पा पा पा मा पा ॥३३०॥

तं ॰॰ बा ॰ ल र ज नि ।
कर तिलक भू॰ ष ।
ण वि भू ॰ ॰ ॰ ॰॰ ॰ ।
तिं ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।
आ ॰ ॰॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।
॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰॰ ॰ ॰ ।
॰ ॰ ॰ ॰॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।
प्रणमा ॰ मि गौ ॰ री ।
वदनां ॰॰ बु ॰ ॰ ।

पा पा पा पा पा पा पा पा ।
ज ० ० ० ० ० ० ० ।
री गा सा० सा० री गा गा गा ।
प्री० ति करं ० ० ० ० ॥
गा गा पा ध म धा नि ध पा पा ।
मा पा मा प रि गा गा गा गा गा ॥३३१॥

अस्या ग्रहांशकापन्यासैः स्युः पञ्चसप्तति च भेदाः ।
एतावन्तः षाडव-योगादौडु-(वि-)त-योगाच्च ॥३३२॥
शत (-क-) द्वयमिदमधिकं कथितं च [पं० आ ० ० ०० ० ०
०० ० ।
आ ०० ०० ० ० ० ० ० ० ।] (पञ्च-) विंशत्या ।
रिपु-भाजि-कोटि-मुकुट-श्रेष्ठ-नरेन्द्रेण नान्यदेवेन ॥
इति **रक्तगान्धारी** (जातिः) समाप्ता ॥३३३॥

अथ **गान्धारोदीच्यवती**—लक्षणम्। तत्र सूत्रम्——
" षाड्जी गान्धारी पञ्चमी[2] तथा धैवती च खलु जातिः ।
गान्धारोदीच्यवतीं जातिं [3]निर्वर्तयन्त्येताः " ॥३३४॥
स्वरौ मध्यम-षड्जाख्यावंशौ यत्र प्रकीर्तितौ ।
षड्जोऽथ धैवतो द्वावपन्यासौ[4] (च) स्वराविमौ ॥३३५॥
न्यासः स्यान्मध्यमो यस्यां षाडवं चर्षभं विना ।
नास्त्येवौडुवितं यस्यां विकल्पाद्यत्र पूर्णता ॥३३६॥

(३३४) भ. २८।५०

[1] मुकुटोष्टष्टां - - नरवेन [2] मध्यमा [3] निर्वण [4] द्वावंशौ [5] षाड्जवं

मन्द्र-स्थाने च गान्धार-बाहुल्यं यत्र दृश्यते ।
तामाहुर्जाति-तत्त्वज्ञा गान्धारोदीच्यवामिति ॥३३७॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—

सा० सा० पा मा पा ध प मा । धा पा मा मा सा सा सा सा ।
धा नी सा० सा० मा मा पा पा । नी नी नी नी नी नी नी ।
मा मा धा नि स नी नी नी । मा पा मा प रि गा गा सा०
सा० । गा ग म मा प ध मा ध नि पा पा । री गा० सा० स
ध नी नी धा धा । गारिग सा स नि गा गरि सा० सा० । मा
सा सा मा नि ध नी नी नी । पा पा मा प रि गा गा गा सा०
सा० । गा मा गा मा पा प रि गा । - - - गा सा सा सा सा ।
नी नी पा धा नी गा गा गा । नी नी धा पा धा मा मा पा ।
धा ध प मा मा मा मा मा मा ॥३३८॥

अस्यां ब्रह्मोक्ता चतुष्पदी यथा—

"सौम्य-गौरी-मुखाम्बु-[ज] रुह-दिव्य-तिलक-परिचुम्बितार्चित-
सुपादं
प्रविकसित-हेम-कमल-निभम् ।
अतिरुचिर-कान्तिनखदर्पणामल-निकेतं
मनसिज-शरीर-ताडनं प्रणमामि गौरी-चरण-युगमनुपमम्"
॥३३९॥

सा० सा० पा मा पा प ध मा पा ।
सौ०० ००० ०० ० ।

धा पा मा मा सा॰ सा॰ सा सा ।

०० म्यं ०० ० ०० ।

धा नी सा पा पा सा ।

गा ग म पा प ध मा ध नि पा पा ।

री गा सा॰ स ध नी नी धा धा ००------ ।

गा रि ग सा॰ रि गा ग रि सा सा ।

सा॰ सा॰ मा॰ मा मा नि ध नी नी ।

मा पा मा प रि गा गा गा सा॰ सा॰ ।

गा सा गा मा पा मा मा प रि ॥३४०॥

गौरी [शः] मुखां॰ बु०० ।×------

-----प्र ०० विक ०० सि ०० त हेम ।

कमल नि ०० भं ० ० ० ।

अति ०० रुचि ० रकां ०० ति ।

नखद ० र्पणा ००० म ।

ल निके ००० तं ।

मनसिज शरीर ०० ।

गा मा गा गा सा सा सा सा ।

नी नी नी पा धा नी गा ।

नी नी धा पा धा मा मा पा ।

धा पा मा मा पा मा मा मा ॥

[प मं०००००० ।]

[ग्रहांशापन्यास] ता००ड नं००० ।

प्रणमा० मि गौरी• ।
चरणयुगमनुप ।
मं००००००० ॥३४१॥

- - - - - - - - - भिदाः षाडवाच्चैव षोडश ।
गान्धारोदीच्यवायाः स्युर्भेदा भरत-सम्मताः ॥
(इति) **गान्धारोदीच्यवा** समाप्ता ॥३४२॥

अथ **मध्यमोदीच्यवा**-लक्षणम्—

"गान्धारी-पञ्चमीभ्यां मध्यमया विरचिता स-धैवत्या ।
जातिस्तु मध्यमोदीच्यवेति सद्भिः सदा ज्ञेया" इति ॥३४३॥

अंशः पञ्चम एवापन्यासौ षड्ज-धैवतौ यत्र ।
मध्यम एको न्यासो मन्द्रो बहुलश्च गान्धारः ॥३४४॥

भेदोऽपन्यास-कृतो द्विधैव चास्याः प्रकीर्तितः सद्भिः ।
पूर्णा[1] च मध्यमोदीच्यवेति जातिर्भवेन्नित्यम् ॥३४५॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—

पा ध नि नी नी मा मा नी पा । री री री गा सा रि नी नी नी नी नी नी नी नी । नी नी ध प मा नि ध पा पा पा । पा पा री री री री री री । मा रि ग सा स ध नी नी नी नी । सा पा नी मा पा गा गा । सा पा मा नि ध नी नी

(३४१) यह प्रस्तार खण्डित है। तारकाङ्कित तृतीय कला के आगे के तीन गीतखण्ड तथा कला ४, ५ एवं ६ की स्वरमालिकाएँ लुप्त हैं।

(३४३) भ० २८।५१

1 पूर्णे

नी सा सा । पा पा मा ध नि पा पा पा पा । सा पा मारिग गा गा गा गा । गा पा मा पा नी नी नी नी । मा पा मा प रि गा गा गा गा । गा गा गा मा मा नि ध नी नी । नी नी नी ध प मा नि ध नि ध पा पा । री गा सा॰ सा॰ मा नि ध नी नी नी । नी धा पा मा पा मा मा ॥३४६॥

अस्यां ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा—

" देहार्ध-रूपमतिक्रान्तममलममलेन्दु-कुन्द-कुमुद-निभं
चामीकराम्बुरुह-दिव्य-कान्ति-[1]प्रवर-गण-पूजितमजेयम् ।
[2]सुराभिष्टुतमनिल-[3]मनोजवमम्बुदोदधि-निनादमतिहासं
[4]शिवं शान्तमसुर-चमू-मथनं वन्दे त्रैलोक्य-[5]गुरु-चरणम् "
॥३४७॥

[अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—

पा ध नि री री मा मा नी पा । री री री गा सा रि ग गा गा । नी नी नी नी नी नी नी नी । नी नी ध प मा नि ध नि ध पा पा । पा पा । पा पा री री री री री री । मा रि ग सा स धा नी नी नी नी । सा धा नी मा पा पा गा गा । मा पा मा नि ध नी नी नी सा॰ सा॰ । पा पा मा ध नि पा पा पा पा । ग गा गा गा गा गा पा ॥३४८॥]

दे॰॰ हार्धरूप ॰ ।
मतिक्रां॰ तम॰ मल ।

---

(३४७) सं॰ र॰ I, पृ. २४९, २५२ pb. 'अतिकान्तिम्'
कं॰ ३४८ उपरोक्त कं॰ ३४६ की पुनरुक्ति है तथा खण्डित भी है ।

---

1 प्रचरण 2 सुरभियु 3 मनुपमचर 4 शिरसात्तमशुभं चर्म 5 मु

ममलेंदु कुं० द ।

कुमुद० निभं ०० ०० ।

चामी० करां ०० बु ।

रुह० दि ०० व्य कां० तिं ।

[अ] प्रवर (ग) ण पू० जि ।

तमजे ०० ०० यं०००० ।

मा पा नी नी नी नी मा पा मा प रि गा ।

सु रा भि०० ष्टुतमनिल ।

मनोजवमंबु ।

दो० द धि [रा] नि ना० द० ।

म ति हा ००० सं०००० ।

शिवं शां० तम ०० सुर ।

चमू मथनं ० ० ० ० ।

वंदे० त्रैलो० क्य ।

गुरु चरणं ० ० ० ॥३४९॥

गा गा गा गा गा गा गा गा गा मा नि ध नी नी ।

नी नी ध प मा ध नि नि ध प पा ।

री गा सा० सा० मा नि ध री री ।

नी री धा धा धा पा मा मा ॥

इति **मध्यमोच्यवा** जातिः समाप्ता ॥३५०॥

अथ गान्धारपञ्चमी-लक्षणम् । तत्र सूत्रम्—

" गान्धारी-पञ्चम्योर्योगाद् गान्धारपञ्चमी जातिः" इति ॥३५१॥

पञ्चम एकोंऽशः, कार्यौ पञ्चमर्षभावपन्यासौ ।
गान्धारश्च न्यासः पञ्चम-गान्धारयोश्च सञ्चारः ॥३५२॥

पूर्णत्वादेवास्या (न) विद्यते [धैवत] षाडवमौडुवितम् [इति] ।
अंशापन्यासभिदां द्विविधामभिदधति जातिविदः ॥३५३॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—

पा म प म ध नी ध प मा धा नी । नी नी नी नी नी नी नी नी । नी ध प मा नि ध नि पा पा । पा पा री री री री री री । मा रि ग सा स ध री री री री । री॰ री॰ सा॰ रि स री री री री । नी गा मा रि ग सा नी नी नी नी नी नी । नी मा नी मा पा पा गा गा॰ । सा पा मा पा पा नी नी नी नी । मा प मा प रि गा गा गा गा गा । नी नी नी नी नी नी नी नी । नी नी धा नी स नि नी धा पा पा । मा पा मा प रि गा गा ॥३५४॥

अस्यां ब्रह्मप्रोक्त-चतुष्पदी यथा—

" कान्तं वामैकदेश-प्रेङ्खोलमान-कमल-निभं
वर-सुरभि-कुसुम-गन्धाधिवासित-मनोज्ञ-नगराज-

(३५४) इस प्रस्तार में द्वितीय, तृतीय तथा तेरहवीं कला लुप्त हैं ।

(३५१) भ. २८।५४

1 पञ्चमीस्योयां 2 धसपा 3 अथवा

सूनु-रति-राग-रभस-केली-कुच-ग्रह-लीलं तं
प्रणमामि देवं चन्द्रार्ध-मण्डित-विलास-कीलन-विनोदम् ”
॥३५५॥

[अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—]

पा म ध नी ध प म धा नी ।
स नि नी पा पा पा पा पा पा ।
धा नी सा॰ सा॰ मा मा पा पा ।
नी नी नी नी नी नी नी नी ।
ध प मा नि ध पा पा ॥३५६॥

कां ०० ०० ०० ००० ।
०० ० तं ००००० ।
वा॰ मैकदे॰ श॰ ।
प्रें॰ खो॰॰ लमान ।
कमल॰ निभं ०० ०० ॥३५७॥

पा पा री री री री री री ।
मा रि ग सा स ध नी ।
नी नी री सा रि ग री री री री ।
नी गा सा नि ग सा नी नी नी ।
नी मा पा मा गा॰ गा॰ ।
सा॰ पा मा पा नी नी नी नी ।
मा पा मा प रि गा गा गा गा ।
नी नी पा ध नि गा गा गा ।

नी नी नी नी ध० ॥३५८॥

वर-सुरभि-कुसुम ।
गं०० धा०० धि० वासि ।
त मनो ०० ज्ञ ०० ।
नगरा०० जसू [प] नु ।
रति० रा० ग र भ स ।
केली कुच ग्र ।
ह लीलं००० (तं) ।
प्रणमामि [तं] देवं ।
चंद्रार्ध मं० (डि) ।
(त विलास-कील) ।
(न-विनोदम्) ॥३५९॥

[पा म प म ध नी ध प मा धा नी ।
नी नी नी नी नी नी नी नी ।
नी ध प मा नि ध नि पा पा ।
पा पा री री री री री री ।
मा रि ग सा स ध री री री री ।
री० री० सा० रि स री री री री ।
नी गा मा रि ग सा नी नी नी नी नी नी ।
नी मा नी मा पा [पा] गा ।
गा० सा पा मा पा पा नी नी नी नी ।

(३५८) यह स्वर-मालिका खण्डित एवं अशुद्ध है तथा इसमें दो कलाएँ कम हैं ।

मा प मा प रि गा गा गा गा गा ।
नी नी नी नी नी नी नी नी ।
नी नी धा नी स नि नी धा पा पा ।
मा पा मा प रि गा गा ॥]
इति **गान्धारपञ्चमी** जातिः समाप्ता ॥३६०॥

अथ **आन्ध्री**-लक्षणम् । तत्र सूत्रम्——
" गान्धार्यार्षभिकाभ्यामान्ध्री सञ्जायते जातिः " इति ॥३६१॥

स्वरा (ऋषभ-गान्धारौ) पञ्चमः सप्तमस्तथा ।
अंशा (भवन्त्य-) पन्यासास्त एव तु[1] प्रकल्पिताः ॥३६२॥

न्यासो (भवति) गान्धार एक औडुवितं विना ।
तामाहुर्मुनयो जातिमान्ध्री-नामाभिलक्षिताम् ॥३६३॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा——

गा री री० री० री० री० री० री० । री० री० गा० री० गा० री० री० री० । रीगागा री री मा० । री गा० सा ध नि नी नी नी नी । मा री ग गा० गा० गा० गा० गा० । री री गा मा मा सा सा मा मा पा पा । मा पा मा री ग गा० गा मा । धा नी गा गा गा गा गा । पा पा मा रि ग पा गा

(३६०) यह स्वरमालिका उपरोक्त कं. ३५४ की पुनरुक्ति है ।

(३६२) इस पंक्ति के आगे ऊपर के श्लोक ३५९ के उर्वरित अंश 'यंडि ने चिला० स ०० की० ल न विनो ००० दं ००० ।' इस प्रकार ह० लि० में आये हैं ।

(३६१) भ. २८।५२

[1] श्चैव प्रव

गा गा। नी नी नी नी री री री री। री री गा मा मा सा
नी नी। पा मा पा रि ग गा गा गा। री री गा स ग मा
पा पा। मा मा नी नी सा री गा पा। रिग गा गा गा गा
गा गा गा ॥३६४॥

अस्यां ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा—

"तरुणेन्दु-कुसुम-खचित-जटं त्रिदिव-नदी-सलिल-धौत-मुखं
नग-सूनु-प्रणयं वेद-निधिं परिणाहि-तुहिन-शैल-गृहम्।
अमृत-भवं गुण-रहितं
तमवनिरवि-शशि-ज्वलन-जल-पवन-गगन-तनुं
शरणं व्रजामि शुभ-मति-कृत-निलयम्" ॥३६५॥

गा० री० री० री० री० री० री०।
री गा री गा री री री री।
री री गा गा री री मा मा।
री गा सा ध नि।
नी नी नी नी री री री री।
नि ध नि ध पा पा मा मा मा।
रि ग गा गा गा गा स म मा मा पा पा।
मा पा मा रि ग गा० गा० गा०।
गा० गा० धा नी गा गा गा गा ॥३६६॥

त० रुणें० दुकुसुम।
खचित जटं०००।
त्रिदिवनदी सलिल।
धौ० त० मुखं००।

नगसू॰ नु॰ प्रणयं ।
वेद नि॰ धिं॰॰॰ ।
परिणाहि तुहिन ।
शैल गृ॰ हं॰॰॰॰ ।
अमृत भवं॰॰॰ ।
पा पा मा रि ग़ गा गा गा गा ।
नी नी॰ री री री री री ।
री री गा री सा सा नी नी ।
पा पा मा रि ग़ गा गा गा गा ।
गुण रहि॰ तं॰॰॰ ।
तमवनिरविशशि ।
ज्वलन-जल-पवन ।
गगनत॰ नुं॰॰॰ ।
री री गा स ग मा मा पा पा ।
मा मा नी नी सारी गा पा ।
रि ग गा गा गा गा गा गा ॥
शरणं व्रजामि ।
शुभ मतिकृत-निल ।
यं ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॥३६७॥

[1]वर्णयति भेदमान्ध्याः संसदि भिन्न-प्रभिन्न-करि-कुसुमः (?) ।
श्रीमन्नान्यनरेन्द्रः सान्द्र-यशश्छुरितं[2]-सकल-भुवन-तलः ॥३६८॥

---

1 वर्णजाति 2 चुरित

अंशापन्यास-कृता भेदा अस्याश्च चतुःषष्टिः ।
भूयोऽपि ×चतुःषष्टिः षाडवतः कल्पिता भेदाः ॥३६९॥

अष्टाविंशत्यधिकं शतमेकं गणनाऽथाऽऽन्ध्र्याः ।
इत्याह कुन्त-धनः सुनयादित्यः प्रतिपक्ष-कुमुद-राजीवः[1] ॥

इत्यान्ध्री समाप्ता ॥३७०॥

अथ **नन्दयन्ती**-लक्षणम् । तत्र सूत्रम्—

'योनिश्च नन्दयन्त्यास्त्वार्षभी पञ्चमी सगान्धारी' इति ॥३७१॥

अंशः पञ्चम एको, मध्यम एको भवेदपन्यासः ।
गान्धारो हि न्यासः, षड्ज-विहीनं च षाडवं विद्यात् ॥३७२॥

एकांशत्वादस्या न्यासापन्यासयोस्तथैकत्वात् ।
भेदः षाडव-योगादेकविधस्तद् द्विधैव जा-(-ति) रियम् ॥३७३॥

[अस्याः स्वरसंनिवेशो यथा—]

गा गा गा गा पा पा ध प पा । धा धा धा धा नी स नि नी धा पा पा पा पा पा पा । धा नी पा पा गा गा गा गा मा री गा गा गा गा गा पा मा मा पा धा ध नि पा मा । धा नी मा पा गा गा गा गा प म पा पा पा मा गा गा गा धा नी मा पा गा गा गा गा । मा मा मा मा मा मा मा । री गा मा पा प म पा पा नी री री री री पा पा पा पा धा नी

× च और तुः के बीच में श्लो० ३६७ की अन्तिम पंक्ति 'शरण ०० व्रजामि' इत्यादि ह० लि० में दी हुई है । गीत के चरणों के साथ स्वराक्षर–चरण मिश्रित हो गये हैं ।

(३७१) भ० २८।५३

1 राजीनं 2 गान्धारादि

सा ध नि नी धा पा पा पा पा । धा नी मा पा गा गा गा
गा । गा पा पा धा मा मा मा । धा नी नी धा पा पा पा
पा । री गा मा पा प् म पा पा ध नी । री री री री पा पा पा
पा पा पा धा मा मा मा । नी पा गा म गा गा गा गा गा
री री गा गा मा मा । नी पा नी मा नी धा पा पा । मा०
मा० रिम पा पा पा पा पा । मा प मा रि ग गा गा सा० सा
प । री० री० गा गा मा मा पा पा री री री गा मा रिग मा
मा । मा री प नी गा गा गा गा गा । मा मा पा पा धा ध
नि ध मा । धा धा सा नी धा नी पा पा । री० री० री० री०
मा पा धा मा । नी नी नी नी धा धा मा मा । मा प रि गा
गा गा गा गा ॥३७४॥

अस्यां ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा—

"[1]सौम्यं वेदाङ्ग-वेद-कर-कमल-योनिं तमो-रजो-[2]विवर्जितं हरं
भव-हर-कमल-गृहं शिवं [3]शान्तं संनिवेश[4]नमपूर्वं
भूषण-[5]लील[6]मुरगेश-भोग-भासुर [7]शुभ-पृथुलम् ।
[8]अचल-पति-सूनु-कर-पङ्क [9]जामल-(विलास-कीलन-) विनोदं
स्फटिक[र-] मणि-रजत-(सित-) नव-दुकूल-क्षीरोद-[सा]
सागर-निकाशम् ।
[10]अंज-शिरःकपाल-पृथु-भाजनं वन्दे (सुखदं)
(हर-दे-) हममले[11] मधु[12]सूदन-सुतेजोधिक-सुगति-योनिम्"
॥३७५॥

---

[1] साम [2] विवर्जितांगं [3] शान्तमन [4] ममपूर्वं [5] नीलं [6] तरुणोप
[7] षुभ [8] अवनि [9] जानन [10] मणि [11] ममर [12] सूदनेशंतेजंस्थितेषुगत

धा धा सा नी धा नी पा पा ।
री॰ सं॰ री मा पा धा पा ।
नी नी नी धा पा मा मा ।
मा प रि गा गा गा ॥
पृथुभाज ॰॰ नं॰ ।
वंदे॰ सुखदं॰॰ ।
हर दे॰ हम॰ म॰ ल॰ ।
म धु सू॰ दन सु ।
ते जो॰ धि क सु ।
गति॰ यो ॰॰॰॰॰ ।
निं॰॰॰॰॰॰॰॰ गा गा गा ॥
इति **नन्दयन्ती** जातिः समाप्ता ॥३७६॥

अथ **का-(र्मा-) रवी**—लक्षणम् । तत्र सूत्रम्—

"कार्मारवीं निषादी (सा-) र्षभिका पञ्चमी[1] कुर्युः" इति ॥३७७॥

[2]अंशा निषाद-धैवत-पञ्चमर्षभा भवन्ति यत्रामी ।
अपि चैतेऽपन्यासा (एको) [3]न्यासश्च पञ्चमो यस्याम् ॥३७८॥
पूर्णत्वादप्यस्यां[4] विधेते न खलु षाडवौडुविते ।
कार्मारवीति जातिं जातिविदस्तां प्रचक्षते नित्यम् ॥३७९॥

अस्याः स्वर-सन्निवेशो यथा—

री॰ री॰ री॰ री॰ री॰ री॰ री॰ री॰ । सा॰ नी सा गा

(३७७) भ॰ २८।५३

1 पञ्चमीभ्यः कुर्यात् 2 अंशमिषाडव 3 स्थानेच 4 दियस्यां

सा नी नी नी । मा मा नी मा पा पा गा° । गा° सा पा मा पा नी नी नी नी । री गा सा नि री गा री गा री मा । री गा री मा नी सा नी मा नी ध नि धा पा । मा पा मा प रि गा गा गा गा गा गा । री री गा स प मा मा पा पा । पा पा मा रि गा गा गा गा गा । धा नी पा मा धा नी सा° सा° । नी नी नी नी नी नी नी नी । मा मा धा नी स नि नी धा पा पा । मा पा नी प रि गा गा गा गा गा । नी नी पा धा नी गा गा गा । सा री गा सा नी नी नी नी । नी नी धा धा पा पा पा पा ॥३८०॥

अस्यां ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा—

"[1]तं स्थाणु-ललित-वामाङ्ग-[2]संक्त-मतितेजः-
[3]प्रसर-सौधांशु-कान्ति-फणिपति-
मुख [4]मुरो-विपुल-सागर-निकेतं सित-पन्नगेन्द्रमतिकान्तम्
[5]षण्मुख-विनोद-कर-पल्लवाङ्गुलि-विलास-
कीलन-विनोदं प्रणमामि[6] देव-यज्ञोपवीतकम्[7]" ॥३८१॥

री री री री री री री ।
मा गा सा गा सा नी नी नी ।
नी मा नी मा पा धा गा गा ।
धा गा गा सा पा मा पा नी नी नी नी ।
री गा सा नी री मा ।

---

[1] नसून [2] सक्तत [3] नमलकोपाग [4] हर [5] षा । [6] यामि [7] तिकम्

री मा नी ध नि धा पा ।

मा प रि गा गा गा गा गा ॥

[1]तं० स्थाणु ललि० (त) ।

वा० मा० ङ्ग सक्त ।

(मति) ते० जः प्रसर ।

सौधांशु कांति ।

फणि प० ति मुखं[2] ।

[3]मुरोविपुल सां[4] ग ।

रनिकेतं ० ० ० ० ॥

री गा स ग सा सा पा पा ।

मा पा मा प रि गा गा गा गा ॥

[5]सि त प ०० न्न गेन्द्र ।

म ति कां ०० ० तं ० ० ० ॥

धा नी पा मा धा री सा सा ।

नी नी नी नी नी नी नी ।

मा मा धा नी म नि नी धा पा ।

मा पा मा मा प रि गा गा गा गा ।

नी नी पा धा नी गा गा गा ।

मा री गा सा नी नी नी ।

री मा धा धा पा पा पा पा ॥

---

[1] त० सुनिल लि० । वा० स० क्रमति ते० जमनल को० पांग कांति । [2] प० भिमुखं

[3] हर [4] सामरतिकेतं [5] न्नितप. .न्नगेंद्र मेतिका ००० भ्रं ००० ।

षण्मुख विनो॰ द ।

कर प॰ ल्लवाङ्गु ।

लि[1] विलास ०० ।

कीलन विनो००० दं००० ।

प्रणमा [म०] मि दे॰ व॰ ।

य॰ ज्ञो॰ प वी [व] तकं ।

०० ०००० ० ०० ॥३८२॥

तदिमां ग्रहांशकापन्यासभिदां कृतेश (?) विकाराम् ।

कथयति नान्यनरेन्द्रश्चन्द्रं[2] इवानन्दनो जगताम् ॥

(इति) **कार्मारवी** (जातिः) समाप्ता ॥३८३॥

---

(३८२) **i.** कार्मारवी जाति का प्रस्तार **सं० र०** में उपलब्ध है, उसके कुछ अंश के स्वराक्षरों में भिन्नता है। इस प्रस्तार के खंड अर्थात कलाएँ १६ हैं। **सं० र०** के पाठ के प्रारम्भिक कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

१ : री री री री री री री री

२ : मागा सागा सानी नीनी

३ : नीं मां नीं मां पां पां गा गा

४ : गा पा मा पा नी नी नी नी

इत्यादि (I. पृ. २५३, २५४) इस प्रकार प्रत्येक जाति के प्रस्तारों की तुलना करके देखने से भिन्नता का अङ्कन हो सकता है। भरतभाष्य में उपलब्ध प्रस्तारों में कई चरण खण्डित हैं, तो कई चरणों में स्वराक्षरों का अल्पाधिक्य है। शब्दों की स्वरमाला (नोटेशन) भी कहीं–कहीं भिन्न स्थान पर दी गयी है।

ii उपरोक्त प्रस्तार के बीच में "तदिमां ग्रहांशकापन्यासा" इत्यादि श्लोक के अंश **ह० लि०** में आये हैं, जिनको हमने अग्रिम श्लोक ३८३ में सम्मिलित किया है।

---

[1] भि–   [2] न्द्रेष्वन्द्र

अथ **कैशिकी**-लक्षणम् । तत्र सूत्रम्—

"धैवत्यार्षभिकाभ्यां[1] हीनां[2] (खलु) कैशिकी जातिः" इति ॥३८४॥

अथास्याः षड्ज-गान्धारौ तथा मध्यम-पञ्चमौ ।
धैवतश्च निषादश्च षडंशाः परिकीर्तिताः ॥३८५॥
अपन्यासाश्चैत एव न्यासौ गान्धार-सप्तमौ ।
पर्यायेण भवन्त्येते न्यासापन्यासयोः स्वराः ॥३८६॥
षाडवं स्याद्रि-लोपे तु रि-ध-लोपे तथौडुवम् ॥३८७॥

अस्याः स्वर-संनिवेशो यथा—

पा धनिपा धनि गा गा गा गा । पा पा मानि धनि ध पा पा पा । धारी० सा० सा० सा० री० री० री० री० । सा सा सा री गा गा गा गा । मा धा नी धा मा पा । री गा मा ध नि री री री री । गा री मा मा पा धा मा मा । गा गा गा सा मा नी ध नि नी नी । मा मा नी नी गा गा गा गा । गा गा नी नी नि ध पा पा । मा पा नि ध मा धा धा मा मा मा । सा धा मा नि ध नी नी री गा गा ॥३८८॥

अस्यां ब्रह्मोक्त-चतुष्पदी यथा—

"[3]केली-हत-काम-तनु-विभ्रम-विलासं तिलक-युतं
[4]मूर्धोर्ध्व-बाल-सोम-निभम् ।
[5]मुख-कमलमसम-हाटक-सरोजं
[6]हृदि सुखदं प्रणमामि लोचन-विशेषम्" ॥३८९॥

---

(३८४) भ. २८।५४

---

1 क्षिप्रिभिकाभ्यां 2 योगात्
3 कली 4 सरार्धचारुसौम्यनिभं 5 मुखकमलासनाट्टट्टहासकेसरोध 6 स्तभमुखदं

पा ध नि पा ध नि गा गा गा ।
पा पा नि ध नि ध पा पा पा ।
धा नी सा सा री री री री ।
सा सा री गा गा गा गा गा ।
मा धा नी धा मा धा मा पा ।
री गा सा ध नि री री री री ।
गा री पा सा मा धा मा ।
गा गा गा गा मा मा नि ध नी नी नी ॥

के०० ली ह त००० ।
का० म त०० नु०० ०० ।
वि० भ्रमविला० सं ।
तिलकयुतं०००० ।
मू० र्धो र्ध्व० बा० ल ।
सो० म नि० भं००० ।
मुख कमल००० ।
मसम हा००ट ।
क स रो० जं००० ।
हृ दि सुखदं०००० ।
प्रणमामि लोच० ।
न विशे००० षं००० ॥

मा गा री री गा गा गा गा ।
गा गा नी नी नि ध पा पा ।
मा पा मा मा धा पा मा मा ।
सा सा म पा नि ध नी गा गा गा गा ॥३९०॥

भेदानंशैरपन्यासैः[1] कैशिक्याः सप्तविंशतिम् ।
(व्याख्यान्नान्य इति) ख्यात (ः) कीर्तिराजानुजो नृपः ॥
इति [षड्ज-] **कैशिकी** जातिः समाप्ता ॥३९१॥

इति सङ्करोद्भव जाति-प्रकरणं समाप्तम् ॥

(अथ जातयः ।)

श्रुतिभ्यस्तु स्वरा[2] जाताः स्वरेभ्यो ग्राम-सम्भवः ।
ग्रामेभ्यो जायते (जातिर्) जातिभ्यो रागसम्भवः ॥३९२॥

तस्माज्जाति-प्रधानत्वं गान्धर्वेषु व्यवस्थितम् ।
यत्किञ्चिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्मृतम् ॥३९३॥

नाम-लक्षणमेतासां यथावदभिधीयते ।
"षाड्जी चैवार्षभी चैव धैवती च निषादिनी ॥३९४॥

षड्जोदीच्यवती षड्जकैशिकी[3] षड्जमध्यमा ।
गान्धारी मध्यमा चैव गान्धारोदीच्यवा तथा ॥३९५॥

पञ्चमी रक्तगान्धारी तथा गान्धारपञ्चमी ।
मध्यमोदीच्यवा चैव नन्दयन्ती तथैव च ।
कार्मा (र) वी च विज्ञेया तथाऽऽन्ध्री[4] कैशिकी तथा" ॥३९६॥

---

(३९२) ह० लि० पत्राङ्क ६९ से ७४ तक जातियों के विवेचन का कुछ अंश पुनरुक्त हुआ है, जो यहाँ दे रहे हैं । इस में अधिकतर नाट्यशास्त्र के श्लोक उद्धृत हैं ।

(३९४–३९६) भ. २८।४२–४५

---

[1] भेदाः शेरप– [2] स्वरो जता [3] -शा [4] श्री

[ग्र] ग्रहांशौ तार-मन्द्रौ च न्यासो[1]ऽपन्यास एव च ।
अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडुविते तथा" ।
एवमेता बुधैर्ज्ञेया जातयो दशलक्षणाः ॥३९७॥

तत्र ग्रहः ।
जातिषु (ग्रा-) मरागेषु[2] गीते [ष्वका] लयेऽथ वा पुनः ।
यस्तु [3]स्यात्प्रथमालाप-स्वरः[4] स ग्रह उच्यते ॥३९८॥

तथा च **भरतः**—
" ग्रहास्तु सर्व-जातीनामंशवत्[5] परिकीर्तिताः[6] ।
यत्प्रवृत्ते× भवेद्गानं[7] सोंऽशो ग्रह-विकल्पितः" ॥३९९॥

दत्तिलोऽप्याह—
" तत्र ग्रहस्तु गीतादि[8]-स्वरः पूर्व[9]-प्रकीर्तितः" ॥४००॥

देवराजोऽप्याह—" गीतादितो ग्रहः[10] स्यात्" इति ।
अंशवदित्यनेन [11]द्विषष्टि-सङ्ख्यत्वमस्य दर्शितमिति ॥४०१॥

अथांशः[12] ।
तारे मन्द्रे प्रवृत्तौ- - - - - - -प्रचारोपिद्यः (?) ।
[13]ग्रहापन्यास-विन्यास-(न्यास-) संन्यास-गोचरः[14] ॥४०२॥

---

(३९७) भ. २८।७४

(३९९) भ. २८।७५ pb. ×' प्रवृत्तौ '; (४००) द. ५७

---

1 सौ 2 मेषु 3 स्याप्र 4 र 5 शस्तु 6 ता 7 नां 8 दिः 9 वैं
10 ह 11 वि 12 शतारे 13 ग्रहेपि 14 न्यासा गांशकः

तथा च **भरतः**,

"यस्मिन्भवति[1] राग(श्च)यस्माच्चैव प्रवर्तते[2] ।
[3]तेन वै तार-मन्द्राणां [4]योऽत्यर्थं चोपलभ्यते ॥४०३॥
[5]ग्रहापन्यास-संन्यास-(विन्यास-) न्यास-गोचरः ।
परि[6]चार्यः स्थितो यस्तु सोंऽशः स्याद्दशलक्षणः" ॥४०४॥

दत्तिलोऽप्याह–

"योऽत्यन्त-बहुलो यत्र वादी चांशश्च तत्र सः[7]" ॥४०५॥

देवराजस्त्वाह–

"पञ्च-विधोंऽशो भूयात्संवाद्यनुवादिनौ च तौ बलिनौ ।
[8]पञ्च[म-] स्वर-परस्तारो मन्द्रान्तो ग्रह-विमुक्तश्च" ॥४०६॥

[9]यः स्याद् ध्वनावुद्गते [10]रंगव्यक्ति-समाप्तिवाप (?) जातितत्त्वात्तदधिकृत्य तार-मन्द्र-व्यवस्थायां ग्रह-न्यासा-पन्यास-(सं) न्यास-विन्यासावस्थायां यश्च स्वयमेव[11] ॥४०७॥

[12]तार-विवेकमाह–

"अंशात्तार-गतिं विद्यादाचतुर्थ-स्वरादिह ।
[13]आपञ्चमात्पञ्चमाद्वा ना (तः) परमिहेष्यते" इति ॥४०८॥

दत्तिलोप्याह–

'पञ्च[म-] स्वर-परस्तार उच्चैरंशादिहेष्यते' इति ॥

(४०३, ४०४) भ. २८।७६–७८; (४०५) द. १८
(४०८) भ. २८।७९; (४०९) द. ५७

1 वि 2 निवर्तते 3 नैतावतां च मन्द्राणां 4 जात्यर्थं 5 ग्रह 6 च्छ 7 सा
8 पञ्चमस्वरतरे परो 9 यश्चाध्वनावुद्गते 10 रागोद्यक्ति 11 वा 12 ताना 13 अप

अत्र " [1]उरः सप्त-विचारं स्यात्तथा कण्ठस्तथा शिरः " इति ॥४०९॥

क्रमेण मन्द्र-मध्य-तार-स्थान-त्रय-जातेष्वपि प्रत्येकं सप्त-भाग-मुपदर्शयता **नारदाचार्येण** मन्द्र-मध्य-तार-सप्तक-त्रये सर्वत्रैवा-पेक्षिता वा मन्द्र-व्यवस्थाभ्यनुज्ञाता ॥४१०॥

[2]**अथा[र्चे]चार्य भरताचार्या**दिभिरप्यविशेषेण[3] हि " ×अंशा-त्तारगतिं विद्यात् आचतुर्थ-स्वरात् " इति[4] न, [5]जात्यध्याये [6]पञ्चम-निर्देशात् ।

पञ्चम-स्वर-पर इत्यनेन [पञ्चमस्वरभूत इत्यनेन[7]] तारगतिर्वेदित-व्येति ।

'पञ्चमाद्वा' इत्यनेन चतुर्थे पञ्चम-निर्देशात् ।

षष्ठ-स्वरस्यापि तार-गतेरभावो नियत इति । यत्र

नन्दयन्त्यां तत्रापि [8]तार-गतिर्दृश्यते ।

तत्र सूत्रमेव—

" [9]तार-गत्या तु षड्जः स्यात्कदाचिन्नातिवर्तते " इति ॥४११॥×

तथा च **दत्तिलः**,

" [10]आषड्जात् नन्दयन्त्यां तु वरो नातः प्रशस्यते " इति ॥४१२॥

देवराजोऽप्याह—

" एवं च स्वर-प्रस्तारः स [11]तुर्यो भवति नन्दयन्त्यां तु---"॥४१३॥

---

(४०९) ना. शि. १।१।८; × भ. २८।७९

(४११) भ. २८।१५३; (४१२) द. ५८

---

[1] नाराविवारं [2] अथामर्चचार्यौ [3] हिरंशकुत एव [4] इत [5] नियदाध्याये [6] पञ्चमी [7] इत्यतेतत्रार [8] तर- [9] तारगत्यात्तेषांङ्ग पि कदाचिवर्त्तय इति [10] अषड्जं ध च नन्दयन्त्या त्वपरोनातः [11] तुर्थौ

अथ मन्द्रः ।

" मन्द्रस्त्वंशात् परो नास्ति, न्यासे तु द्वौ व्यवस्थितौ ।
गान्धार-न्यास-लिङ्गे तु दृष्टमार्षभ-सेवनम् " ॥४१४॥

दत्तिलोऽप्याह—

" मृदुरंशपरो[1] मन्द्रो न्यासान्तस्तत्-परोऽपि वा " ॥४१५॥

ग्रहादितो न्यास-स्वरमवधिभूतं परित्यज्य[2] इतरांश[3]-स्वरात् मन्द्रः[4] पर इत्युच्यते । अत एव[5] न्यासे परमभूते द्वौ मन्द्रावि (-ति) । एतेन यो यस्यां जातौ स्वरो[6]ऽशः [सुदनं] स[7] एव मन्द्र-त्रिधिरिति । अपरस्तु यत्रादित एव न्यास स्वर-सहितेतरांश-स्वरात् स मन्द्रो न्यास-पर-भूतो भण्यते । तथा न्यास-स्वरादपि यः पुनः स्वरस्तेनैव संग्रहादित एव सर्वांश-स्वर-सहितेतरांश-स्वरात् स मन्द्रो न्यास-पर-भूतो भण्यते । तथा [8]न्यासापन्यासात्मकतया तत्र परो मन्द्र इति त्रिविधो मन्द्र इति । यत्र तु गान्धारांशस्तत्र तु न्यासतः परस्मादपि पर ऋषभ-पर्यन्तं मन्द्रभावो वेदितव्य इति ॥४१६॥

अथापन्यासः[9] ।

अपन्यासस्[10]त्वंशो विदारी-मध्येन जातिशरीरमुच्यते । विदारी च इतर-स्वर-प्रसङ्गेण पृथग्जातौ नोच्चारणमभिमतमिति । तेन जाति-शरीर-मध्ये[11] इत्यनेनापि ताने यत्स्थानित्वमस्य दर्शितम् । ×" अंशमध्ये त्वपन्यासो विदारी-मध्यगस्तथा "

(४१४) भ. २८.८०;   (४१५) द. ५८
× भ. २८।८१

[1] परो भवति [2] ह्य [3] शः [4] मुद्रो [5] वा [6] स्वरांशः [7] त
[8] न्यासस्वान्यासा [9] अथ न्यासः [10] स्त्वंशविदा यो [11] मन्द्र

इति । अन्ये त्वंश-शब्देन ग्रहादितो न्यास[1]-पर्यन्तमपि मन्य-मानास्तन्मध्ये चा[2]पन्यासमनुजानन्ति[3] । सर्व-प्रतिजातिगणनाऽप्याषट्-पञ्चाशत्सङ्ख्यं[4] इति ॥४१७॥

संन्यास-विन्यासावपि अंश-मध्य एव अविवादि-स्वरौ[5] [बहुस्वरौव] जा[6]ति-शरीर-मध्य इत्यनेन ना- - - त एव स्थाने ह्य[7]पन्यासविन्यासौ तु पदावसान-बाहुल्येन प्रयुज्येते[8] । पद-शब्देनात्र[9] जातिर्व्यवस्थिता, कला विधीयत इति । [10]संन्यासस्तदा जा[11]ति-शरीर-समीपे च[12] विन्यासात् संन्यास इत्युच्यते । एतयोश्च न जातिषु प्रयोग-नियम इति । अनियतत्वाच्च जाति—क[13]लान्तरकत्वेन बाहुल्यमिति ॥४१८॥

अल्पत्वं चेत्यपि द्विविधं [नल्पत्वं] लङ्घन-कृ[14]तमनभ्यास[15]-कृतं च । तत्र लङ्घनम् । पृ[16]थगुच्चार्य स्वरान्तरोच्चारणम् ; अनभ्यासं तु बाहुल्येन नो[17]च्चारणं, सुस्वरं द्विस्त्रिरुच्चारणमिति । एतच्चाल्पत्वं षाड- - -द्विविधं जात्यं चौडुवाकृत-[स्वर-कर]-स्वर-विषयमाहुः[18] । स्वर-विषयं च यदाह षाडवौडुविताक्षराणा-मिति ॥४१९॥

बहुत्वं बाहुल्येनोच्चारणमेतदपि द्विविधं, जात्यंश-स्वरकृतमंश-संवादि-स्वर-कृतं च । आभ्यामेवाल्प (त्व-) बहुत्वाभ्यामंशे[19]

---

1 न्यासे 2 चापन्यासा 3 जात 4 प्याषद्यंचाशतसङ्ख्य
5 स्वरा 6 जौति 7 मपन्यासविन्यासस्तु 8 ज्यत 9 त्यत्र 10 सह्यंस
11 जात्यंशश्चर 12 समीपेऽक्ष्य 13 कलय 14 कु 15 भास
16 पृथुगुच्चार्ये 17 नु 18 विषद्यमनाहु 19 मांश

उपजायते, [तत्र---दा जायते।] तत्र (य-) दा जाति-स्वरः[1] षाडवौडुविताकारः पूर्ण-स्वर-दशायां न्यासापन्यास-ग्रह-स्थान-परित्यक्तो न्यास-स्वरस्य समीपेऽथ प्रसज्यते। तदा तदबहुत्वेऽपि सति अनन्तरमंशा[2] यदा तु सङ्कराङ्गे विकृता अंशापर-पर्याये जातिरवस्थिता। न्यास-स्वर-समीपवर्ती वांश-स्वरो[3] न बाहुल्येन भवति, तदा बाहुल्ये सति स्तारमाहुः (?)। गीते ग्रहांशापन्यास-[4] स्थानं सकारकूटो (?) सङ्गतिं न्यास-निकटे भवेदन्तर-[5] मार्गणम्। अथामवचा-(?) न्तरमार्गणं[6] न्यासश्च[7] जातीनामभि-व्यक्तिं जनयति ॥४२०॥

यदाह भरतः,

×" जाति-स्वरैस्तु नित्यं स्याज्जात्यल्पत्वं द्विधा च तत्।"
संचारोंऽश—बल—स्थानमल्पत्वं दुर्बलासु च।
द्विविधान्तरमार्गस्तु जातीनां व्यक्तिकारकः" इति ॥४२१॥

षट्स्वरं षाडवं, पञ्चस्वरमौडुवितं भवेत्, यदैव स्वरस्य लोपे सति तदीय-संवादिना च स्वरेण तत्स्थाने प्रयोगस्तदा षाडव-मुच्यते। एवमुभय-स्वर-लोपे[8] सति तत्स्थाने संवादि-स्वर-सन्नि-वेशादौडुवितमिति ॥४२२॥

× (४२१) नाट्यशास्त्र (ब. प्रति) के अनुसार हमने उपर्युक्त उद्धृत श्लोकों का पाठ दिया है। ह० लि० का पाठ इस प्रकार है:—

" जाति-स्वरार्थे नित्यं स्यात्। जात्यल्प-विधावेतत्। गान्धारांशे चल-स्थानं। अल्पत्वं दुर्बलाश्चतुर्विधानन्तर स्वरमाहुः। सजातीनां व्यक्तिकार" इति ॥

---

(४२१) भ. २८।८२, ८३

---

1 –राः। 2 –मांशा 3 वानं 4 ग्रहाशोपन्यासा 5 भवेदनन्तरमार्ग्रणं
6 तेरमागेपि 7 न्यासस्व 8 भात्रेत्पाद्वी

अथ जातयः ।

"पञ्चांशा च भवेत् षाड्जी निषादर्षभ-वर्जिता ।
अपन्यासो भवेत्तत्र गान्धारः पञ्चमस्तथा ॥
न्यासश्चात्र भवेत् षड्जो [1]लोप्यः सप्तम एव च ॥४२३॥

(षाडवं सप्तमापेतमल्पो वै सप्तमर्षभौ ।
षड्ज-गान्धार-संचारस्तथा धैवत-षड्जयोः ॥४२४॥)

गान्धारस्यात्र बाहुल्यं नित्यं कार्यं प्रयोक्तृभिः" ॥४२५॥

शुद्धैकान्या [2]मापन्यासात् (च) प्रत्येकमतः परम् ।
चतस्रस्तु ग्रहादंशाद्, ग्रहांशाभ्यां तु षोडश ॥४२६॥

अपन्यास-ग्रहांशैस्तु चतुर्विंशतिरीरिताः ।
चत्वरिंशत्तथा भेदाः पञ्चपूर्वा[3]श्च षाडवाः ।
इत्येवं पञ्चनवतिर्भेदाः षाड्ज्याः प्रकीर्तिताः ॥४२७॥

"अथार्षभ्यां भवन्त्यंशा धैवतर्षभ-सप्तमाः
एत एव ह्यपन्यासा न्यासश्च ऋषभः स्मृतः" ॥४२८॥

षड्ज-पञ्चम-हीने तु षाडवौडुविते क्रमात् ।
शुद्धा च [5]निरिधापन्यासात्तथा विकृताः [च] पराः ॥४२९॥

[6]उभे चांशाद्ग्रहांशाभ्या[7]मष्टौ च विकृता मताः ।
अपन्यासात्तथाष्टौ च षाडवौडुव-योगतः ॥४३०॥

(४२३–४२५) भ. २८।११२–११४
(४२८) भ. २८।११५

---

[1] लोपाः सप्त [2] गमकपन्या– [3] प्रकीर्तिताः [4] षड्जे [5] रिगधा
[6] तुभे [7] षाडवे

अष्टादशैव प्रत्येकमार्षभ्यामिति सर्वतः ।
×चतुरुत्तर-पञ्चाशद् भेदा विद्भिरीरिताः ॥४३१॥

" [1]धैवत्यां धैवतर्षभावंशौ न्यास [श्चैव] स्तु धैवतः ।
अपन्यासा भवन्त्यत्र धैवतर्षभ-मध्यमाः ॥४३२॥

षड्ज-पञ्चम-हीनं तु पाञ्चस्वर्यं[2] विधीयते ।
पञ्चमेन विना चैव षाडवं परिकीर्तितम् ॥४३३॥

आरोहिणौ च तौ कार्यौ लङ्घनीयौ तथैव च ।
निषादश्चर्षभश्चैव गान्धारो बलवांस्तथा " ॥४३४॥

[3]शुद्धैका [4]रिधमापन्यासाद[5]न्या [6]च ग्रहादुभे ।
अंशादुभेऽप्यपन्यासादेकादश तथा पराः ॥४३५॥

[7]षाडवौडुव-योगेन प्रत्येकं षोडश स्मृताः ।
[8]धैवत्यामूनपञ्चाशद्भेदा उक्ता मनीषिभिः ॥४३६॥

×(४३१) इसके पश्चात् निम्नोद्धृत श्लोक हैं, जो आगे पुनरुक्त हुए हैं :—

" मदीन तु पांचपुर्यं विधीयते ।
पञ्चमेन विना चैव षाडवं परिकीर्तितं ॥
आरोहिणौवितौ कार्यो लंघनीयौ तथैव च ।
निषाद चष्वर्षभश्चैव गान्धारो बलवांस्तथा ।
शुद्धा एका मपधाषान्यासादन्याव ग्रहादुभे ॥
अंशादुभे पापन्यासादेकादशतवा पराः षाडवोडव योगेन ॥छ॥ "

(४३२-४३४) भ. २८।११८-१२०

---

1 धैवभ्यां 2 पांचपुर्यं 3 शुद्धा एका 4 ऋ 5 –व 6 व 7 णाडयोप
8 धैवत्यामौन—

" निषादिन्यां [1]निषादोंऽशो [2]गान्धारस्त्वर्षभः स्मृतः ।
एत एव [3]ह्यपन्यासा न्यासश्चैवात्र सप्तमः ॥४३७॥

धैवत्या इव कर्तव्ये षाडवौडुविते क्रमात् ।
तद्वच्च लङ्घनीयौ×द्वौ बलवन्तौ तथैव च " ॥४३८॥

[4]शुद्धा नैषादिनी [5]चापन्यासाच्च वैकृता [6]तथा ।
प्रत्येकं च ग्रहांशाभ्यामुभे चैव ग्रहांशकैः ॥४३९॥

चतस्रोऽष्टावपन्यासाद् विकृताः षाडवौडुवैः ।
अष्टादशैव प्रत्येकं निषादिन्यां प्रकीर्तिताः ।
चतुरुत्तर-पञ्चाशद्भेदा गान्धर्व-वेदिभिः ॥४४०॥

" अंशास्तु षड्जकैशिक्यां षड्ज-गान्धार-सप्तमाः ।
अपन्यासा भवन्त्यत्र षड्ज-सप्त (म) पञ्चमाः ॥४४१॥

गान्धारश्च भवेन्न्यासो [7]हैन-स्वर्यं न चात्र तु ।
दौर्बल्यं चात्र कर्तव्यं [8]धैवतस्यर्षभस्य च " ॥४४२॥

धैवते च निषादे च शुद्धे [9]चाधिक्यमिष्यते ।
शुद्ध-[10]भेद (स्तु) नास्तीति भेदाः स्युस्त्रय एव हि ॥४४३॥

" स्युः षड्जोदीच्यवत्यंशा[11] निषादो धैवतस्तथा ।
षड्जश्च मध्यमश्चैव न्यासश्चैव तु मध्यमः ॥४४४॥

(४३७, ४३८) भ. २८।१२१, १२२ × pb. 'तु'
(४४१, ४४२, ४४४) भ. २८।१२३–१२५ pb.

---

1 निषादोंसिस 2 गान्धारर्षर 3 मप 4 शुद्धोका धैवती 5 पान्या वैकृता
6 यदि 7 हैनश्चैर्यं 8 मध्यम 9 स्याधिक्य 10 मन्र 11 च्यवशानि

अपन्यासो[1] भवत्यस्यां धैवतः षड्ज एव च ।
परस्परं गमनमत्रां[2] [मं] शानां च विधीयते ॥४४५॥

पञ्चमर्षभ-हीनं तु पाञ्चस्वर्यं[3] विधीयते ।
मन्द्र-गान्धार-बाहुल्यं[4] षाडवं[5] चर्षभं विना " ॥४४६॥

पूर्णाश्चत्वारो, धांशे चापवादात् षाडवास्त्रयः ।
चत्वार औडुवाश्चेति भेदा एकादशैव[6] तु ॥४४७॥

" सर्वेऽंशाः षड्जमध्याया अपन्यासास्त एव च ।
षड्जो वा मध्यमो वापि न्यासः कार्यः प्रयोक्तृभिः ॥४४८॥

गान्धार-सप्तमापेतं पाञ्चस्वर्यं[7] (तु) तत्र वै ।
षाडवं सप्तमापेतं चात्र कार्यं मनीषिभिः ।
सर्व-स्वराणां संचार इष्टस्तस्यां[8] प्रकीर्तितः " ॥४४९॥

पूर्णाः सप्त, निगांशे [छे तु] ऽपवादात्तु षाडवौडुवाः[9] ।
प्रत्येकं पञ्च पञ्चेति भेदाः सप्तदशैव तु ॥४५०॥

" गान्धार्याः पञ्च[10] स्युरंशा धैव-[तु] तर्षभ-वर्जिताः ।
अपन्यासो भवेच्चात्र[11] षड्जः पञ्चम एव च ॥४५१॥

गान्धारोऽत्र[12] भवेन्न्यासः षाडवं चर्षभं विना ।
ऋषभ-धैवतापेतं तथा चौडुवितं[13] भवेत् ॥४५२॥

(४४५, ४४६) भ. २८।१२६, १२७
(४४८, ४४९) भ. २८।१२८-१३०
(४५१, ४५२) भ. २८।१३१-१३३

---

1 न्यासा 2 गमनंशानां 3 पांचसूयी 4 मंडगांबर 5 षाडगंस्यादर्षभं 6 एवा-
7 याव- 8 -तश्च 9 -विः 10 पंचेर्वंशा 11 भवेछात्र 12 -रे च 13 वौड-

×(लङ्घनीयौ च तौ नित्यमृषभो धैवतं व्रजेत् ।)
+गान्धार्यां विहितस्त्वेष स्वर–न्[1]यासांश-संचरः ” ॥४५३॥

शुद्धैका च [2]सपापन्यासादन्या विकृतोभयात् ।
चतस्रस्तु ग्र-(हे-) णैव चतस्रश्चांशतः स्मृताः ॥४५४॥

षोडशैव ग्रहांशाभ्यामपन्यास–ग्रहांशकैः ।
चतुर्विंशतिरेव स्युः पञ्चमांशेऽपवादतः ॥४५५॥

चत्वरिंशत्तथा पञ्च षाडवाः परिकीर्तिताः ।
इतरांशेऽपवादे च गांशे [3]पञ्चौडुवा मताः ।
गान्धार्यामिति भेदास्तु शतमेकं प्रकीर्तिताः ॥४५६॥

“ मध्यमाया भवन्त्यंशा विना गान्धार-सप्तमौ ।
एत एव ह्यपन्यासा, (न्यास) एव तु मध्यमः ॥४५७॥

गान्धार-सप्तमापेतं पञ्चस्वर्यं विधीयते ।
[4]षाट्-स्वर्यं [5]चाप्यगान्धारं कर्तव्यं तु ×प्रयत्नतः ॥४५८॥

षड्ज-मध्यमोश्चात्र कार्यं बाहुल्यमेव च ।
गान्धार-लङ्घनं चात्र नित्यं कार्यं प्रयोक्तृभिः ” ॥४५९॥

शुद्धा, [6]ग्रहाच्चतस्रस्तु चतस्रश्चांशतः स्मृताः ।
ग्रहांश-विकृताश्चापि षोडशैव प्रकीर्तिताः ॥४६०॥

× यह श्लोकार्ध ह० लि० प. ७४ में पुनरुक्त अंश में आया है ।

---

(४५३) भ. २८।११५ +pb. ‘ स्वर-न्यासांश-गोचरः । ’ (**बरोडा**)
(४५७–४५९) भ. २८।१३९–१४१ ×pb ‘ प्रयोगतः ’

---

1 न्यासां स 2 समाप 3 षं वाडवौनता 4 षो - - र्यं 5 चाथ 6 ग्रहाश्च

षाडवौडुव-योगेन प्रत्येकं पञ्चविंशतिः ।
मध्यमायामिति प्रोक्ताः प्रभेदाः पञ्चसप्ततिः ॥४६१॥

"गान्धारोदीच्यवांशौ[1] च विज्ञेयौ षड्ज-मध्यमौ ।
पाञ्च-स्वर्यं न चास्त्यत्र षाट्[2]-स्वर्यमृषभं विना ॥४६२॥

अस्यास्त्वल्प-बहुत्वस्य न्यासा[3]पन्यासयोस्तथा ।
यः षड्जोदीच्यवायास्तु स सर्वो हि विधिः स्मृतः" ॥
द्वौ पूर्णौ, षाडवौ द्वौ तु भेदाश्चत्वार एव तु ॥४६३॥

"द्वावंशा[4]वथ पञ्चम्या ऋषभः[5] पञ्चमस्तथा ।
सनिषादावपन्यासौ न्यासश्चैवात्र पञ्चमः ॥४६४॥

मध्यमावच्च कर्तव्ये षाडवौडुविते क्रमात् ।
दौर्बल्यं चात्र विज्ञेयं षड्ज-गान्धार-मध्यमैः ।
कुर्यादयस्यां च [6]संचारं पञ्चमस्यर्षभस्य च ॥४६५॥

[गान्धार-गमनं चैव कार्यमल्पं च पञ्चमेः" ।]
गान्धार-गमनं चैव कार्यमल्पश्च सप्तमः ॥४६६॥

शुद्धा ग्रहादुभे द्वे च तथांशेन मताः पुनः ।
अपन्यासेन विकृता द्वादशैव प्रकीर्तिताः ॥४६७॥

षाडवौडुव-भेदेन प्रत्येकं द्वादश स्मृताः ।
पञ्चम्यास्तु[7] चत्वरिंशत्प्रभेदाः संप्रकीर्तिताः ॥४६८॥

(४६२, ४६३) भ. २८।१३७, १३८
(४६४, ४६५) भ. २८।१४३–१४५

---

1 च्यवाश्चांशौ 2 -ष--यी 3 अंशा 4 द्वावश्यावप्र 5 वृषभः
6 धारं 7 म्याति

" लक्षणं रक्तगान्धार्या गान्धार्या[1] इव कीर्तितम् ।
बलिनौ[2] भवत-[था]श्चात्र धैवतः सप्तमस्तथा[3] ॥४६९॥

गान्धार-षड्जयोश्चात्र [4]संचारश्चर्षभं विना ।
अपन्यासस्तथा चात्र एको[5] वै मध्यमः स्मृतः " ॥४७०॥

संपूर्णाः पञ्च, चत्वारः षाडवाः पांश-वर्जिताः ।
गांश एवौडुवं[6] चेति दश[7] भेदाः प्रकीर्तिताः ॥४७१॥

" अथ गान्धारपञ्चम्याः पञ्चमोऽशः प्रकीर्तिताः ।
पञ्चमश्चर्षभश्चैव ह्यपन्यासौ प्रकीर्तितौ ॥४७२॥

न्यासश्चात्र तु गान्धारः, °सा च पूर्ण-स्वरा भवेत् ।
×(गान्धार-पञ्चमाभ्यां तु संचारोऽत्र विधीयते) " ॥४७३॥

एक एवात्र संपूर्णो भेदः स्यात् सद्भिरीरितः ॥४७४॥

" मध्यमोदीच्यवायास्तु पञ्चमोऽशः प्रकीर्तितः ।
शेषो विधिश्च कर्तव्यो गान्धारोदीच्यवां[8] गतः " ॥४७५॥

एक एवा-[व]थ संपूर्णः सद्भिर्भेदो निगद्यते ॥४७६॥

° (४७३) **निर्णयसागर** संस्करण (पृ. ४५१, श्लो. १४७) में " स च पूर्ण-स्वरो भवेत् " मुद्रित है, जो अपपाठ है ।

× (४७३) **बरोडा** संस्करण में (IV, पृ. ६१, श्लो. १२८) :—
" पञ्चम्या यश्च गान्धार्याः सञ्चारः स विधीयते । " यह पाठ स्वीकृत है ।

(४६९–४७०) भ. २८।१३५, १३६ pb.
(४७२, ४७३) भ. २८।१४६–१४७; भ. २८।१४२

---

[1] गान्धार [2] चलितौ [3] पञ्चम [4] गान्धारस्तूषभं [5] एकांशो [6] एव ओडव
[7] दथतेभ्यः [8] मध्यमायास्तु सः स्मृतः

"नन्दयन्त्याः क्रमान्न्यासस्त्वपन्यासोंऽश एव च।[1]
गान्धारो मध्यमश्चैव पञ्चमश्चेति नित्यशः ॥४७७॥

षडजेनांशो[2] लङ्घनीयं[3] आन्ध्री-संचारं[4] इष्यते।
लङ्घनमृषभस्यात्र तच्च[5] मन्द्र-गतं स्मृतम् ॥४७८॥

तार-गत्या तुं[6] षड्जस्तु कदाचिन्नातिवर्तते।
गान्धारश्च ग्रहः कार्यस्तथा न्यासश्च नित्यशः" ॥४७९॥

संपूर्णा एव चत्वारो भेदास्त- (स्याः) प्रकीर्तिताः ॥४८०॥

"कार्मारव्याः स्मृतास्त्वंशा ऋषभः पञ्चमस्तथा।
धैवतश्च निषादश्चाप्यपन्यासास्तथैव च ॥४८१॥

पञ्चमश्च भवेन्न्यासो हैन-स्वर्यं न चात्र तु।
गान्धारस्य विशेषेण सर्वतो गमनं भवेत्।
नित्यपूर्णतया चात्र भेदाश्चत्वार एव हि" ॥४८२॥

तथा इसी का **भ.** पाठान्तर :—

"गान्धारी-पञ्चमीभ्यां तु संचारः संविधीयते।"

मुद्रित है। ये दोनों पाठ अनर्थकारक है, क्योंकि गान्धारी जाति में ऋषभ-धैवत का संचार निर्दिष्ट है :—"आर्षभाद् धैवतं व्रजेत्" एवं पञ्चमी जाति में ऋषभ से पञ्चम तक संचार का नियम कहा है :—

"कुर्यादप्यत्र संचारं पञ्चमस्यार्षभस्य च।" (IV, पृ. ६०, श्लो. १२६) दोनों श्लोकों में 'आर्षभाद्' एवं 'आर्षभस्य' के स्थान पर "ऋषभाद्" तथा "पञ्चमस्यर्षभस्य च" होना चाहिए।

उपरोक्त श्लो. ४७३ की द्वितीय पङ्क्ति, हमने शुद्ध करके कौंस में डाली है, क्योंकि ह० लि० में वह अनुपलब्ध है।

(४७७–४७९) भ. २८।१५१–१५३
(४८१, ४८२) भ. २८।१५४,१५५

---

1 क्रमान्यासे उपन्यासौ स 2 षड्जो न्यासो 3 यो 4 नात्रपंच 5 छ 6 न्नु

"[1]आन्ध्र्याश्चत्वार एवांशा ऋषभः पञ्चमस्तथा ।
गान्धारश्च निषादश्चाप्यपन्यासास्त एव च ॥४८३॥

गान्धारश्च भवेन्न्यासः षड्जापेतं च षाडवम् ।
[2]गान्धारर्षभयोरत्र [3]संचारस्तु परस्परम् ॥४८४॥

[4]सप्तमस्य च [5]षड्जस्य [6]न्यासो [7]गत्यनुपूर्वशः ॥
षड्जस्य [8]लङ्घनं कार्यं [9]नास्ति चौडुवितं सदा" ॥४८५॥

पूर्णाश्चत्वार एवात्र तावन्तः षाडवाः स्मृता ।:
एवमष्टौ संप्रयुक्ता भेदा गान्धर्व-वेदिभिः ॥४८६॥

"[10]कैशिक्यंशास्तु विज्ञेया [11]स्वराः सर्वेऽर्षभं विना ।
एत एव ह्यपन्यासा, न्यासौ गान्धार-सप्तमौ ॥४८७॥

धैवतेंऽशे निषादे च न्यासः पञ्चम इष्यते ।
अपन्यासः कदाचिच्च ऋषभोऽपि भवेदिह ॥४८८॥

[12]आर्षभ्यं षाडवं चात्र, धैवतर्षभ-वर्जितम्[13] ।
तथा चौडुवितं कार्यं, बलिनौ षड्ज-पञ्चमौ[14] ॥४८९॥

[15]"दौर्बल्यमृषभस्यात्र लङ्घनं च विशेषतः ।
[16]षड्जमध्यावदत्रापि [17]संचारस्तु भवेदिह" ॥४९०॥

(४८३–४८५) भ. २८।१४८–१५०
(४८७–४९०) भ. २८।१५६–१५९

---

1 अथान्ध्र्या 2 गान्धार्षभयो 3 चत्वारस्तु 4 सप्तस्य 5 षष्ठस्य
6 व्यत्यासो 7 गी 8 लक्षणं चात्र 9 न्यास्तौडवितं यय 10 कैशिकांशा
11 स्वभास्तु रुषभं विना 12 ऋषभं 13 धैवतं च भवन्ति तं 14 धैवतो तथा
15 दर्विल्प 16 षड्जमध्यम 17 सत्कारस्तु

पूर्णाः [1]षट्, षाडवाः पञ्च, पञ्च चौडुविता अपि ।
षोडशैते प्रभेदास्तु कैशिक्याः संप्रकीर्तिताः ॥४९१॥

जातयोऽष्टादशेत्येवं लक्षणैः परिकीर्तिताः ।
[3]अंश-भेदाच्च विकृताः कदाचिज्जातयः स्मृताः ।
[4]नामकारी स्वरो यासामंशापन्यासयोर्ग्रहे ॥४९२॥

मन्द्रश्च नियतो [5]न्यासस्ताः शुद्धाः संप्रकीर्तिताः ।
नातिशुद्धैव तु [6]न्यासे मन्द्रस्यानियमादिह ॥४९३॥

इतर-स्वर-संयोगादपन्यासांशक-ग्रहे ।
द्वयोरेकत्र बहुषु लोपाच्च विकृता मता ॥४९४॥

ग्रहेण विकृतिश्चात्र [7]परावौडुव-षाडवौ ।
संसर्गजाः पुनर्द्वि-त्रि-चतुर्जाति-समुद्भवाः ।
एकादशैव संप्रोक्ता [8]जातयो जातिवेदिभिः ॥४९५॥

तथा च **भरतः**,

"शुद्धा अन्यून-स्वराः (स्व-)स्वरांश-ग्रह-न्यासाः एषामन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वापि लक्षणैर्विक्रियामुपगता न्यास-वर्जं विकृत-संज्ञा भवन्ति । तेन ता एव शुद्धास्ता एव च विकृताः । न्यास-विधावप्यासां मन्द्रो नियमाद् भवति शुद्धासु, विकृतासु अनियमात् । तत्र एकादश संसर्गजा विकृताः । ×परस्परं संयोगाद् एकादश निर्वर्तयन्ति ।" ॥४९६॥

---

(४९६) इस अंश का पाठ ह० लि० में निम्नप्रकार उपलब्ध है : —

---

(४९६) भ. २८।४६, pb. ×'अपरस्पर–संसर्गाद्' (बरोडा २८।४६)

---

[1] षड्जभवा [2] न्यपि [3] अंशा - - श्च [4] ताप्रकरी [5] न्यासे [6] न्यासो
[7] पराप्योडव [8] जातये

तथा च दत्तिलः

" शुद्धा विकृताश्चैव हि समवायाज्जातयस्तु जायन्ते ।
ता एव शुद्ध-विकृता भवन्ति चैकादशान्यास्तु " ॥४९७॥

स्व-स्वरांश-ग्रह-न्यासा, न्यासे च [1]नियता मन्द्राः ॥४९८॥

[प-ओ] "जातयोऽष्टादशेत्येवं तासां सप्त-स्वराख्यया ।
[2]शुद्धाश्च विकृताश्चैव शेषास्तु सङ्करोद्भवाः ॥४९९॥

तद्ग्रहा तदपन्यासा तदंशा च यदा भवेत् ।
मन्द्र-न्यासा च पूर्णा च शुद्धा जातिस्तदोच्यते" ॥५००॥

- - - - - - - - - - - - -विकारस्तु चतुर्विधः ।
अंशान्यत्वं (ग्रहान्यत्व-) मपन्यासान्यत्वं [3]लोपश्चेति, न्यासे तु मन्द्र - - [4]नियमात् इति ॥५०१॥

यथा स्वसा (?) सुबहवो भेदा अंश-ग्रहोद्भवाः ।
[5]न्यासोत्पत्ति-निमित्तानि जायमानान्यपि स्फुटम् ॥५०२॥

" शुद्धा एषामन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिधलक्षणैः ।
विक्रयामपमुपगतास्ता एव विकृताः ।
न्यासविधोनात्र नियमोत् शुद्धाशुद्ध विकृतासु नियम इति
एकेदशधान्याः संसर्गजा विकृताश्च परस्परसंसर्ग निर्वत्या इति ।"

(४९७) ग्रंथ में यह श्लोक दत्तिल का कहा है, परन्तु यह श्लोक भरत का है। इस श्लोक का पाठ ह० लि० में नीचे के अनुसार दिया हुआ है:—

" शुध्द्य—विकृताश्चैव समवाया जातयस्तु जायन्त ।
पुनरेतेषुच्च विकृता भवन्ति चैकादशान्यास्तु ॥ "

---

(४९७) भ. २८।४६
(४९९) द. ४८ (५००) द. ६२

---

1 विनयत 2 शुद्धाशु 3 लोपाश्चेति 4 नियम 5 नासो

एकादशेति ब्रह्मोक्त-नियमात्[1] कथिताश्चैते ।
तथापि शुद्ध-जातीनां नाभेदो यत्रास्थिता: (?)
ऊहनीयास्तु विद्वद्भिः (भेदाः) संसर्ग-जातिषु ॥५०३॥

×[धैवत्यामूनपञ्चाशद्भेदा उक्ता मनीषिभिः ।
निषादिन्यां निषादोऽशः सगान्धारर्षभः स्मृतः ॥५०४॥

एत एवमपन्यासा न्यासश्चैवात्र सप्तमः ।
धैवत्या इव कर्तव्ये षोडवौडविते क्रमात् ॥५०५॥

तद्वच्च लङ्घनीयौ द्वौ बलवन्तौ तथैव च ।
शुद्धैका धैवतपान्यासेनचान्या वैकृता यदा ॥५०६॥

प्रत्येकं च ग्रहांशाभ्यां उभौचैव ग्रहांशकौ ।छ।
चतस्रोष्टावपन्यासा विकृता षाडवौडवैः ॥५०७॥

अष्टादशैव प्रत्येकं निषादिन्यां प्रकीर्त्तिताः ।
चतुरुत्तरपञ्चादशद्भेदा गान्धर्ववेदिभिः ॥५०८॥

अंशास्तु षड्जाकेशिक्याः बहुगांधारसप्तमाः ।
अपन्यासा भवन्त्यत्र षड्जसप्तमपञ्चमाः ॥५०९॥

गान्धारश्च भवेन्न्यासे हैनश्चर्यं नचात्र तु ।
दौर्बल्यं चात्र कर्तव्यं मध्यमस्यर्षभस्य च ॥५१०॥

---

(५०३) इसके आगे अलङ्काराध्याय के 'वर्णा एव हि जातीनाम्' से 'षोडश स्मृताः' तक पाँच श्लोक **ह० लि०** पृ. ७४ में आये है, जो **भ० भा०** खण्ड १, पृ. १३५ पर मुद्रित हैं।

× (५०४–५२६) ये श्लोक ऊपर आये हुए श्लोक ४३६–४५८ की पुनरुक्ति है। **ह० लि०** पत्र ७४ पर ये श्लोक लिखित हैं। शुद्ध नही किये हैं।

---

[1] नियमात्र

धैवते च निषादे च शुद्धेस्या द्विक्य मिष्यते ।
शुद्धमत्र नास्तीति भेदाः स्यु स्त्रया एव हि ॥५११॥

स्युः षड्जोदीच्यवः ज्ञातिनिषादो धैवतस्तथा ।
षड्जश्च मध्यमश्चैवन्यासश्चैव तु मध्यमः ॥५१२॥

अपन्यासो भवत्यस्या धैवतः षड्ज एव च ।
परस्पर गमनंशानां च विधीयते ॥५१३॥

पञ्चमर्षभहीनं च पञ्चस्वर्यं विधीयते ।
मन्द्रगान्धार-बाहुल्यां षाडवस्यादर्षरं विना ॥५१४॥

पूर्णाश्चतुष्टा यथांशो अपवादो षाडवास्त्रयः ।
चत्वारडवा ति भेदा एकादशैव तु ॥छ॥५१५॥

सर्वे इंशाषड्ज मध्यमायामपन्यासास्त एव च ।
षड्जो वा मध्यमो वापि न्यासः कार्यः प्रयोक्तृभिः ॥५१६॥

गान्धारसप्तमापेतं पाञ्चस्वर्यं च तत्र वै ।
षाडवं सप्तमापेतं अत्र कार्यं मनीषिभिः ।
सर्व स्वराणां संचारि इष्टश्च प्रकीर्त्तितः ॥५१७॥

पूर्णाः सप्त निगा अंशाद्वतु पवादा तु षाडवौडावि ।
प्रत्येकं पञ्चपञ्चेति भेदा सप्तदशैव तु ॥५१८॥

गान्धा . . . चैवांशा धैवतर्षभ वर्ज्जिता ।
अपन्यासो भवेच्चात्र षड्जपञ्चम एव च ॥५१९॥

गान्धारे च भवेन्न्यासः षाडवं चर्षभं विना ॥छ॥
ऋषभ धैवतापेतं तथा चौडवितं भवेत् ॥५२०॥

१९

लंघनीयौ च तौ नित्य ऋषभा धैवतं भवेत् ।
गान्धाय विहितस्त्वेष स्वरन्यासांश सातरः ॥५२१॥

शुद्धैकावसमापन्यासादन्य विकृता मताः ।
ततप्रस्वग्रहेणेव चतस्रश्चांशतः स्मृताः ॥५२२॥

षोडशैव ग्रहांशाभ्यामपन्यास ग्रहांशकाः ।
चतुर्विंशतिरेवस्युः पञ्चमांशेपवादतः ॥५२३॥

चत्वारिंशत्तथा पञ्चषाडवाः परिकीर्त्तिताः ।
इतरांशेपवादे च गांशेपावौडवा मताः ।
गांधार्यामिनि भेदास्तु शतमेकं प्रकीर्त्तिताः ॥५२४॥

मध्यमायांभवत्यंशा विना गांधारसप्तमौ ।
एत एव मपन्यासान्यास एव तु मध्यमा ॥५२५॥

गांधारसप्तमोपेतं पञ्चस्वर्यं विधीयते ।
षोडार्यंचाथ गांधार कर्तव्यं नु प्रयत्नतः ॥५२६॥]

११. एकादशं कपाल-पाणिका-प्रकरणम्

(अथ सप्त कपालानि, तेषां स्वर-पद-क्रमश्च—)

सम्प्रति जाति-शरीरान्तर्भूततया कपाल-पाणिकायाः ।
मुनि-वचन-लोचनीया[1] वयमेव तल्लक्षणं निबध्नीमः[2] ॥५२७॥

रागोत्पत्तिं[3]-निदानं[4] शुद्धा [5]विकृताश्च जातयो[6]ऽत्र यथा ।
[7]अनयोरपि कारणता प्रतिपत्तव्या[ः] तथा तज्ज्ञैः[8] ॥५२८॥

(५२६) पुनरुक्त जाति-वर्णन का प्रकरण यहाँ संपूर्ण होता है ।

1 नाया 2 ध्नीम 3 त्तिः 4 न 5 विकृभा 6 याः 7 अनाया 8 भज्ञैः

सप्त (-प्रकारम्) एव[1] कपालं[2] जातिषु शुद्धासु दर्शितं[3] मुनिना ।
शुद्ध-विकृतासु चाष्टादशसु पुनः पाणिका ज्ञेयाः ॥५२९॥

अत्र च यद्यपि[4] कपालं त्रयोदशेति कपालस्य त्रयोदशकलत्वं (कथितं) मुनिना, तथाप्येतद्गान्धर्व-प्रयोग-वि(हि)त-परस्पर-गीयमान-स्वर-पद-क्रमैरष्ट[5]-नव-द्वादश-कलं[6]वल्लिख्यते ।

यथा—(षाड्जी-कपालम्)—

- - - -[7]षड्ज एव ग्रहस्तथांशोऽप्यपन्यासः ।
गान्धारो न्यासः स्यादतिबहलत्वं तथा ग[8]-म-स्वरयोः ॥५३०॥

पञ्चम-निषाद-धैवतर्षभाणामत्र चा[9]ल्पता ।
ऋषभस्तु लङ्घनीयः[10] काले च काले च ॥५३१॥

द्रासिपुत्तिका-हलिदारिमत्तोरि-मुद्गर-कपाल (?)
द्वादशकलं कपालं पूर्णं षाड्ज्यास्तदाह नान्यपतिः ॥५३२॥

अथ स्वर-पदाभ्यां षाड्जी-कपालं यथा—

सासासासा गा गा गा सा० स० । मग मग मा पा मग मग सासा । पा धनि सरि सासासासा । धनिपध गागागागा सा गा गा रिग पा गा गा सा सा पा धा नी सरि सा सा सा । गा गा री गा पा प म प प म सा० पा धा नि गरीगा सा गा सा मा गारी मा मप मा मा मा । मा पा मा पा माप रिग रिग सास निग रि नि गारि निगारि सा सा सा सा ॥५३३॥

---

1 सेव 2 भं 3 भं 4 यत्प 5 मैष्ट 6 काल 7 खड्गे 8 गमत्व
9 चाल्पभाराचतं 10 यो

पदं यथा—

+क्रष्टुं० ऋण्डुं खट्वाङ्गधरं००० दं० ष्ट्रा०
करालं० तडित्सदृश-जिह्वं[1][2] ॥ हौ हौ हौ हौ हौ हौ हौ हौ ।
बहु-रूप-वदनं[3] । घनघोर-नादं ।
हौ हौ हौ हौ हौ हौ हौ हौ [हौ] ×ओं ओं रौं
हौं हौं हौं हौं [हौं] । [4]नृमुण्डमण्डितं ।
हूं हूं कह कह हूं (हूं) । कृतं[5]—
-विकट-मुखं नमामि देवं [6]भैरवम् ।
इति षाड्जी-कपालं (समाप्तम्) ॥५३४॥

अथ **आर्षभी-कपाल**-लक्षणम्—

ऋषभो ग्रहस्तथांशोऽपन्यासः स्याच्चं[7] यत्र खलु नियमात्[8] ।
मध्यमं[9] एव न्यासः प-नी ध-गौ स्वरावल्पौ ॥५३५॥

[10]अप्यत्र षड्ज एव स्वरो [11]भवत्यल्पताम्, अनभ्यासात् ।
[12]तदिदमष्ट-कलं कपालं विज्ञेयं विद्भिरार्षभ्याः ।
षड्जग्रामे आर्षभी [स] कपाल-पाणिका मश्चेमदोहन (?)
देश्यां[13] मधुकर्यां[14] (च) गीयते ॥५३६॥

कपाल-स्वर-पदक्रमो[15] यथा—

री री मा मा मा प मा पा री री ध नि पा नि ध री री री री
री री री मा गा री री री री मा गा री सा नी नी नी नी नी
नी धा नी पा री री री री ।

---

(५३४) सं० र० pb +झण्टुं झण्टुं । × ॐ ॐ

---

1 तत 2 व्हाम् 3 सपनं 4 त्रिखण्ड 5 ती 6 भौ 7 च्चै 8 न्
9 मन्यम 10 अपिअत्र 11 दिवा 12 त इद 13 श्यां 14 र्यां 15 भ्रतो

×[वर व सुरभिकुसुम] री री मा मा पा पा ध मा धा नी पा नी री री री री री गा री पा री ग म पा पा ॥५३७॥

झण्टुं[1] झण्टुं [2]दंष्ट्रा०० करालं० ।
तडित्सदृशजिह्वम् । ०[खट्वाङ्गधरम् ओं ओं हौ हौ[3] हौ हौ हौ हौ ।] हौ हौ हौ हौ[4] हौ हौ हौ हौ । वर [व] सुरभि-कुसुम [5]चं०र्चित गा०० त्रं० । क० पालहस्तं०० । नमा० मि दे०० वम् ॥ इति आर्षभी-कपालं समाप्तम् ॥५३८॥

(अथ गान्धारी-कपालम्—)

० अप्यत्र मध्यमः स्यान्न्यासोऽपन्यासको[6] ग्रहश्चैव ।
अंशो धैवत एवं यस्मिन्नल्पाः[7] स्वराः सरिगाः[8] ॥५३९॥

रि-प-हीनौडुवित-कृतं[9] मध्यम-जाति-स्वरैः समार (ब्धम्) ।
×विद्यादष्टकलं तत्[10] कपालमिह शुद्धगान्धार्याः ॥५४०॥

मध्यमग्रामे गान्धारी [11]स-कपाल-पाणिका गान्धारपञ्चमेन[12] देश्यां[13] वेलावल्यां[14] (च) गीयते ॥५४१॥

× गीत का यह अंश स्वरलेख के बीच में ह० लि० में आया है। इसको हमने कं० ५३८ में गीत के साथ जोड दिया है।

०यह खण्ड सं० र० में उपलब्ध नहीं है।

० (५३९) pb. 'मध्यमोंऽशो' ('गान्धारोंऽशो') 'धैवतो बहुः' सं० र० (I पृ. २७६)

× (५४०) 'अष्टकलं तं' और 'कपालमिह' के मध्य में गीत के शब्द 'विं० भगा - - - - दे ०० वां०' ह० लि० में आये हैं।

1 स० णं० ०० स० णं 2 दंष्ट्रा०० 3 त्रौं 4 पा 5 विं० म गा०० त्रं०
6 स्यान्यासोपन्यासके 7 ल्पे 8 णः 9 डवकृतं 10 ताच 11 सा 12 नि
13 श्यां 14 ल्यां

कपाल (-स्वर-पद-क्रमो) यथा—

मा धा धानी धापामागा। नीगामा। नी धा धा धनी। धा धा पा मा सागासा धा। धा धा नी गा मा मा मामामा नी धानी सासासासा। पा धा गा गा सा गा सा धा। धा धा नी गा मामा मा मा ॥५४२॥

×चलत्तरङ्ग। -भङ्गुरम्। अनेकरेणु-। पिञ्जरं सु-। रासुरैः सुसेवितं पु-। नातु जाह्न॥ - वी-जलम्॥ मां बिन्दुभिः॥ इति गान्धारी-कपालं समाप्तम् ॥५४३॥

(अथ मध्यमा-कपालम्—)

अथ मध्यम-स्वरांशं[1] मापन्यासं मध्यम-ग्रहं[2] चैव।
धैवत-बाहुल्य-युतं प्रवील (?) षड्ज-स्वरेण संयुक्तम्[3] ॥५४४॥
युतमल्पतया गान्धारर्षभ-पञ्चम-निषादानाम्।
पूर्ववन्नव-कलमेव कपालमपि विद्धि मध्यमा-जातेः ॥५४५॥
चो(-क्ष-)षाडवेन देश्या [4]चान्धालिकया गीयतेऽत्र जातिरियम्
॥५४६॥

[स-कपाल-पाणिका] कपाल-स्वर-पद-क्रमो यथा—

मामारी गारी मारीसा। मामामामा मरिग मामा धापा धा धा धा धा रीगा। मामामामामासामामा धा धा माप ध निपा मामामामा। सासापधपा धा धा धा धा पानि धनि ध ध म

(५४३) ×इसके पूर्व श्लो. ५४४ के प्रारम्भिक शब्द 'अथ मध्यमस्वरां' ह० लि० में आये हैं।

1 शे 2 भ्रमग्रह 3 क्तां 4 म

पा मामामामामामा रिग पग सारीरीरीरी। नी धधनि स धनिपा ॥५४७॥

शू० ल० कपालपाणि त्रिपुर वि० ना शि[1] शशाङ्क धा० रिणम्।
[2]त्रिनयनत्रिशू० लं सतत० मुमया [3]सहि।
० तं वर (दं)[4]हौ हौ हौ हौ हौ (हौ हौ हौ) ०० ०० [मा मा मा मा]।
इति मध्यमा-कपालं (समाप्तम्) ॥५४८॥

(अथ पञ्चमी-कपालम्–)

[5]ग्रह-भूत-षड्ज-स्वरमिह ऋषभांश[6]मल्पतर-निषादं च।
दुर्बल-धैवत-गान्धार-स्वर-षड्जैः समध्यमैः रचितम्॥
पूर्ण-स्वरमष्ट-कलं कपालमेतत्तु पञ्चम्याः ॥५४९॥

पञ्चमी शुद्ध-पञ्चमेन सकपाल-पाणिका गीयते।

कपाल-स्वर-पद-क्रमो यथा–

सासासासा रीरी गागा मागा पमगा रीरीरीरी मामा सासा रीरीगा मामा मपागारी रीरीरीरीरी। नी री मामा पापा धा मा। धा पा सासारी धा पापा धा रीरी मामामा धामा धानी पा पा पा पा ॥५५०॥

जय विषम-नयन। [7]मदन तनु दहन। वरवृषभगमनं[9]। त्रिपुरं[10] दहन०००। [11]नतसकल भुवन। [12]सितकमल वदन। भव मे [13]भयहरण। भव [14]शरणं०००। (इति पञ्चमी-कपालं समाप्तम्) ॥५५१॥

---

1 शा 2 विनयम 3 सह 4 है है है है है 5 ग्रहगभत 6 भ–शाद 7 भत्तु 8 मंदरमनु 9 गहन 10 पुरं 11 नभसकलतुना 12 शिभ 13 तदघहर 14 स

अथ धैवती–कपालम्–

षड्ज-स्वरो[1] ग्रहोंऽशः षड्जापन्यासस्तु विहित-शरीरम् ।
स्वल्पतरमृषभ-गान्धार-स्वर-रचितं भवेद्यच्च ॥५५२॥
मध्यम-धैवत-बहुलं पूर्णं [2]संनिभमपि च यत् षाड्ज्याः ।
[3]कथयत्यष्ट-कलं तन्नृपः कपालं तु धैवत्याः ॥५५३॥
धैवती-सकपाल-पाणिका षड्जग्रामे बो(ट्ट)-कैशिकेन
देश्या सिंहलिकया (च) गीयते ॥५५४॥

कपाल-स्वर-पद-क्रमो यथा–

सासासासासानीधा मामारीगामरीगामा । सासारीसासासासा सासा सानीनी सासा गारी मामापापाधानीपापा धामासासासासा धानी पापपमधनि धा धा धा धामामा पापापापापा ॥५५५॥

अ० ग्नि० ज्वाला । शि० खा[4]० वलि ० ० ० ० ० ० । मां ० ० स शोणित । भो० जिनि[6] ० ० ० । [7]स० र्वा० हारि । (णि) निर्मांसे[8] । [9]चर्ममुण्डे ० ० ० । नमोस्तु ते ॥ इति धैवती-कपालं (समाप्तम्) ॥५५६॥

अथ नैषादी-कपालम्–

अथ षड्ज-स्वर-जाते पञ्चम-हीने षाडवे भूतम् ।
[10]षड्ज-ग्रहांश-न्यासापन्यासं खलु (युतं) रिगाल्पतया ॥५५७॥

(५५२–५५३)सं० र० में धैवती–कपाल का वर्णन निम्नप्रकार है:—
" अत्यल्पर्षभ–गान्धारं प–न्यासं म–ध–भूरि च ।
षाड्ज्या इव कपालं तद् धैवत्याः स–कलाऽष्टकम् " (१।८।८)

---

1 षड्जिस्वरग्रहांशः 2 संन्न 3 केचयत्यष्ट 4 तु 1 र था० केली 2 जिनां
3 स० वा० हारी 4 सीं 5 चापलां 6 षड्ज-ग्रहांशा कपालान्यासां चारिग ताल्पत्वं

[1]अपि बहलैश्च निषाद-(स्व-)र-धैवत-मध्यमैः कृतावयवम् ।
अष्टकलमपि [कपालमपि] कपालं वदति नृपस्तं निषादिन्याः ॥५५८॥

षड्जग्रामे निषादिनी चोक्षसाधारितेन[2] देश्यां त्रिभुवन (?) वेलावल्यां (च) गीयते ॥५५९॥

कपाल-स्वर-पद-क्रमो यथा–

सा सा ध ध ध म नि ध स सारिग मग गरिग मा सासा ध ध स स रग स स धनि ध ध मामा । मम धध नी नी सा नी सा सा सा धा सा सनि धा सासा पारिग गा सारीगा सासा धनिसा धानी धा मामामा । गम ध ध नी सा सा ॥५६०॥

सरस ०० ० ग ज ०० चर्मपटं । भीमभुजंग० मानद्ध[3]-जटं । कह कह हुं कृति[4]-विकट-मुखं×० नम तं शिवं हरमजितं० । [5]चण्ड-तुण्डमजेयम् । कपाल-मण्डित-मुकुटं । [6]काम-दर्प-विध्वंस-करं० । नम तं हरं परम० शिवं० ॥ इति निषादिनी-कपालं (समाप्तम्) ॥५६१॥

+[अथ पाणिका-लक्षणम्——

चत्वार्यंगानि स्सु । सर्वास्वथ पाणिकासु सदा ।
ध्रुवकं विद्यधि पुनरन्यच्चासारितेन समः
वक्त्रे प्रतिवक्त्रे द्वे शिरः शरीर क्रमेण च चतुर्णां ।

× (५६१) 'विकृत–मुखं' pb. सं० र० I, पृ. २७९
+ यह अंश द्विरुक्त है ।

[1] अभि घस सश्चस्तर [2] नि [3] लार्द्धपटं [4] त [5] क्रष्टु ०० ० अजेयं [6] केमे

अंशानां मेतेषां कथयामि --- यथा नियमः ।
मुख इति निषादी कपालं ॥छ॥]

अथ **पाणिका-लक्षणम्**—

चत्वार्यङ्गानि स्युः[1] सर्वास्वथ पाणिकासु सदा ।
ध्रुवकं विद्यात्[2] पुनरन्यच्चासारितेन समम् ॥५६२॥

वक्त्रं[3] प्रतिवक्त्रं[4] द्वे शिरः शरीर-क्रमेण च चतुर्णाम् ।
अङ्गानामेतेषां[5] कथयामि यथा[6]-नियमम् ॥५६२॥

मुखमत्र षोडश-(कलं) प्रतिमुखमपि षोडश-कलं च ।
द्वादश-कलं च शीर्षं चतुरुत्तर-विंशतिः कला देहे ॥५६४॥

मु- - -(?) यदाह—

" मुखं प्रतिमुखं चैव द्वात्रिंशत्कमुदाहृतम् ।
शिरो द्वादशकं प्रोक्तं द्विगुणो[7] विग्रहस्ततः ॥५६५॥

इति चतुराद्यष्ट-कलान्तं नियमादत्र च- - - ।
एवंलक्षणं—योगादष्टादश पाणिका ज्ञेयाः ॥५६६॥

(i) इन (५६२–५६६) श्लोकों में **पाणिका** की रचना के नियम इस प्रकार बताये गये हैं :—

(१) पाणिका में प्रथम अङ्ग ध्रुवक होता है ।

(२) आसारित गीत के अनुसार मुख–प्रतिमुखादि अन्य चार अङ्ग होते हैं ।

(३) **नान्यदेव** ने पाणिका के जो उदाहरण आगे दिया है, उनमें एक–दो को छोड़कर अन्य उदाहरणों में **ध्रुवक** अङ्ग का अभाव है ।

---

1 स्यु 2 विद्यधि 3 वक्त्रे 4 प्रतिवक्त्रे 5 अंशा 6 नियमः 7 द्विगुणं

(ii) **भरतमुनि** ने **आसारित** गीत के चार अङ्गों को निम्नानुसार कहा है :—

" मुखं प्रतिमुखं चैव देहं संहरणं तथा ।
अङ्गान्येतानि चत्वारि सर्वेष्वासारितेषु च " ॥२८।८८॥

[**बरोडा** संस्करण में ' संसरणं ' पाठ स्वीकृत है, जो भ्रामक है ।] इसके आगे के श्लोक में मुख–प्रतिमुखादि संज्ञाओं का अर्थ स्पष्ट किया है :—

" उपोहनं मुखं तेषां युग्मं प्रतिमुखं भवेत् ।
ओजः शरीर–संहारावयमङ्ग- विधि-क्रमः " ॥८९॥

(iii) **आसारित** गीत का प्रमुख उपयोग नृत्त के साथ होता था । उसके अङ्गों के मुख-प्रतिमुखादि नाम नृत्त के नर्तकी-प्रवेश आदि प्रसङ्गों से सम्बन्धित होने के कारण सार्थक हैं, ऐसा **अभिनवगुप्त** ने स्पष्ट किया है:—

" यद्यपि मुखादीनाम् आविर्भूतत्वेन एव अत्र न कश्चिद् विशेषः तथापि नृत्ते अस्ति एव विशेषः " इ. (IV, पृ० १९८, १९९)

नृत्त-प्रयोग के प्रारम्भ में विशिष्ट नृत्त को सूचित करनेवाले गीत को वादन के साथ प्रस्तुत किया जाता था । अतः आसारित का मुख नामक अङ्ग इस प्रारम्भिक प्रसङ्ग पर गाया जाता था । इस प्रकार नृत्त के चार साभिनय प्रसङ्ग आसारित के चार अङ्गों द्वारा शब्दाङ्कित किये जाते थे:—

" अङ्ग-चतुष्काभिप्रत्यङ्ग–नर्तकी–प्रवेश इत्यादि–क्रमोऽत्रतिष्ठते । "
(iv, पृ० १९९, **अभि०**)

(iv) इसके उपरान्त **आसारित** गीत का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से भी नाटक में किया जाता था, जैसा नाट्यशास्त्र के ताण्डवाध्याय में बतलाया गया है :—

" ताण्डवाध्याये स्वतन्त्रासारितेष्वपि प्रयोगः अतिदिष्टः । " (पृ० १९९ **अभि०**)

वर्धमानक गीत केवल नृत्ताश्रयी था :—

" वर्धमानान्तर्गततया नृत्ताश्रयत्वे एतानि अङ्गानि,
न तु स्वातन्त्र्येण प्रयोगः " ।

(v) **पाणिका** गीत का वर्णन नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नहीं है ।

(vi) **दत्तिल** ने पाणिका का वर्णन निम्नानुसार किया है:—

" अथादौ पाणिकायाः स्यान् मुखं प्रतिमुखं तथा ॥२३२॥

मात्रा रोविन्दकस्य स्यात् तस्य तालः पृथक् पृथक् ।
आकारेण विदार्यः स्युः केवलेनान्तरान्तरा ॥२३३॥

अपि वा नान्तराः कार्या आकार-पद-पूर्विकाः ।
अतः परं शरीरं तु पञ्चपाणि-चतुष्टये ॥२३४॥

यथास्थिते प्रयोक्तव्यं शिरस्संपिष्टकैककम् ।
विद्यादुपोहनादीनि मुखादीनि यथाक्रमम्" ॥२३५॥

उपरोक्त श्लोक २३२ की द्वितीय पङ्क्ति लुप्त है। श्लो० २३३ की प्रथम पङ्क्ति खण्डित है, उसीका संपूर्ण पाठ **सं० र०** में इस प्रकार पाया जाता हैः—

"आद्या रोविन्दक-गता मात्रैका पाणिका (मुखम्) ॥५।२१९॥

(१) **शार्ङ्गदेव** का कथन है कि पाणिका के अङ्ग उल्लोप्यक गीत के अङ्गों के समान होते हैं। किन्तु उल्लोप्यक के अङ्ग–विभागों का वर्णन **सं० र०** में उपलब्ध नहीं है।

(२) पाणिका गीत के रचना–नियम तथा ताल–प्रस्तार **सं० र०** के तालाध्याय में उपलब्ध हैं।

पाणिका गीत की प्रथम **मात्रा** रोविन्दक गीत के समान होती है। इस विषय में 'मात्रा' संज्ञा द्विकल अथवा चतुष्कल चार पादों से युक्त विभाग के अर्थ में पारिभाषिक है।

"पादभागैश्चतुर्भिस्तैर्मात्रा स्यान् मद्रकादिषु" ॥५।२१॥
"पारिभाषिकी मात्रा भवेत्।" (**क०**)

(३) पाणिका का अङ्गनिवेश उल्लोप्यक गीत के समान होता है। पाणिका की विदारी में 'आकार' आते हैं। अथवा स्तुतिपदों के पश्चात् 'आकार' आते हैं (**सं० र०** ५।२१९–२२१)।

(४) 'मुख' उपोहन का ही पर्याय है।

"उपोहनादीनि मुखादीनि,' ऐसा **दत्तिल** ने कहा है। (श्लो० २३५) **सं० र०** में भी इसी प्रकार की उक्ति उपलब्ध हैः—

१. "तेषां मुखमुपोहनम्" (५।१८८)
२. "उपोहनम् इदं मिलित-मुखम्।" (श्लो० २३३, पृ० १२८)

३. " उपोहनं मुखं नाम अङ्गं भवति " । (**III**, पृ० १११ **सिं०**)

४. " मुख-संज्ञकानाम् उपोहनानाम् । " (पृ० ११५, **क०**)

५. " मुखम् इति उपोहनम् । " (पृ० १२७, **क०**)

(५) गीत-खण्डों की सामान्य संज्ञा **विदारी** है:—

" गीतस्य खण्डं शकलं विदारी इति उच्यते " । इसके दो प्रकार हैं:— ' महाविदारी ' तथा ' अवान्तर-विदारी ' (**III**, पृ० ३५ **सिं०**)

भरतमुनि ने विदारी की व्याख्या निम्न प्रकार से की है :—

" पद-वर्ण-समाप्तिस्तु विदारीत्यभिसंज्ञिता " ॥३२।१७॥

इसका स्पष्टीकरण **अभिनवगुप्त** ने निम्नानुसार किया है :—

" पद-वर्ण-समाप्तिस्तु अपि विदारी । अवान्तर-वाक्यस्य समाप्तौ स्थाय्यादि-वर्णस्य अपि अपन्यासेन न्यासेन वा समाप्तिः विदारी । विदारणं विदारी । " (**iv**, पृ० २९७)

(**vii**) सार्थ–निरर्थक पदों से स्वर–ताल–बद्ध तथा छन्दोबद्ध आसारित, रोविन्दक आदि ७ गीतों की **ध्रुवा** संज्ञा है :—

" ध्रुवाणाम् आधारः पदम् इति पर्यायात् तद् विद्यते यस्यां वृत्त–जातौ, सा ध्रुवा इति । अत एव लक्ष्ये गीयमानं रूपकम् एव ध्रुवा इति आहुः । " (**iv**; पृ० २९२, **अभि०**)

इस में ध्रुवा को **रूपक** अर्थात् प्रबन्ध कहा गया है ।

(**viii**) पाणिका तथा अन्य प्राचीन गीत जातियों तथा रागों के स्वरों में गाये जाते थे :—

" स्व-राग-योनि-जातेस्तु न्यासेऽपन्यासनेऽथवा ॥५।६१॥
सन्यासेंऽशेऽथवा न्यासः सर्व-गीतस्य-वस्तुनः " ॥६२॥

" अनेन मद्रकादीनि ग्रामरागोपरागेषु एकतमेन रागेण गातव्यानि इति सूचितं भवति । " (**क०**)

(**ix**) " आद्यं वस्तु-द्वयं मन्द्रांश-ग्रहं मद्रके मतम् " ॥५॥७७॥

[**अडयार** संस्करण में मुद्रित पाठ ' मद्रांशग्रहं ' अशुद्ध है ।]

" मद्रके प्रथम-वस्तुनो मन्द्र-स्थान-स्थितं स्वरमंश-ग्रहं च कुर्यात् । " (**क०**) [**अडयार** संस्करण का पाठ ' मद्रक-स्थान-स्थितं ' अशुद्ध है ।]

उदाहरणं यथा—

मा प प धनि धानि मामारी सां सा सा सा सा सा सा नी नी नी नी पा प ध धा सा प ध ध नि प। मा मा धा सा धा नी मां मां ॥ध्रुवकम्॥

को००० [1]विदांचितं शशितिलकं०००००त्रिदशगणां००० चित पी०० त तनुं। ० ०० ०००(भ) यां[2] ० ०० व० ह भुं[3] ०० जग-वलय-धरं ०० ००० । नमा० मि हरं परममनादिं००००० ॥

सा मा० गा री म म मा मा। मा ध नि सा ध नि ध प मा मा मा धा धानी पानी धा धा धा धा मा धनिसा पा पा मा मा मा मा० सा गा री म ग मां मा मा धा सा पा धनि धप मां मां मां मां धा धा मां पा नी धा धा धा मा धनिसा धनि धम मा मां मा ओं ओं०० ०० ०० ॥

पशु० पतये० ० ० ० ० आ ०००००००० आ ०० ०० ०० ० ०० ०
न्नपत ०० ये ०००।आ ०००।०। ०००।आ०० ०० ०० ०००० ॥

सस ०० सा सा सगसाधनी धा धा धा धा धा धा धा धा धा धा नी पानी। धा धा धा मा ध् निसा ध्नी धप मामा मामा नि ध सां गा रीरीरीरी धाप् धनि् धप मा मा मा मा मा। धा धा नीपानी धा धा धा मा ध नि सा ध नि धप मां मां मां ॥ मुखम् ॥ म म् सा गा ॥

आ ००० हा ०० यम ०। मो (?) ० ० ० ० ० ० ० आ ००००००००। आ ०००० ०००००० । आ ०० वर हा ०००। ० य० न० यमो (?) ०० ।

---

1 विराचिभ 2 आ 3 तुं००जग

३. " उपोहनं मुखं नाम अङ्गं भवति " । (III, पृ० १११ सिं०)

४. " मुख-संज्ञकानाम् उपोहनानाम् । " (पृ० ११५, क०)

५. " मुखम् इति उपोहनम् । " (पृ० १२७, क०)

(५) गीत-खण्डों की सामान्य संज्ञा **विदारी** है:—

" गीतस्य खण्डं शकलं विदारी इति उच्यते " । इसके दो प्रकार हैं:— ' महाविदारी ' तथा ' अवान्तर-विदारी ' (III, पृ० ३५ सिं०)

भरतमुनि ने विदारी की व्याख्या निम्न प्रकार से की है :—

" पद-वर्ण-समाप्तिस्तु विदारीत्यभिसंज्ञिता " ॥३२।१७॥

इसका स्पष्टीकरण **अभिनवगुप्त** ने निम्नानुसार किया है :—

" पद-वर्ण-समाप्तिस्तु अपि विदारी । अवान्तर-वाक्यस्य समाप्तौ स्थाय्यादि-वर्णस्य अपि अपन्यासेन न्यासेन वा समाप्तिः विदारी । विदारणं विदारी । " (iv, पृ० २९७)

(vii) सार्थ-निरर्थक पदों से स्वर-ताल-बद्ध तथा छन्दोबद्ध आसारित, रोविन्दक आदि ७ गीतों की **ध्रुवा** संज्ञा है :—

" ध्रुवाणाम् आधारः पदम् इति पर्यायात् तद् विद्यते यस्यां वृत्त-जातौ, सा ध्रुवा इति । अत एव लक्ष्ये गीयमानं रूपकम् एव ध्रुवा इति आहुः । " (iv; पृ० २९२, अभि०)

इस में ध्रुवा को **रूपक** अर्थात् प्रबन्ध कहा गया है ।

(viii) पाणिका तथा अन्य प्राचीन गीत जातियों तथा रागों के स्वरों में गाये जाते थे :—

" स्व-राग-योनि-जातेस्तु न्यासेऽपन्यासनेऽथवा ॥५।६१॥

सन्यासेंऽशेऽथवा न्यासः सर्व-गीतस्थ-वस्तुनः " ॥६२॥

" अनेन मद्रकादीनि ग्रामरागोपरागेषु एकतमेन रागेण गातव्यानि इति सूचितं भवति । " (क०)

(ix) " आद्यं वस्तु-द्वयं मन्द्रांश-ग्रहं मद्रके मतम् " ॥५॥७७॥

[**अडयार** संस्करण में मुद्रित पाठ ' मद्रांशग्रहं ' अशुद्ध है ।]

" मद्रके प्रथम-वस्तुनो मन्द्र-स्थान-स्थितं स्वरमंश-ग्रहं च कुर्यात् । " (क०)
[**अडयार** संस्करण का पाठ ' मद्रक-स्थान-स्थितं ' अशुद्ध है ।]

उदाहरणं यथा—

मा प प धनि धानि मामारी सां सा सा सा सा सा सा नी नी नी नी पा प ध धा सा प ध ध नि प। मा मा धा सा धा नी मां मां ॥**ध्रुवकम्**॥

को००० [1]विदांचितं शशितिलकं०००००त्रिदशगणां००० चित पी०० त तनुं। ० ०० ०००(भ) यां[2] ० ०० व० ह भुं[3] ०० जग-वलय-धरं ०० ००० । नमा० मि हरं परममनादिं००००० ॥

सा मा० गा री म म मा मा । मा ध नि सा ध नि ध प मा मा मा धा धानी पानी धा धा धा धा मा धनिसा पा पा मा मा मा मा० सा गा री म ग मां मा मा धा सा पा धनि धप मां मां मां मां धा धा मां पा नी धा धा धा मा धनिसा धनि धम मा मां मा ओं ओं०० ०० ०० ॥

पशु० पतये० ० ० ० ० आ ००००००००० आ ०० ०० ०० ० ००० न्नपत ०० ये ००० । आ ००० ।०। ००० । आ०० ०० ०० ०००० ॥

सस ०० सा सा सगसाधनी धा धा धा धा धा धा धा धा धा धा नी पानी । धा धा धा मा ध् निसा ध्नी धप मामा मामा नि ध सां गा रीरीरीरी धाप् धनि् धप मा मा मा मा मा। धा धा नीपानी धा धा धा मा ध नि सा ध नि धप मां मां मां ॥ **मुखम्** ॥ म म् सा गा ॥

आ००० हा ०० यम० । मो (?) ० ० ० ० ० ० ० आ ०००००००० । आ ०००० ००० ००० । आ ०० वर हा ००० । ० य० न० यमो (?) ०० ।

---

[1] विराचिभ [2] आ [3] तुं००जग

ख० (?)। आ००० ०००० । आ०० ०० ०० ०००० ।
×कपा००००००००००० ॥

री मं ग मां मां । धा साप धनि धप । मामा मामा । धा
धानी पानी धा धा धा । मा धनि साधनिप ध मा मां मा ।
माप धनि ध पमम निसानि धा ध म प ०० ०० ०० ०० ०००
माप धनि धप म मरिस नि धा धा धा धा प ध नि ध प
मा मा मा मा धा धा नी पा नी धा धा धा मा धनि सा
धनिपध मा मा पध मध०००००००० ॥ ×लि०००० ०० ने
००० । आ०००००००० ॥

आ०००००००००० । पि०० ना०० ०० ०० ०० ० कि०००
००० ने०००० । आ००० ०००० आ०० ०० ०० ००० ।
त्रिपु० रं०[2] । प म म रि धा धा नी पा नी धा धा धा आ०००
०००० । मा ध नि सा धनिध मां मां मां । आ०० ००
०० ०० ०० ॥ **प्रतिमुखम्** ॥

धा ध नि री रि मं मां मां मां ॥ भ० स्म सि । ता०० य
[श्च] । धा मा प ध म धप मां मां मां मां ॥ यं० ०० भ००
वि ०००(?) । धारिग साध म मां मां ॥ क्षिति सलिलं[3]०००० ॥
धा सा प ध नि धप मा मा मा । गारिग धनिसा धा धा ।
धप मां धप मां मां मां मां रिग । मां नी धा धा धा धा धा
धा धा धा धनि धम धा धा धरी रिग रिग धनि पाप ॥

×चिन्हित शब्दांश जोड़ने से संपूर्ण शब्द 'कपालिने' बन जाता है।

---

[1] क [2] रा [3] ला

ध ०० ०० ०० ०० ०० । रा[1]० ०० ० ०० ये[2] ००० शिखि[3] पव०
न ०० ०००० र० वि० [4]विधुविप्रगगना (य) ००० ०००० ।
अष्ट० [ष्ट] मू० ०० र्त० ये ००० ००० ०० । [अ० ष्ट०
मूर्तये] ०० प० रमे० ० ० श्व० राय ॥

मां मामा धपनिध पम मामामा मां धा सा धासा धानी
पध निध पप ॥ चा दि गि नि गिवा ॥ ०००० मां मां मां
मां मां मां मां मां ००० ००० ०० । पाप धनि धपम मां मां
मां मां ००० ००० ००० धा सा धा सा धा नी धप नी ध
प ॥ व[5]लि कु० च० दिवा वा० वलित क चा ० ०० ॥ मां मां
मां मां मां मां मां धनि ०० ००००० ०० । मां गां रीं रीं रीं रीं
रीं रीं ॥ शा० श्व त मुखे० अनुपम० ×दि० ॥ धा पा मां म
ध मं गां रीं रीं रं गं रं मं मां सां रं गं मं सां मां । धा ध न
न ध मा धा धा धा नी प ध नि ध प मां मां ॥ **शरीरम्**॥
[री मं मं मां मा मा मां ।]

×व्य० यु० वतिप० त [प] ये । ०० ०० ०० ०० ०० ०
[ये] ००० ००० ०० । अनुपम दा ००० न वरं । वृषगमनं[6]
००० । शशिमुकुट ०० ०० ०० धं[7]रं ००० ००० ००० ॥

धा धनी धनी धनी मां मां मां मां मांरी मां धा धा धा धा ।
धा मां । गारी ग धनी धनी धानी पध नि ध प् मां मां रिं

× चिह्न-युक्त अक्षरों का योग करने से 'दिव्य' शब्द बनता है ।

1 र 2 ये 3 षि 4 अशुवप्र 5 त्कल कु० व 6 ना 7 गृहं

ध ०० ०० ०००० ०० । रा[1]० ०० ० ०० ये[2] ००० शिखि[3] पव०
न ०० ०००० र० वि० [4]विधुविप्रगगना (य) ००० ०००० ।
अष्ट० [ष्ट] मू० ०० र्ते० ये ००० ००० ०० । [अ० ष्ट०
मूर्तये] ०० प० रमे० ० ० श्व० राय ॥

मां मामा धपनिध पम मामामा मां धा सा धासा धानी
पध निध पप ॥ चा दि गि नि गिवा ॥ ०००० मां मां मां
मां मां मां मां मां ००० ००० ०० । पाप धनि धपम मां मां
मां मां ००० ००० ००० धा सा धा सा धा नी धप नी ध
प ॥ [5]वलि कु० च० दिवा वा० वलित क चा ० ०० ॥ मां मां
मां मां मां मां मां धनि ०० ००००० ०० । मां गां रीं रीं रीं रीं
रीं रीं ॥ शा० श्व त मुखे० अनुपम० ×दि० ॥ धा पा मां म
ध मं गां रीं रीं रं गं रं मं मां सां रं गं मं सां मां । धा ध न
न ध मा धा धा धा नी प ध नि ध प मां मां ॥**शरीरम्**॥
[री मं मं मां मा मा मां ।]

×व्य० यु० वतिप० त [प] ये । ०० ०० ०० ०० ०० ०
[ये] ००० ००० ०० । अनुपम दा ००० न वरं । वृषगमनं[6]
००० । शशिमुकुट ०० ०० ०० [7]धरं ००० ००० ००० ॥

धा धनी धनी धनी मां मां मां मां मांरी मां धा धा धा धा ।
धा मां । गारी ग धनी धनी धानी पध नि ध प् मां मां रिं

× चिह्न-युक्त अक्षरों का योग करने से 'दिव्य' शब्द बनता है।

1 र 2 ये 3 त्रि 4 अशुवप्र 5 त्कल कु० व 6 ना 7 गृहं

गं रिं गं मां मां रिंग रिं गं मां मां । मां धा मां नी म ध नि ध नी धा । धानी धनी मां मां मां मां मानी धा धा धा धा धा धा धा धा ॥

असु० र० म० णिपादकृत निलयं००० विविध स बहु कं० ष्ट ।[1] [2]निवह हरं० ० ० ० ० ० ० । सु० र० वर मुनि गणनमि (तं) भूतमूर्ति स० वं० स०० त्त्व वर । दं०० ०० ००० । सा सा धानि मां मां मां मां ॥ [3]संहर (-ण)-शीर्षकं चोक्षषाडवे ॥

नी ध प प ग ध री ग री ग । मं गं रिं गं नी ध प प प प पध मा मा म स सा सा सा । आय नमो (?)००० ॥

पशुपति-पाणिका समाप्ता ॥५६७॥

मृगपति-वाहन म० मर [4]वं००न्दित पा० द [5]युगं ० ०० ०० ० ००० परशुगदा [शिवदु] मुशला० युधं० [6]दि० व्य० धुरं[7] ००० ००० ००० ॥

गरि ग ध ग ध गरि रिग धरि रि मगरि गग स ग सनिध पपपपप धप सां सा सस रिग पम पप निध पमपनि धप मांमां धम मामा मम गरिग मामा मगरिगमग सां सां सां सां

---

(५६७) (1) i. उल्लोप्यक गीतक के अन्तिम त्रिभाग की 'अन्ताहरण' अथवा 'संहरण' संज्ञा है ।

---

1 प 2 निवहह 3 संहरं 4 मं०० दिऽ 5 युगां 6 धाहि 7 धुरा

i. " ततोऽन्ताहरणं प्रोक्तं गीतकस्य समाप्तिकृत् ।
वृत्तं संहरणेऽत्र स्याद् - - - - - - - " ॥५।११७॥

" गीतकस्य उल्लोपकस्य समाप्तिकृत् । एतद् अन्ताहरणम् एव संहरणम् इति संज्ञान्तरेण अपि प्रोक्तम् ।" (III, पृ० ७०, क०)

ii. अन्य आचार्य शीर्षक अङ्ग को ही ' अन्ताहरण ' कहते हैं अथवा शीर्षक में ही अन्ताहरण का समावेश करते हैं:—

" अन्ये तु अन्ताहरण-सहितं शीर्षकम् आहुः " । (III, पृ० १२८)

iii. यह पाणिका चोक्षषाडव (= शुद्धषाडव) ग्रामराग में गायी जाती है ।

(२) **i.** ध्रुवा तथा अन्य प्राचीन गीतों का गायन प्रारम्भ करने के पूर्व विवक्षित जाति या राग का मेल उत्पन्न करने के लिये षड्ज अथवा ऋषभ अथवा गान्धार आदि राग–मेल–जनक स्थायी स्वर को स्थिर बनाना अर्थात् षड्ज बनाना पडता था । इस स्थायी स्वर का स्थिरीकरण प्राचीन समय में " झण्टुं " आदि निरर्थक शब्दों के उच्चार से किया जाता था :—

" उपोहनं नाम— ध्रुवादि–गानेषु रागप्रकाशनार्थं स्थायि–स्वराश्रयणेन ' झण्टुम् ' —आदि–वर्ण–परिग्रह " इत्यादि (III, पृ० ३१ क०)

ii. उपोहन में प्रयुक्त तथा **ब्रह्मा** के द्वारा कहे हुये निरर्थक ' झण्टुं ' आदि अक्षरों को **शाङ्‌र्गदेव** ने नाट्यशास्त्र से उद्‌धृत किया है तथा उनको गाने से ' श्रेय ' प्राप्त होता है, ऐसा फलादेश कहा है :—

" एष्वक्षराणि नियतान्यब्रूत श्रेयसे विधिः " ॥५।२०३॥
भगवान् भरतस्त्वाह तानि व्यक्तानि तद्यथा ।
- - - - - झण्टुं झण्टुं दिगिदिगिदिगिदिगिदिगि कुचझलझण्टुम् इति " ॥

iii. ऋक् गीत में ताल–पूरणार्थ ' ओं ' ' ह '-कार स्तोभ एवं ' झण्टुं दिगि-निगि ' इत्यादि वर्ण गाने को कहे गये हैं । ऐसी निरर्थक वर्णमालिका को ' ब्रह्मगीत ' संज्ञा दी गई है:—

" झण्टुं जगतियवलिकित कुचझलतितिझलपशुपति दिगिदिगिवादिगोंगणपति-तिधा, इत्येतानब्रवीद् ब्रह्मा ।" (III, पृ० १२९)

' झण्टुं ' आदि वर्णों को भी यहां पर ' स्तोभ ' कहा है, ऐसा प्रतीत होता है। इस विषय में **सिंहभूपाल** का कथन विशेष स्पष्ट है:—

" कलानां पूरणम् अत्र मन्त्रपदैः स्तोभाक्षरैः अपि कार्यम् । तानि एव ब्रह्मणा गीतानि स्तोभाक्षराणि प्रतिज्ञाय निर्दिशति— **तानि** इत्यादिना ।" (पृ० १३०)

iv. **भरतमुनि** ने आसारित गीत के उपोहन अंश में ब्रह्मगीताक्षरमालिका दी है, एवं उसको 'आसारण' कहा है:—

"आसारितोपवहनेष्वादावासारणानि युक्तानि ।
तान्यक्षराणि वक्ष्ये यानि पुरा ब्रह्म-गीतानि ।
झण्टुं जगति - - - - इ." ॥३१।१०४॥

उपोहन में इन शुष्काक्षरों से ही स्वरों का वाक्करण किया जाता है, ऐसा **भरत** का कथन है :—

"उपोह्यन्ते स्वरा येन तेन गीतं प्रवर्तते ।
तस्मादुपोहनं ज्ञेयं शुष्काक्षर-समन्वितम् ॥१३८॥
अथवोपोह्यते यस्मात् प्रयोगः सूचनादिभिः ।
तस्मादुपोहनं ज्ञेयं गान-भाण्ड-समाश्रयम्" ॥१३९॥

इसके पश्चात् आसारित के प्रकार वर्धमान गीतों के उपोहन में गाये जानेवाले शुष्काक्षरों को **भरतमुनि** ने पुनश्च बताया है (श्लो० १३५-१३८) ।

v. उपवहन के विषय में **अभिनवगुप्त** का कुछ स्पष्टीकरण निम्नानुसार है :—

१. "आसारणे आसमन्तात् स्वर-रूप-विकारो लाघवेन भविष्यति। उपवहनं तदर्थम् ।" (पृ० २०५)

अर्थात् उपवहनरूप शुष्काक्षरों के सहाय से राग के स्वरों का स्वरूप आसानी से समझ में आता है, यह उसका उपयोग है ।

(२) "दारव्यां वीणायां गीतं प्रवर्तते ।
तस्माद् व्यक्त-वाक्करणानुकार-रूपं गीत-प्रतीतिः ।" (पृ० २१६)

vi. तात्पर्य, वीणापर बजनेवाले गीत का (आघाताक्षरों का) मुख से ध्वन्यनुकरण किया जाता है, वही **शुष्काक्षर** है। **भरतमुनि** ने उपोहन को 'गान-भाण्ड-समाश्रयम्' कहा है तथा इसकी टीका में **अभिनवगुप्त** ने 'भाण्ड-सहिते' अर्थ बताया है, तथापि अनुमान कर सकते हैं कि इन शुष्काक्षरों में से 'झण्टुं जगतियवलिकित' आदि कतिपय अक्षर मृदंग आदि ताल-वाद्यों के बोल रहे होंगे, तदुपरान्त 'दिगिदिगि - - - तितिधा' जैसे बोल नृत्य के रहे होंगे; जो कि गीत के एक अङ्ग ही थे अर्थात् उनको तालबद्ध कर के रागों के स्वरों से गीत के प्रारम्भ में स्वर-स्थिरीकरणार्थ गाते थे। किन्तु पाणिका में गीतों के मध्य में भी शुष्काक्षर आते हैं ।

सुरमुनि-वंदितां[1] भगवतीं[2] प्रभवं[3] ० सहितां ०० ०० ००० ०००० । शरणमुपैमि [4]विद्यागुहावासरतां० वरदां० ०० ० ०० ०० ००० । छंदो ००० गा० नं[5] ०० ० प्रो० क्तं[6] ० ०० स्तो० ०० त्रं ००० ॥

मध्ययुगीन संगीत में भी इन्हीं शुष्काक्षरों को प्रबंध के एक अङ्ग के रूप में गाते थे । शुष्काक्षर 'दिगिदिगि, तेना, तेईं, ताझेंक्रिणा' आदि से युक्त मध्ययुगीन 'ध्रुवपद' आदि प्रबन्धों के उदाहरण ग्रंथों में उपलब्ध हैं (**सं० ना०**, पृ० १७७–१८९ इ०)।

प्रचलित संगीत में **नोम्–तोम** आलाप तथा **तराना** गीत प्राचीन शुष्काक्षर-मालिका का ही रूपान्तर है, ऐसा मान सकते हैं ।

vii. अधिकांश शुष्काक्षर, जो कि आज विचित्र–से लगते हैं, नृत्य के हो सकते हैं । इसका आधार यह हो सकता है कि प्राचीन काल में बहुत से गीत नृत्य के संगत में गाये जाते थे । यह बात **अभिनवगुप्त** ने पुनरपि स्पष्ट की है तथा इसके संदर्भ में **भरत** के कथन का आधार उसने दिया है :—

"अथवोपोह्यते यस्मात् प्रयोगः सूचनादिभिः" ॥३१।१३९॥

एवं गात्र–दारुवीणाभिप्रायेण सप्रयोजनं निर्वचनम् उक्त्वा ग्रथ्यमानं नृत्यम् आश्रित्य आह–"अथवोपोह्यते यस्मात्" इ. । प्रयोगम् आश्रित्य आदि–सूचनाभिनयनेन शुष्काक्षरगाने भाण्ड–सहिते यद् उक्तम्–

"येऽपि चान्तरमार्गाः स्युस्तन्त्री–वाक्करणैः स्मृताः ।
तेषु सूची प्रयोक्तव्या भाण्डेन सह ताण्डवे" ॥ **ना० शा०** (ब०) ४।३१८॥
तेन उपोह्यते प्रयोग–सूचनाभिनय–द्वारेण सूच्यते यत्र तद् उपोहनम् ।"

(IV, पृ० २१६)

सूच्याभिनय की व्याख्या अभिनवगुप्त ने निम्नानुसार की है :—

"नर्तक्या रचनाद् हि लास्याङ्ग–गत–काव्यार्थानुसारिहस्ताभिनयशून्यः
सात्त्विकाङ्ग–वलनादि–मात्रेण सूच्याभिनयः । यद्वक्ष्यति—
वाक्यार्थो वाक्यवस्त्वङ्गैर्योज्यते यदा पूर्वम् ।" (I, पृ० २०४)

vii. इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन गीत एवं गीतक नृत्य के साथ विशेषतः पूर्वरङ्ग में गाये जाते थे ।

---

1 तु 2 ति 3 वे 4 विद्यगुह 5 ना 6 क्ता

री री ग ग ध धा गा री सा सा मागम गा री री गमग री सा सा धा धा धा नी स नी ध नी धा पापा। री री ग सा ग री धानी धानी मामा। नी ध नी सा नी स नी ध नी धा। पापापा री री ग सारीग धानी धानी मामा रीरी गा स मप धध री री धानी धानी नीगरी मगरी ॥

आ ०० ०० ०० ०० ००। आ ०० ०० ०० ०० ०० ० यज्ञे[1]० य०००० ज०। मा०० ०० ना०० का००० रं। आ०० ० ००० ००० आ०० ० ०० ० ००० ००। यज्ञेपां[2]०० शु०० प० त। प्रमी०००० ००० ० ००० ॥

सरी। रीरी। नीधनि सानिधनिध पापापा। री रिग सारिग धाम धानी मामा रीरी पम माप धध गरी धा मध धानि गरी मगरि सरिरी। नीध नि सानिस निधनिध निध पापा री रिग सारिग धानि धानी पा पा ॥

भू भं भा मुखं (?) ०० तं० आ ००० ००० ००० ००० आ ००० ००० ०००० ००। यज्ञपा[3] ०० अ ०० र्द्ध भा०० ००० ००० ०० गं[4]० आ ०००० ०००० ००० ००० आ ०० ०० ०० ० ०००० ॥

सा मा गा री री गा म गरी ग सां० सां० सां०। री ग ग ध धारिग सां० सां मारी रि ग म ग री सां० सां०। धा धा धानी स म स न ध पा पारी रिग सारिग। धाम धानी मां मां। मां धनि सानी धनि पा ००० ॥

---

1 ज्ञेयं० मं०० ०० व०। जा ०० ०० 2 या 3 याज्ञया 4 रं०

अं० त० त्व[1] ज्ञा००० नं००० । आ ०० ०० ०० ०० ०० । आ ०० ०० ०० ०० ००० । ओ हौं ००० ० ००० ००० हौ । रीप ० रि ०० । ज्ञा[2] ००० नं०० । आ ० ००० ० ००० ००० ।

पा पा री रिग रिग धानिधा नीमां म । रीं रीं । गा स म मा प ध ध ग री धा म धा नी म ग री म ग री सरिरी । नी धनि सानि स नि धनिध पापा पारी रि ग सासा धा नि धानी मां मां री री गा स स म मा प ध ध री री धानि धनी ०० ॥

आ ०० ०० ० ००० ००० । मंदा ००० कि० नी[3] ०० स्रो००० त ०० [स्रोत ०००] स्त्वं[4] ० । आ ० ०० ००० ०० ० ००० । आ ०० । आ ०० ० ०० ०० । रक्ष[5] ००० मां ०० ×मं० त्रो प ०० ॥

नी ग री म ग रि स रि री री । नीधनि सानि सनि । धनिध पापापा । री रिग सारिग धानि धानी मं[6] मा ॥**प्रतिमुखम्**॥

मध सा सा नी धापानि धनि गरि रीगा मरिग सासासा सासासा पाप ध गारी सारीं मगरीरीरी सासासासा रींरींरींरींरीं ॥

×ग ०० ०० ० ०० मं० । आ ००० ००० ०० ० ००० आ ००० ०० ० ०० ०००० । कल्पांते ००० [ते००] सं ०० हंतां[7] ०० ० रं ००० जगति य ० दिगिमिणेगि ०० ०० ००० । वा ० गं ०० ० ० ० ॥

× पूर्वस्थित 'मंत्रोप' अंश के साथ जोड़ने से संपूर्ण शब्द 'मंत्रोपगमं' सिद्ध होता है।

---

1 त्वं 2 जा 3 श्री 4 त्वं 5 रिक्षा ००० मा 6 मां मां 7 हंती

री री । पाप ध ध ग री रि ग म ग री सां सां री री री गम गरीमग रिम सां० । पा प ध मां मां म ध ध नी सा सा सा सा सा सा धनि ध सा सा सा निधापापा । ल०क्ष्मी०० [पू]० मं[1]० । मनी धनि धनि धम् धनी धनी सा सा सा ॥ त्रा० ह्वा० ०० ०० ० ०० ० । नं मंत्रां[2]०० ह्वा००० ००० । नं० । लक्ष्मी० [यू]०० ० ०० ० ००० ०००० । वे०० ० ०० दं[3]०० ० ग्री००० ००० वं[4] ०० ० ॥ ग री स री री री री रीग धनि धनि धनि धनि सा सा सा सा । गस ग ग री स री री री री री गा । धनि धनि धनि धनि सा सा सा सा । गा री री । नी००० ०००० ॥

[5]त्रिद० श० प०० ते० । ०० ०० ०० ०० ० ००० प० र० । म० गुरु००० । [त्रि० दि० श० पते०० ०० प० र० म० गुरु००० ।] कलकुचति भि चा भा००० दिगिनिगि०० । चा००००००० ॥

मा गा री रिग । सानी धानि गारि गं प धपपध पध पमां मांमांमां मांमांमां । म म नी धा धा धा धा धा धा धा धा निध सा सा नि ध सा री री री री री ग ध सा री री ग म ध धा धारि गम गरी गा गमरी रि म म ध धा धा ॥

मां जगतिभता०० ०० दिगिनिगि[6] वा००० वलि तक दि० गि० ति० गि० ०० ००० ००० ०००० । गृह ००० ००० ००० । च० क्रं[7]० शूलं[8] जटिलो० ग्र पाणि० मजरमजे०००० यं००० जल० । निधि० श० य नं [वा] ॥

---

1 प्लं 2 द्रा 3 दे 4 मं 5 विद० श० 6 मि 7 क्रा 8 सुल

सा री गा मगरी । मा री रि ग ग ध धा नी री री गा मरिग पध पध पध पध मा मा सा सा रिग पा प ध मां मां म धा धां ध स सरिग धग ध प धम धप मा मा मा मा मा मा । ×[शीर्षकं छन्दोगा षड्जा ।] धनि मनिपध धगरि गमस सासा ॥

तं० ० ० ० ० ० ० ० ० ० । पद्म० नो ० ० ० भं । ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० श० र० णं ० ० ० व्रजामि । धनदशत ० ० पुत्र[2] मुनिगण पठरि पहि (?) युतं । ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ॥

शीर्षकं छन्दोगा षड्जा पाणिका[3] समाप्ता ॥५६८॥

भू[4]० मि० वलित सकल । रिगम सामापा धनि धनि सनिध पापापा । पानी रिग निस । मा पा नी सा सा गमनी धनि मनि नि धम पमा मामा मा । धा धा नि ध नि सासा सासा नीनी रीरी गसा सम पा धा मा । गमप ध निधप मामा मामाधध धानी धानी सा सासा गध नी धनी धनी ।

सीसीलिल (?) नि बहु[5] ० ० वरचरण भ० र नमित । धरणित ० ० ० लं । भु० ज० चाल[6]० न दलित गिरि शि० ख० रं० ० ० जगदभिनयविधि । र० च० न[7]० विली[8] ० ० ० न[9] सत्त्वं वरे । ० ० ० ० ० ० ० ॥

०नी पप धध नि धनिसा धनिम मामा नी मनी धनी ।

× इन शब्दों को इस कण्डिका के अन्त में डाल दिया गया है ।

1 नि 2 कुत्र 3 आमा 4 भृ 5 बुहु ० ० चरवरणभ० रमित 6 वा 7 नु 8 लो 9 य

पाधा मामा सा री सामग मां मां मां मां । मा म निध निम[1] म मा मा । मामरि धनिनि साधनिरिस । पापापापापापापापा पध । मासामासा नी धा प धध मं[2] रिं गामा रिग सासा ॥
००००००० ×[3]ण्य गी० ०० ० ००० तं० [4]यांचें० च० वे०० दाग्ने । आ०० ० ०० ००००० आ०० ०० ०० ०००० । आ०० ० ०० ० ०००० । आ०० ०० ०००० [5]विकटशूलिनं । ००[6]आ००० ००० ॥

सासामापा नीनी नी सनी धनी ध पा पा पा पा पा पा पा पा पा सा सा पा ध नी पा ध म धा नी स म ध नी ध पापा पापा पापा माग मगम परि रीरीरीरी गरीसा म ग मामामामा-मामामा । स स सा गा सा म ग मा मा मा प । मा नी नी नी मनी धनि ध ॥

०० यजं[य]ति ० ० रा ००० व ०० ० [7]चंडं ००००००००
आ ००० ००० ००० आ ००० ००० ००० ॥

धा पा मा मा । - - - - - - - ।
आ ०० ०० ०० ०० ०० । आ ०० ०० ०० ०० ०० ।

- - - - - - - - । - -- - - - - ।
ग ण ०० ०० ०० ०० ब्रह्म । यजमान० भू प ० [त] ।

×गीत के उपरितन शब्दांश ‘ वरे ’ से जोडने से ‘ वरेण्य ’ बन जायेगा ।

1 नभमु मामा । मामर र व न सा ध न र क्ष । 2 मं ॠं 3 ण्यं
4 जाचं० त० वे०० दग्ने । 5 ०विप्राशुलिंन 6 ऐ 7 कंड

पा पा पा पा पा पा पा । पा पा पा पा पा ।
त ये ० ० ० ० ० ० ० । ०० ०० ०० ० ० ।

सा रिगसा म ग म मा मा मा ।
आ ००० ००० ००० ० ० ।

मा म निध निसा धनि म मा मा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ०० ०० ।

मामनिसा धनि धनि धा पापा । पा पापा पा धप मांमां ।
आ०००० ०० ०० ० ०० ० । आ ०० ०० ००० ० ० ।

सारी रिग सा सा मगम मा मामामा ।
तवै ०० ० ० ० ० ते ०० ।

मा धानी धा पा पा पा पा पा ।
अग्ने० म न सा ०० ०० ।

पा पा पा पा पा पा पा । पा पा पा पा पा धमप मामामा ।
ओं ० ० ० ० ० ० ० । ओं ० ० ० हौ ०० हौ[1] ० ।

सा सा पा ध म पा ध म धा नी ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ।

सनि धनि ध पा पा पा पा पा पा ।
आ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

मा ग म ग म प रि रि रि रि रि गरि ।
आ ० ० ० ० ०० ० ०० ० ०० ० ०० ।

---

[1] म

साम गम मा मा मा मा मा मा ॥
आ॰ ॰॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰॰ ॰ ॥ **प्रतिमुखम्** ॥

सां सां सां सनि नी नी री री ग । पापापापा ध मां मां पग गा ।
स ॰॰ स्र ॰ यो ॰ ॰ नि ॰ । सं[1]॰ स्र त्रि ॰ ॰ ॰ ध ॰ ।

पा पा पा पा पा पा पा पा । मामा पग गा पापा धा मा ।
ओं ॰ ह॰ (स्त) स ॰॰॰ सं[2] । जिह्वं[3] ॰॰ स ॰ ॰ (॰) स्र ।

धानी सनि धनि धनि धपा धनि धानी ।
स॰॰ ॰ सं[4] ॰ ॰ का ॰॰ ॰ ॰ ।

स म ध नि ध पा पा पा पा पा पा ।
॰ ॰ ॰ ॰ ॰ यँ[5] ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।

रीगामारिग सा सा सा सा । मा मा धा मा धा नी ।
मुखयो॰॰ ॰ नि ॰ ॰ ॰ । निरतं प्रंगी[6] ॰ ॰॰ ।

धनि सनि ध पा पा पा पा पा पा ।
॰॰ ॰॰ ॰ तं[7] ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।

माम प प पा पा पा पा प ध ।
तिति ॰ क ल कु चा दि॰ (॰) ।

री रि मरि मरि मरि मरि मरि मरि मरिम ।
वा ॰॰ दि॰ गि॰ नि॰ गि ॰॰॰ ॰॰ ।

गम गस धनि निधा पापापापा ।
॰॰ ॰॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।

---

[1] स॰ पू र्वि॰॰॰ धि॰ [2] पू [3] ह्वा [4] पू [5] या [6] पगी [7] ह्य

मा रिग सा म म म मा म रि सा मा ।
श्रो ०० ता ० ० ० रो ० ह त ० ।
नी ध नि सा सा पा धप माप मप ।
रं ०० गो ०० ०० ० ० ० ० ० ।

स पा पा पा पा पा ।
मा ०० ० ० ० ०० ।
मा म प पा पा पा पा पा प ध ।
ति ति ० कल कु च ० दि ० ।

रीरि मरि मरि मरि मरि मरि मरि पम ।
वा० ०दि [पि] गि० नि गि ०० ० ।
निम गा रीरीरीरीरीरीरी ।
०० ० ०००० चा० ।

सारिग सा म ग म मा मा मा ।
स्या०० ष्ट ० ० ० यं (?) ००० ।
मनि धनि धनि धनि धनि धनि धनि धनि ।
वरदं[2] ०० ०० ०० ०० ०० ०० ०० ।

धनि सा सा पा पा प ध प मा । नी नी नी नी मामा ।
स ० दा ० वसुरे ०० त । [वं] ०० ० ० ००० ।
नी धनि मा री सा । धा धा धा मा मा मा मा ।
उ उ ० ० ० ०० । [3]से ० वि प्रपते ०० ०० ००० ऽऽऽऽ
॥ शरीरम् ॥

---

[1] दा [2] दां [3] वे० व 'पपते' ००००

मा म नि धनि धनि धनि धनि धनि धनि धनि ।
ऽऽऽ गृह ००० ०० [1]पि ०० ० ०० ता ०० ।
नी नी नी नी नी रि री री री ।
पु० रु ० षं[2] ० ० ०० ० ।

री री री री मा मा मा री गां । म [ते] सा स ग ।
पु ० रा ० ० ० ० ० । ०० [3]णं ० ० ।

ग प पा म नि ध नि ध नि ।
वे ० ० दो ० ० ० ० ।
ऽऽऽऽऽ धनि नी नी रीरी री गा सा री [ती] सा री री री ।
(प) ऽऽऽऽऽ नि० षदुतत्त्वज्ञं[4] ००० प्रकृतेः ० ० ० ।

रीं रीं रीं रीं रीं रीं रीं । रीं रीं रीं मामरीगा ।
प ० ० ० र ० ० मं[5]० । स० ह० स्र० पा० ।
मस सा सासा मामा पापा ।
०० दं ०० स०ह ०० ।

नी नी री रि ग स रिग पा पा ।
[6]स्र शी ० ० ० ० ० र्षं ० ।
पा पा पा पा पा पा नि ध पा मा मा ।
- - - - - - - - - - - - ॥

शीर्षकं । शिखा-शिरःपाणिका न्यासान्त-विदारी [मध्य] मध्यमग्रामे समाप्ता ॥५६९॥

---

1 वि 2 षै 3 णै 4 ज्ञैः 5 म 6 अ शी००००० र्षा

×[स रि पा पा पा पा पा पा नि ध पा मा मा ।
- - नि० षद् त त्व ज्ञैः ० ०० प्रकृते ० ०० ।

म प पा पा म प प प प प प प ।
प ० ० ० र ० ० मं (००००) ।

- - - - - - | - - - - - - - - |
स० ह० स्त्र ० पा ० । ०० दं ०० स ह ०० ।

- - - - - - - - ॥
स्र ० शी ० ०० ०० र्षा ॥

शीर्षकं शिखा-शिरः-पाणिका न्यासान्त-विदारी मद्य मद्यम-ग्राम समाप्ता ॥]

पा पा पा पा पा पा नि ध नि प मा मा ।
पु ० ० ० रु ० ०० ष ० (००) ।

प प म ध म मा मा नि ध स नि ध प ध म ध ।
[1]मि ष्टि ० [2]दं दे ० वं ० ० ० ० शा ० (०००) ।

नि ध पा ध प । ध नि ध नि नि प नि ध प म गरिरिम ।
म ०० य ००० । ० ० ० - - - वि ० - - - - - ।

स रि म प पा पा म प प प प प प ।
[3]षं ० सु० व हि र (ण्य) ० ध नं प ।

मा धनि सा रि गा धनि म ध पा ।
[4]रं ०० [5]ब्र ह्मा र्चि त दे वं ।

×कोष्ठान्तर्गत अंश पुनरुक्त है ।

1 मेष्टि 2 मं 3 वं 4 यं 5 ब्रह्मावितं

प ध ग म ध नि ससध पा पा पा पा ।
शं ० क रं ० न० मा मि ० ० ० ।

मा प म प पा पा पा पा ध वो (?) ।
यो ० ० ० [1]देवो ० धाम्[2] - - ।

धानीपापारी म ग ग म पा पा — ।
नां[3] ० ००० ०० ० ० ० ० ० ० ० ।

मा ग पगम गरी सां सां सां सां ।
प्र थ ००० ०० [4]मो ० ० ० ।

माप मगारी सारि सारि री । रीम पापा धमनिधप ध मा मा ।
बभू ००० व ० ०[०] ०० । आ० ०० ०० ० ०० ० ० ० ।

धानि धानि पापा री मगम पापा ।
आ ० ० ० ००० ०० ०० ।

गाग पगमग रि सासासासा ।
आ० ० ००० ० ० ० ०० ।

म प म गारी सरि सरि री री ॥
आ० ० ० ० ०० ०० ० ० ॥ध्रुवः॥

री रि मरिमगरिपामपापापापा । पा पा पापा पा पा पा पा ।
ब्रह्मादिको ०० देव ००० । ० ० ०० ० ० ० [वा०] ।

म धनि धपपरीमगम पापा । पापा पा पा पा पा पा पा ।
एको ० ०महतां[5]००० ००० । ०० ० ० ० ० ० ० ।

---

[1] वा [2] म [3] ना [4] मा [5] ता

रीमामारी मापम पापापापा पा पा पा पा ।
आ००० ००००० आ००० ० ० ० ० ।

मा धा नि ध पारी मगम पापा । पा पा पा पा पा पा पा पा ।
आ ० ० ० ०० ००० ०० । आ० ० ० ० ० ० ० ।

मप पापा पापा प धमा ००० । पाधा धनि ध पारी मगम पापा ।
हि० र० ००ण्य ०ग ००० । [1]भँ००० सुषु[2] ०००००० ।

गाग पग । गमगरी सासासासा मा पमगा ।
वे०० ०० । य०ज००० माना०० यँ[3] ०० ।

रिम पापा धनीमम पध मामा । धनि धनि पापारीमगमपापा ।
आ ०००० ०००० ०० ०० । आ ००००००००००० ।

गाग पगमगरिसा । — सां सां सां ।
आ ०० ०० ०० । ० ० ००० ।

माप मगारी सरीस रीरीरी । रीरी मगारी पम पा पापा ।
यँः[4] ००० ००० ००० ०० । सत्य ०बुद्ध्याँ[5] ०० ० ०० ।

पा पा पा पा पा पा पा पा । माधानी धप परी मगम पापा ।
० ० ० ० ० ० ० ० । अस्त्रं०० प्रणिनाँ[6] ००० ०० ।

पा पा पा पा पा पा पा पा । रीम मारी मारी पम पापा ।
० ० ० ० ० ० यँ[7] ० । आ ००० ०० ०० ०० ।

पा पा पा पा पा पा पा पा । मा धा म ध पारी मधम पापा ।
आ० ० ० ० ० ० ० । आ ० ० ० ०० ००० ०० ।

---

1 भँ 2 पुशु 3 प 4 या 5 बुध्या 6 शसुना 7 श

पा पा पा पा पा पा पा पा ॥
[1]आ ० ० ० ० ० ० ० ॥ **प्रतिमुखम्** ॥

पाध धमा माधा । धनीरी गरी ।
[2]भं०० वं ०० । हरि००० [3]सं ।

गा मारि गगा सासागपपा । पापा पापा ।
गगतं ००० ०००दे । ०० ०० ।

पापापापा । पा [०] पा पा पा पा पा पा पा ।
००[4]वं० । तं ० ० ० ० ० ० ० [5]शि० ।

रीग सागम पम । गम गारी रीरी ।
वं० ०० ०० ०० । ०० ०० ०(०) ।

रीरीरीरीरी ग सासा । सासासासासा गमपम गमनी ।
विभुं ००००० गज० । मुख गुहजन ०० ०० ० ।

रीरीरीरीरीरीरी । पा मामा मा मा मा मा मा ।
नं० ००० ००० । [6]शंभुं० ० ० ० ० ० ० ।

मामा मामामामा मामा । मामारी मामामामामा ।
[7]प्रं ० ००००० भु० । मचल [8]राजशिखर ।

मामामामामा धाधाधा । धनीरीगा सामग मामामा ।
निहित पदं ०००० । भा ००० ०००० चं०(?) ।

मा मा मा मा मा मा मा मा । धानी सनी धनी ध पापापापा ।
भा ० ० ० ० ० अं०(?) । वि(?) ०००००० [9]शं००० ।

---

[1] अ [2] द०० य [3] स । गगता [4] ह [5] सिं० । व [6] संभु
[7] य [8] सजशिखर [9] सं । उं

धप मामामामामामामा । मामा मामामामा मामा ।
भुं॰ शं॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ । कें[1] ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ रं ॰ ।

मामामामामासारीगगध । धानी धनि ध ध ।
त्रिदश जन का ॰ ॰ र॰ । णम॰ मो[2] ॰ ॰ ।

पम ध पापा पा । म ध धा धा धा धा धा ध नी नी ध पा ।
॰॰ घं[3] (॰॰) ॰ । य ॰ ज्ञांचित ॰ ॰ ॰ ॰ म ।

मामामामामामामामा । पा ध मधानीध पापापापापा ।
ने ॰ क यां[4] ॰ ॰ ॰ ग । कृतनिल ॰ यं ॰ ॰ ॰ ।

रीमापाध पधा धाधाधा । मध धा धा धा धा धा धा धा धा ।
महा[5] ॰ ॰ ॰॰ ॰ ॰ ॰ । दे॰॰ वं॰ सुरा॰ र्चि॰[6] ।

धा धा धा धानिध पा पा पा । पा पध मामध पापापाप ।
तमने[7] ॰ क ॰ भू ॰ त । भाव॰ भ॰॰ व्यं॰॰॰ ।

री मा पा प ध धा धा धा धा धा । धा धा धा धा ।
रु ॰ द्रं[9] ॰॰ व्रजा ॰ मि ॰ । श र ण मुं[8] ।

धा धा नी ध पा । पापध माप ध पा पा पा पा ।
मा ॰ पति ॰ । मना॰ ॰ ॰ द्यं ॰ तं ॰ ॰ ।

मामा धा धा नी धापा प् ध् । मा री री पम पापापापा ।
जगति देवाँ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ । दि निखिलें[10] ॰वा॰॰॰ ।

धस सा सासारी रिग गध धा ।
स्तु॰ नि हि[11] ॰ ता ॰॰ स॰ मी ।

---

1 कें॰ ॰ ॰ ॰ ॰ चं॰ 2 मा 3 ध 4 यो 5 गृहं
6 विं॰ 7 न 8 तु 9 यवा 10 निनिगि 11 द्वि

नी धपा धामाग मम मग मपा ।
हि॰ तपरम॰ प॰ ० ० ० ।

पापा पापा पापापापा ॥
दा[1]॰॰ ० ० ० ० ० ॥

शीर्षकम् । वरदा पाणिका शुद्धपञ्चमी ॥५७०॥

धस सारि पप प प प प प धधनी ।
तं[2]॰ टाव तीर्ण गजलुलित जला ।

ध ध प प धध सस धनि धस सासा ।
मृ दु प व न ललित तरु तलं[3] ।

धनिधधगास सरिगमगरि ।
कुं[4]ररकारंडवरव कलिता ।

धनि धग ससस पप धनि ध पधा ध पा ।
गं॰ गा॰ पु॰नातु य मु ना स हि ता ।

गरि गरि गरि गरि । गरि मगरी सासा ।
रु॰ ०० द्रं॰ ०० । रौ॰ ० ० ० द्रं ।

[पपानान ही] धा धा धा धा धनी धा पापा ।
- - - - - नृ घ टि ० त दे ०० ०० ।

रीपापाधापापधससासा । सासा पाधा मामामामा ।
० ० ० ० ० ० ० ० ० । हां[5]॰॰ ० र्द्धे ० ० ० ० ।

---

1 द 2 प॰ चा विकीर्णगजललित-जदा 3 सुदं 4 ऊररक्तरारवरवकलितं 5 ह

सामा । मामामामारिग । सां रीग सांरीग सांसांसांसां ।
[1]शवश । यनं० शिरो०० । [2]लै ००० ००००००० ।

सांरीग सांसां पाधा पाधा । पाप धस सासा सा सासा ।
[3]सित० भ[र] ० स्म सि । तं ००० ००० ००० ।

निधनी धरी गरीग । सां सां सां सां ।
मदनां ०० ० ० । ०० ग दहनं ।

सा सा सा सा सा सा सा रिग । सासा धाधानी धा पापा ।
दि ० क व दि वा ०० । जग तियचा ० ०० ।

धनीपापा धा पा प ध सारीग । सासाधरिपापाधापाधा ।
ज० गति य ति ते ० वा०० । जगतिदयवधतिलक ।

पाधा पासा पामा मामा । मगरी पाधा पापा धससा ।
दि निनिनि गिवा ००० । [4]मृडं० ००० ०० ००० ।

नी ध सम धरीग ।
[5]अप्सरो ० ००० ॥

न्यासान्त–विदारी । [6]एकवर्णाङ्गेन शरीरम् ॥ ५७१ ॥

सासासारी । गा सांसांसां । सांसांपाधा ।
भर नमि । त मणिपा० । द पी ० ।

(५७१) i. "वर्णाङ्गैः, वर्णैर्विरचितम् ।" (सं० रं० III, पृ. ९१, सिं०)
ii. "शरीरं नाम अङ्गम् ।" (III, पृ. ९७ क०)
iii. "शरीरम्, शरीराख्यम् अङ्गम् ।" (III, पृ. १०५ सिं०)

1 सवस । वना० सिर 2 त 3 शि
4 मृह 5 असरा 6 एकवर्षागेन शरीर

पा प ध स सा पाधा मामा । मा मा मा मा गारीग सारिग ।
ठं ० ० ० ०० ० ० ० ० । भा ० सुर भुज० मने ।

सारीगसां पाधा पाप धम । सा सा पा धा मांमांमांमां ।
० क० रि पु ह ०रं[1] ०००। ० ० ००० ०००० ।

मामा मा मा मा गा गागारिग । सारिग सारीग सारिग सारिग ।
क न क नि भ ममल०० । कपि० लज० टां०० भा००० ।

सां सां पा धा मां मां मां मां । गारीपाधा पापा प धसासा ।
० ० ० ० रं[3] ० ० ० । न मा मि दे ०००वं० ।

×सा सा सा सा पा धा मा मा ।
[4]विषमे ० ० क्षणं ० ० ॥

शीर्षकं । रुद्र-पाणिका [तं] शुद्धसा (धा) रिते ॥५७२॥

ससनी ध मं नीसनी ध स सा सा० ।
००० [5]सुपुष्प प्रदा ० ने ० न० ।

[एष] सनीधनी नीमा मां ० ० ।
अशीति ० कलको ० टिनां[6] ।

सं सं गं रि मंमं धंनिं सनि । धं सं ० ० ।
[7]द्युं ती ० ना ००म । (क्ष) यं० याति[8] ।

× यह पङ्क्ति ह० लि० में इस प्रकार है:—
" विषमे । ०० त्तपणं **शीर्षकं रुद्रपाणिका** ।
सासा । सा सापाधा मामा । तं शुद्धसारिते । "

---

1 रिपुद० रा 2 दा 3 र 4 विषमे ०० त्तपणं ०० 5 कुपुष्प 6 ट्य
7 दु ती० ना०० ध । मं 8 छति

संं स सासा स धनिनि मां । सा सासासा ०० मां मां ।
मंत्र ज्ञाता शिवार्चने । ध[1] वलांबर ०० (भ) स्मवि ।

धा ध नि निध मांमांमांमां । धा मांमांमां म धामारी स ।
भू ० ० षि० तवपुष । [2]मा ० ० ० ० ० ० ० ।

सागरिसासामामासासासागरिसामगमसामामामा ।
त्त०० [3]नृकं०० ठमभिरुचि० रत०० नुं०००००० ।

मामागारिगरिममगरिसासा ।
आ ०० ०० ०० ०० ०० ।

रिगम गरिरिरीम मरि सासा ।
आ ० ००००० ०० ० ० ।

मामा । रीगा मगरिगसा० सा० सा० सा० ।
० ० । विपुल ० [4]जं० टं ०० ० ०० ।

मासाधा मां धा सा न ध सा ।
आ ०० ० ० ०० ० ।

धासा मधमा सासासासासा ।
आ० ००० ० ० ० ० ० ।

न्यासान्त-विदारी । संपिष्ट-संहरणम् ॥ ५७३ ॥

री रि ग सा सा नी निध सा सा ।
- - - - - - - - - ।

मा मां धानिधसामामाधासा ।
- - - - - - - - - ।

---

1 धवलंवत 2 आ 3 प्लकं० णमभिरुवि० रत०० नु 4 च० जं

निध सासासा रीगाम गरीगसा० ।
- -- -- - - ।

सा० सा० सा० धामा धानि धरी रि ।
- - - - - - - - ।

ग मा नि ध ॥
- - - - ॥

न्यासान्त-विदारी । सामुद्ग[1]-विविध-मुखे ॥ ५७४ ॥

धा धा धा धा धा धा धा ध नि नि ।
न म त दे ०० वं[2] मु मारा०ध्यं[3]य०ग० तिं[4]००० ।

ध स स सानि धनि सध मां धा सा ।
[रा० धि० ग० ति ० ० ०।]

मध री री ग सा सा नी निध ।
आ ० ० ० ० ० ० ०० ।

धा धा धा धा धा धा धा धा ।
आ ०० ० ० ० ० ० ०० ।

- - - - - - - - - - ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

ध नी नि धनी मा मा मा मा ।
पं ० ० चविं ० ० शं[5] ० ।

निध नि धाधा गारी सा नी नी निधसा ।
तंत्त्व[6] प र तं[7] ० ० ० रं ० --- ।

---

[1] सामुद्र [2] वम [3] धि [4] ति [5] स [6] कस्य [7] ता

री रि ग नी नि ध सा सा मां मां मां ।

आ० ०० ० - - - - - - - ।

मां मां मा ध सा सा सा गरिमं गम मामा ।

- - - - - - - - - - - - - - - ।

मा मा मा मा गरि रि ग म ग री सासा० ० ०० ।

- - - - - -- - - - - - - - - - -- ।

आ० ० ० ० ० ० ० ० वेदां० ते०० षु च० गी० ० ० ० [1]तं तं० ० ० आ००००००००० । आ००००००००० । [2]यो० गि वे द्यं यो०० ग० परा००० य०० [3]णं०००० । आ००००००००००००० ॥

रिगमगरिरि गम गरिसां । समनिधस सनिध सारी गारिगसनि धसाममामा मामामामा री मानि धरी रिग सासानी निध ॥

न्यासान्त-विदारी । [4]सामुद्ग- विविधमुखे ॥५७५॥

नीध निरी रीरी रिग धानि धानी मामामामा गारीमामा धस धनी मामामा सासानी धनि रीरीरी रिग ॥

आ०० ०० ० ०० ०००००० मन० सि० ज० । [5]क्षं० पित० । म० [6]नो० नि० य०० तं००० । आ० ०० ०० ०० ०० म० [7]हां० तं०००००० प्र० कु००० ति०० । पु० रु००००० षं० [म० म० हां०० तं०० ०० ॥

1 तत 2 योगिविद्यां 3 णै 4 सामुद्ग 5 छा 6 ण 7 हं० त

सा सा सा सा सा सा सा सा सा धानि धानी मां मां मां मां। सा मा गा रि रि गम गरी सासा। धाध् निध् निनि ध मां मां मां मां। धा मां धामा निधनि सा रीरीरी रिग सासा धाधाधाधाधानि धानी मांमांमांमां ॥

प्र० कृ० ति पुरुष०।× परते[1] ०० ० रं ००००। मं ०० त्र मू ००० र्ति० ०० (मि) ००० न्द्रि० यें[2] ००० द्रियाँ[3]०। र्थ रहितं ० म ० यं(?)। ० सू ०००। तिसू ००००००० क्षम०००००० सू ००० क्ष्म ॥

गा री मा मा मा निधानी धा धा। रीरीरी ग सा० सा० सा० सारिग धाधाधाधाधाधाधाधा निधनी मांमांमांमां। गारी मांमां मा मांमां मारी मांमांमांमां धामनि धाधाधाधाधाधाधा री रिग सासा। मगमामा ॥

त०००००० रं[4]०। तितिक्रहल० कुच दिवा। ०० वा ०० दिगितिगि००००००० चा०००। स ०० वें भा ०० वं। भा०० व गृहं तं०००। स० वें तो० स्मि०० पा०। ० द शिर०० सा०० ॥

सा मं धानी मां मां मां मां मां मां मां मां। माधनिधानी मांमां ॥

न्यासान्त-विदारी। एकैकवर्णाङ्ग[न]-शरीरम् ॥५७६॥

× यह वाक्यांश पुनरुक्त है।

---

[1] ता [2] यै [3] य [4] रै

मानीनीधानी गारी मामामा गा मामामा नी ध प । मनि धाधाधा रीरीरी गारी गारी गा सासा गरिसाम०० । ०००००००० ॥

ध्या० ना० नं० तां० तं० मनसा००००० । परि ००००० भु० गृह (?) ०००० निर्गुणं निर्गुणं[1]००००० त० । नुकं[2]००० गुण०० । प्रव०० तंकं[2] ०० ॥

सा सा गरि स म री री री री री री री री मारीरी रिगग रि सम रीरी री री री री री री री रिगरिमंमां । सां सां धानि धानी मां मां मां मां मां । सा गासा धाधा धाधाधाधाधा नी मांमां ॥ विदारी ॥

×[संवृष-संकरणं शीर्षकं धवल-पाणिका ॥]

गुणा ०० ०० नेकं[3] ०० । प्रभुं० तंका ०० लतू ०० प० मगत माना ००० न० तं ००० म (?) सं ०० स्थि० [4]तं००० देवा००० धिदे० वं तं परत (र-) भावं० । ह००० रं[5]००० ॥

संवृष (?) [6]संहरणं शीर्षकं धवल-पाणिका मध्यमे [7]गीयते चोक्षकैशिके । समाप्ता ॥ ५७७ ॥

रि रि रि म स० स० स० स० स० स० स० स० स० स० स० स० । सास गनिम नी नि सरि गरि री रि म । री ग स स स नि ध् प् ध म् ग म् पा पा रि रि स स स स स स स स स स स स स स स नि ग नि म ग रि सा ॥

× (५७७) यह वाक्यांश इसी क्र० ५७७ के अन्तिम वाक्य में हमने जोड़ दिया है ।

1 णं 2 कां 3 क 4 त 5 शं 6 संकरणं 7 गीते समाप्ता ॥ छ ॥ चोक्षकैशिके ।

[1]नृत्य सक्त प॰ द प॰ झं मृदु- । [2]ती॰ व्रतर चरणां॰॰ [3]बुंजकल-[चरणा ॰॰ वरकल] हंस नू ॰ । पुररवं[4] ॰॰ श्वविना॰ तुर॰ र॰ (?) महिर्षं[5] महा॰ सुर॰ स्य [6]शिरसि॰ प्रस- । [7]भंनिहित॰॰॰ सकल [8]शरीरम् ॥

रि ग स स स नि ध प ध म ग म म पा पा ॥ध्रुवकम्॥

सां सां सा स ध धनि स धनी पा पा पा पां नी मा मा री ग म ग री सा॰ सा॰ । धा नी सां स ध ध निस नि ध पां पां पा नी री रि ग सा स ध सा सां स ध ध नि स नि ध पां पां पा नी नी नी रि ग सा म ग रि सा सां धा नी ॥

हीवरे॰ ह गुरुता॰ कथम॰ नुगना॰ (?) । जलद [9]नी॰ ल॰ पी॰॰ वरपिं॰ गल जटं॰॰॰॰॰॰॰ । आ॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰ आ॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰ [10]त्रिदशद॰ [11]लं॰ पु॰॰ रु धारिपु- । म॰ थनं[12] ॰॰॰॰॰ । आ॰॰ ॥

सा स ध ध नि स नि ध् पां पां पा नी री रि सां स ध स सा स ध स सा॰ सा॰ नी नी नी रि म मां मां मां मां धानी स म ध नि ध पां पां पां पां । धा मां धा मां मम धनिध् पां पां मा मां मां मां मां मां म प मां । नि ध नी स नि ध मा म नि धनि सा सा । नी नी नी नी रि ग म म ग री सा॰ सा॰ निध ॥

---

1 नृत सत प॰ श्य॰ झ 2 तं॰ व्रतुल 3 वर 4 वा 5 षा 6 सि

7 रुनिहता 8 महीरम 9 न॰ ल॰ रु॰॰ चरापि 10 तृ 11 र 12 न

◦◦◦◦◦◦◦◦◦ । आ◦◦◦◦◦◦◦◦ । प्रृं[1]• । थु•• दे• हं•• सततं◦◦◦◦◦ स्था • नं • । प्रतिभूत व • पु • • । षं[2] • । मदनं[3]तनु-हरं••• । व◦ र◦ कं[4]◦ न क◦ स• ह• [5]शं क पिल जटं ◦◦ ◦◦ ◦• ॥

सा• धनि धनि ध मा ध म धनि धनि धनि पा पा सा सा स ध ध नि स नि ध पां पा पा नी नी नी रि ग म ग री सा सा । धानी सा म ध् ध्नि ध पां पां । पा नी नी नी रि ग म ग री सा सा सा सा स ध ध नि स नि ध पा पा पा नी नी नी रि ग म ग रि सा सा नि• ॥

गण• प• ति[6] • प• ठि• त• त• नु• • • मुखं । सुर मुकुट◦ द[7]लल्लि • खित- । चरण युगं ◦ ◦◦ ◦◦ ◦ ◦◦ ◦◦◦ । आ ◦◦ ◦ ◦◦ ◦ ◦◦ ◦◦ । आ ◦◦◦◦◦◦◦◦◦◦◦ । असुरग• ण• । [8]नं• मि•• तं• । सुख जननं•••••• ॥

धानी सा स ध् धनि स धनि पां पां पा नी री रि ग सा स ध स नी नी नी नी रि म धा नी स नि ध नि ध प म पांपांपां धा मा धानी स नि धनि ध पां पां मां मां मां मां मां मं म प मां । नि धनि स नि ध सां म नि ध नि सा सा । नी नी नी नी रि ग म गरि सा सा । नि ध ॥

आ ◦ ◦◦ ◦◦ ◦ ◦◦ ◦ ◦ ◦ । आ ••• ••• ••• •• । [9]जटा• क◦ रा◦ लं• च• ज• मि ◦◦ व •• स्य (?) सुरार्चित

---

1 व• । थ•• दे• वा 2 पं 3 म 4 ह 5 शो 6 रि 7 दव
8 मि• मि•• त 9 अवा

व० पु ०० (षं) ०० हिम शिखर-गृहं ००० । व० र० स० लिल० वि० मल[1] धौ० तजटं ००००००० । क्रं[2]० तु ॥

नि स नि धमामनि ध नि ध नी । पां पां पास ध ध नि स नि ध पा ध नि म ध मा धानी निस नि धा नि धा पा पा सां सा सा री नी । नी री नि नि सा स नि गां गां गां रि म रि ग स० सा० सा० सा० सा० सा० सा० सास ग री रि नि सां सा सा० ॥

श० तपरिप० ठि । ०००००० [3]तं० त्रिभुवन० न० मि०० [4]तं ०० । ज० गति योत ०० ति०० चा० ग ०० द्यवा ०० घास ००० सुतं ०० ०० यो (?) ०० ०० [5]भं० स्म० । भू००० षि० तं[6] ००० ॥

सा री नी । नी री रि नी सा धनि गां गां । गरि गरि सा सां नी धा पां पा धा मा ग मां पा पां पां । सा सा सा सा नि सनि नी नी गा गा गा गा ग रि सा सा सा गा गा गा गारि रि ग रि सा सा गा गा गा गरि गरि सा सा सा सा सा ॥

कां ०० [7]तां दे०० ह । सं ०००० गतं० प्र०० ति ००० न० तो० स्मिम । [8]हे ०० श्वरं ००० [9]मृ ०००००००० दुं । ०[10] ब००० भ्रु ००० [11]जं० टा० नि च ००० य० व० लि० त ००० क० [12]रां० ल० ज० (टं) ॥

---

1 ला 2 कु 3 त 4 त 5 रु 6 त 7 न्त 8 हृ०० स्वर 9 ऋ
10 ज००० श्चु 11 क० डा० यति 12 हृ० दं

री नी नी री रि नि सा स गां गां गा । गरि गरि सा सा धा पां पां धा मां गा मां पां पां पां पां सरी रि नि स सा सा स स नि नी नी । सा स नि री रि निसा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ सा॰ गां गा गां ग रि गरि सा म । गा गा रि ग रि साम । गा गा रि म रि सा सा । सा स नि री सा सा नि री ॥

[1]स्वभु॰ ज॰ गति॰ व॰ ल॰ यित कोटि॰॰॰ गि॰ नि॰ गि॰ । [2]रु॰॰॰ द्रं॰॰॰ [3]मृडं॰॰॰॰॰॰॰॰॰ । अमृतें॰॰ दु कुं॰ द । सं॰॰ नि भं॰॰॰॰॰ । सौ॰॰ रते॰॰॰ य र य॰ रा र मं (?) ॥

सं ध धा मा म धरि रीरी॰ री॰ री॰ री॰ री॰ री॰ री॰ री॰ रि सं॰ । समोन॰ एसनु(?) । री नी गरि गरि सा ग रि सा सा नी धा पापा धा मां गा मां पां पां पां पां ॥ + [शीर्षाम]

तं॰॰॰ धनद य॰ म । [4]वरुण व॰ ज्रधरा॰ कृतिं मु॰ निगण परिपठि॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰ । ॰॰॰॰ तं॰॰॰ । [5]वं॰ रं॰॰॰ न तो॰ स्मि सदा॰॰ शिवं । ॰॰॰॰ [क] ॥ **शीर्षकम्** ॥

सदाशि(व)पाणिका शुद्धकैशिके मध्यमे गीयते । समाप्ता ॥५७८॥

+ इस पङ्क्ति में 'शीर्षाम' आया है, तथा आगे की पङ्क्ति में 'क' आया है, इन दोनों को मिला कर हमने इस पाणिका की समाप्ति में 'शीर्षकं' शब्द बना लिया है ।

1 तु क॰ ज॰ गति॰ य॰ व॰ लित 2 रुं॰॰॰ दुं 3 गृह 4 चरुण 5 वदं

स गं सं गं गां म म ग सं गं सं गं ग म ग । सनिसग गा गा म ग म म धप ममम ग सं ग ग । गमगसनि सग गा गा । ग स नि नि नि नि स स नि नि नि स गनि ग ग ग ग ग प प नि ध नि स धरि स प म प म ग । ग ग सग म ग ग स नि ग स ग गरी ध पा ॥

वलिभर उंगभं सुषग म करा ॰ हत (?) । द्रुतगमनं ॰ ज्वलित सिता ॰ ॰ ग्निषं ॰ त्मानुचरा ॰ हतण ॰ (?) त ॰ ह ॰ हि (?) हिमगिरि शिखर कुहर गुहा[1] विलुलित विमल[2] जला॰॰॰ ॰ ॰ ॰ हर शिरः पतित । [3]गंगा॰ (प्र) ति ॰ [पु] वहतु मम दुरितं[4] ॥

नी नी पा ध नि नि म म गा गा गा । मा पा प प म पम ग ग गां ग । सा नी गां गां गां गां गां गां । मा पा पम् गम् पम गंम् गां गां । मा मा गां गां गां गां गां मा मां मा पा ध नि नि म गा गा गा । मा पा प म ग म प ग म प ग ग म गा ॥

ए॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ को ॰ । रु॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ द्रो ॰ । नं ॰ द्वि [र] ॰ ती ॰ ॰ ॰ यो ॰ । जा ॰ त ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ स्त्वं ॰ । आ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ । आ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ । आ ॰ ॰ ॰ ॰ [पनी] ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ । आ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॥

गा स स नि नि सस गां गां गां गां गां । मा पा प म प् म ग म प ग् म् प म ग म गां गां । नी नी पा ध नि नी

---

[1] द [2] ला [3] गह्वा [4] तः [5] ना

म गा गा गा । मा पा प ग म प म गं गं गां गां । सा नी सा गा गां गां मा पाम पम ग मा गा गा । नी नी पा ध् नी नी नी म गा गा मा पा प म ग म म° ॥

ये ०००००० मालो ० ० ० ० ० ० ० का ०००००० सा ०००० नी ० ० ० ० ० । शो ० ० ० ने ० ० ० ० ० ति (?) आ ० ० ० ० ० ० ० ० आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ॥ आ ०००००००००० ॥ आ ० ० ० ० ॥

पम माग गा गा । सनि ऽऽऽ । सा स ग गां गा । गां गां । मापा पामा ग म पाप ग म गा गा नी नी पा ध नि नि म गां गां । मा पा प म ग म पनि गम गां गा । सा नी सा गां मा गां गां गां । मा पा प ऽऽऽ म ग म प म ग म गा गा । नी नी पा ध नि नि म गागा मा पा प म ग ॥

० ० ० ० ० ० ० ० ० । प्रऽऽऽऽऽ त्य[1] ० ० ग्ज्ञा ० नां ० ति ० ष्ठ ० ० ० ० ० ० ० ० ति ० सं ० वा ०० ०० को ० सं ० ता(?)००० का ० ० ० ले ० । आ ० ० ० ० ० ० ० ० । आ ० ०० ०० ०० ०० । आ ०००००००० । आ ००००० ॥

म पा मा ग म गा गा स नि ऽऽऽ सा स ग गां गां गां गां । मा पा प म गम पगम् पगम् म गा गा । नी नी पा ध नि नी नी म गागा । मा पा प म गम गम गम गम गा गा । सानी मां गा गा गा गा गा । मा पा प म् गम गामा । नी नी पा ध् नी नी नीम गागा ॥

---

[1] त्यं०० जा० ना

०० ०० ०० । स ०० ०ऽ० सृं ०० जति० वि० ००००००००० ।
श्वं[1]० । भु ० व ०० ना ००० नि । गो (?) ००००००००० आ ० ।
आ०००००००००० । आ०००००००००००० ॥ आ००००००००० ॥
मा पा प म ग म पम ग स गा गा ॥ **प्रतिमुखम्** ॥

सा सं नि सा सं ग गा गा गा गा ग सं स म गम पा पा पा ग सां सं धं । समगागा गा म म म ग गा गा नी नी म सा सांनिं सनि ध धा । प म ग म पम गम ग धा नी स नि स ग गा गा गा गा गा गा गा पा पा पा पा पा ॥

आ ०००००००००० यो ०० यो ०० ऽ नि० योनि०० र्म्म[2] ००० ध्ये० तिष्ठते ००००००००० । को ० यैस्मै[3] ०० ये ०० ने ०० दं[4] ००० सं ००० (द) धामि[5] ० ते ००० ति ००० सं ००० (द) धा मि ० ने ००० ति ००० स ० र्वं० स्त्वं[6] ० सा० शा पे व (?) ॥

ध नी नी स सा नि स नि पा धा नि प म ग म ग मप ग मा म ग म गा गा सा स नि सा स गा गा । गा गा पा प ध मा मा मा म प प । गा गा सनि स ग गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा ग म स म ग म पा पा पस सास नि स गनि ॥

---

1 श्री ०० जांति 2 स्व 3 यस्मे 4 द 5 धमि 6 त्वं

∘ ∘ वरदं∘ [1]दे ∘∘ ∘∘ व मी ∘ ∘∘ ∘∘ ∘∘∘∘∘ [2]ड्यं∘∘ नियं ∘ ता ∘∘ ∘∘∘ ∘ [3]रं∘ । शां ∘ त म∘ नं ∘∘ त∘ मि[4] ∘ ∘∘ ∘∘ ति ∘∘ अजामे[5]∘ को∘ लो∘ । हि∘ [6]तं ∘∘ शु∘∘∘ [7]क्रं कृ× ∘ ∘∘ ∘∘ ∘ ॥

गा म ग म गा गा नी गा गा नी नी नि स सा नी स नीप ध म । प म ग म प म मा सा म ग म गा गा गा । सा सा स धस गा गा म ग म गा गा गा । गा ग स स म म पा पा प स सा । स रि स ग गा गा गा म ग म गा गा । नी नी पा धनि नि म गा मा पा प म ग म ग म ग म∘∘∘∘ ॥

× [8]ष्णां∘ [9]बर्ही: ∘∘∘ प्र∘ जा: ∘∘∘ सृ ∘ ∘∘ ∘∘ [10]जं∘∘ [11]मानां । स्वरू∘∘ ∘∘ ∘∘ ∘ ∘∘∘ [12]पो∘ अ ज∘ [13]एं ∘ ∘∘ [14]कं: सु∘∘ [15]प्रं मा ∘ ∘∘ ∘∘∘∘ ∘∘∘ [16]णं∘ । [17]एं ∘∘ ∘∘ ∘∘ को ∘ जा∘ ता ∘∘∘ [18]नां ∘∘∘ ॥

गा गा सां सां स न स गा गा म गा ग — । प म ग म प म ग सा म ग म गा गा ॥ **शरीरम्** ॥

सा सा स नि प नि स ग गा गा । गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा गा नी नी पा ध नि नी नि म

× उपरोक्त में से एक पङ्क्ति में 'कृ' तथा आगे की अन्य पङ्क्ति में 'ष्णां' आया है । इन दोनों के योग से 'कृष्णां' शब्द बन जाता है ।

1 दि 2 द्य 3 र 4 मे 5 म 6 ता 7 क्रं त्व 8 त्रा 9 वाधै 10 मा
11 मनो 12 यो 13 प 14 को 15 प्रा 16 णो 17 सु 18 नो

गा गा गा मा पा प म ग म ग म प म म म गा गा । सां नी सां ॥

यु[1]० क्त मात्रा ००००००००० गं[2] मो यो ०००००००० ००० ००० नि० गृहं० ० हि[3]० र० ण्य गर्भः समवर्तता० । ००० ००० ग्रे० भू ० त ०० स्य जा[4] ० तः पति ० ०० ०० । रे ० ० ० क ० ॥ आ[5]००० ॥

गा गा मा गा गा गा गा गा ग स म म ग म पा पा प स सा स म स ग मा गा मा म ग म ग गा । नी नी पा ध नी नी नी म गा गा गा । मा पा प म ग म पम ग मा गा गा । सा सा स रि स ग मा म ग म गा गा ॥

सी (त्) ० ० ० स ० दा ० धा ० ० ० र ० पृथिवीं ००० (द्या) ००००००[6] मुं[7]००० ००० ते[8]० (मां) । कस्मै[9] ००० दे००० वा० (य) ह विषा[10] ००० ० ००० ०० । प म ग म प ग ग म सां म ग म मा गा ॥ **शीर्षकम्** ॥

× [गान्धार पञ्चम्या भिन्नषड्जे गीयात् ।] रीं रीं रीं रीं गा नीं गारीं रीं रीं रीं रीं पां पां नीं नीं । रीं रीं गा मा मां रीं रीं मा मा रीं रीं ग म म मा मा मा मा मा ग म गा रीं रीं सं

× (५७९) चिह्नाङ्कित 'गान्धारपञ्चम्या 'आदि वाक्यांश को हमने इस कण्डिका के अन्त में स्थानान्तरित कर दिया है ।

---

1 जु 2 गमायो 3 हि र: ० एपगर्त 4 जा० त 5 मा
6 सा 7 मू 8 तें 9 तस्मै 10 या

स ग । रीं रीं रीं रीं मां मां पां पां नीं नीं रीं - - री गा मा।
विधे[1] ०० ००० ०० ००० ००० मं[2]० ॥

गान्धारपञ्चम्या भिन्नषड्जे [3]गीयते॥ गान्धारीपाणिका समाप्ता ॥ ५७९ ॥

जय ओं सुरा० सुरनाथ [4]मं० त्र मय० गीतो० पह्रा० र० परीतं[5] ०००० सृष्टि[6] ००० ना[7] दा ०० भरित० देवं० गिरिजा० लास्य ०० प्रदं० नौ ॥

री ग ग म मा। मा मा धा गा रीं सारीं गा रीं रीं रीं। नीं नीं गा गा नीं। रीं गा रीं नी प गा रीं गा रीं रीं रीं। पानीं मां मां गां नीं रीं रीं मा मा नीं नीं रि ग गं रि गां री सा ध नि मा नि स रि सरि स म ग म ग रीं रीं रीं रीं ॥

आ ००००० मि ००० ॥ [वा] हं सा० ख्यं ०००। ओंका [प] र मयं० हृत्प० द्मगतं०। मो०क्षक करं ००० आ ००० ०० ०० ०० आ ० ०० ०० ०० ०० ॥

पां पां पां पं नि पं नि री नी री गा री। मा पा गा रीं सा म गम मा मा मा नी नी। रीं रीं स नि म ग री मां सां प नि मां गारीं। सा धा रीं रीं रीं पां नी पा नीं री गां सां सां सा सा री गा मा सां म ग म मा। मा मा मा नीं नीं म रि नि रि गां रीं मां ध नि नी ध नि सारिं म ग री रीं सां पां पां पं नि ॥

---

1 धि 2 ना 3 गीयात् 4 धं० उमया 5 परित 6 सष्टं 7 नाधा

आ ०००००००००००००० आ ०००००००००० ब्र० ह्ममयं ० ००० ० ० विष्णुमयं ० रुद्र ० [द्र] मयं ००० श० । क्तिमयं ००० ०० । आ ०००००००० आ ००००००००००००० । आ ००० ॥

पनि गरि मरि री री मपा गारी सां म ग म मा मा रीं रीं गा सरिं गां नि ग रीं रीं । पां पां नीं नीं पनि पनि नीं नीं । मागा रिसरि नि नी गा रीं रीं मां मां पां पां नीं नीं रीं रीं । मामा नीं नीं गरि निरि गारीमा धनिमां धनिमां धनिरि सम गरि रीं रीं पां पां प गरि नी री ॥

आ ०००००००० । आ ००००००००० । प्राणमयं ०००००० स ० मा ० न ० मयं ० [1]वि ० हा ००० (य) [2]साकारं ० । [3]त्वां० ०००००० आ० ०००००००० आ०००००००००० आ००००००००० ॥

गारी मापा मारीमा म ग म मा मा । गा गा गा नीं रीं रीं रीं रीं सां सां सां सा । - - - - - सा मा मा मा मा । नीं नीं नीं नीं सासा रीं रीं सा म ग म मा मा । मा मा नीं नीं गरिनिं रि मां ध नि मां ध नि मां ध नि रि म म । मरिं रीं रीं ॥

०० आ०००० ०० ००० [4]सोममयं००० सू०र्यमयं[5] ०००० वरुणो ० सिसदा० गगनतनुं०० ००० आ०० ०० ०० ०००० । आ००००० ०० ०० आ०० ० ०० ०० ०० ०० ॥

---

1 वै 2 साकरं 3 त्वं 4 सामभवं 1 भवं

पां पां पनिं पनि गरि नी रि गारीं मा पा गां री सा म ग म मा मा मा मा नी गा रीं रीं री मां। गारी मा पानी पानी नी पा पां नी नी नी सा नी। नी री री गा री गा री नीं री म ग रि रि ग सा सं रिं नीं नीं। नी मां पां नीं मां पां मा पां गा रीं सा गा री रीं रीं रीं रीं मा मा पा पा गा रीं रीं रीं ॥

मु॰ नि॰ जुं[1]॰ ष्टं [नीं नीं] आ॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰॰ आ ॰॰ आ ॰॰॰॰॰॰॰ तं[2]त्त्वमयं ॰॰॰। भुं[3]वनमयं ॰॰॰। भूं[4]॰ त॰ म (यं) ॰॰॰। स॰ वे गतं॰॰॰ देवं॰ भू॰॰ त॰॰॰ लोकगतं॰॰॰ आ॰ (त्रि) [5]विष्टप॰॰॰ ॥

नी॰ ग नीं नीं नीं रीं रीं रीं रीं नी रीं गारीं सा सा सा नी। नीम गम मामा नी नी गा रीं सां नी धा नी गा गा मा पा पा पा नी स नि रीं रीं रीं सा नीं नीं गा रीं रीं रीं पा नी पा गा री री री। गा नीं नीं नीं। सां नीं री नी पा पा पा मा पा मा पा पा मा मा मा मा गा मा रीं रीं रीं ॥

----मयं ॰ ॰ ॰ मा ॰ तृमयं ॰ ॰ ॰। न ॰ ॰ ॰ क्षत्र ॰ मयं॰॰ मे ॰ घ ॰ स॰ मु॰ द्र मयं ॰ ॰॰ ॰॰॰ पा॰ ता॰ ल म यं॰॰। धरणि मयं ॰॰॰ वे॰ द मयं ॰॰॰ मं॰ त्र मयं ॰॰॰ सि॰ द्धा॰ न्त॰ मयं॰ ॥

पां पां पां पां पां पां पां पां। पनि पनी नीं नीं नि रि नि रि रीं रीं रि गारि ग मा मारि रि मां मां मा। रि ग री ग

---

[1] पु [2] तत्पमयं [3] भत्रनमयं [4] मू [5] दिष्टयं

रीं रीं री गरिग मा मा रिग रिग मामा रिग रिग मा मा री री री री री री सा सा सा म म म ग मा प पा मा म म मा मा नी सां गारीं सारीं ॥

स०र्वं गतं००० [1]तुं००० बु०रु ना००० र द का००० [2]श्यप [3]मं० नो०० गं० । हा० हा० हू० हू० प००० ध्वज । हरिगी[4]०त चरणयुगं[5]० गुहं[6]००० गणपति । ज० न० कं[7]० अं[8]० ज तनुं[9]० विमलं० अभवं० ॥

सांसां मा पानी पापा पापापा । नीप सनिध नीं नीं नीं नीं नी री रीं मा नी नीं नीं । नी पां मा मा गा गा री री सारीं । नीं गा रीं री री पा नि ध नी पं मं नी स नि धा नीं । नीं नीं म ग री प म गा रीं रीं । नीं नीं नीं नीं पा गा गं रीं सां सां नी म ग म मा मा मा मा ॥ **शीर्षं रेवगुप्ते** ॥

०० स ग [10]णं० सुशिवं० पर० [11]मं०० [12]अजितं० [13]सुर गुरुं० सुगतिं० धनदं० सुखदं०० त्रिविध० ध०० न [14]मं०० [15]भिवा० ञ्छि० त फ० लदं । ० ममसि० द्धिकरं० । रुद्रं००० शरणम् ॥

निर्वाणपाणिका परिसमाप्ता ॥५८०॥

सां सां नी पा री म ग री सां सां री गा सां स नि री म ग री सां सां । सा सा नीं पां री म ग री सां सां । री गा सां स नि री म ग री सां सां । सा गा पा ध म पा ध म धा नि

---

1 ओ 2 स्य 3 ना० म ०० गै० 4 गा 5 ग 6 गृह 7 री 8 ह 9 न
10 ण 11 म 12 अं 13 सुरु 14 मा 15 मि

ध पा पा पा नी सा सा धा नि ध प मा मा । सा मा पा ध मा धा नि ध पा पा पा पा नी सा ॥ [समाप्ता]

पा० प० ना००० शं[1]० स्वयं० कृ० ति००० नां० । आ ०००० ००० ०० । आ ०००००००००० । लें[2] ज्जा०० भी०० तो० । दुः ० खै ह्रीं ०० ० नो० । आ ००००००००० आ ०००० ॥

म ध प मा मा सा मा सा सां मा मा मा मा । धा नी स नि धा पा पा नी नी मा पा गा गा सां मा पा मा मा पा गा गा स ग सा सा सां सां सासा सासा मा मा मा मा । धानि स नि धा पा पा नी नी मा पा गा गा सा मा मामा पा गा गा गा सं ग सां सां ॥ **मुखम्** ॥ [पापा मापा धा नी - - - -॥]

००००० दुष्ट० तमग ती[3] (नां) ०० दी० ना (ना)० मना० था० (नां) कृं[4]पणो० त्त्[5]राणां०० [म] शरणमसुखजन । आ ००००००० आ ००००००० ॥ [6]वि वि० ध क रु× ॥

सनिधा । पा पा नी नी मा पा गां गां । सा० सा० सा० सा० सा० मा मा पा पा गां गां गां गां गां गां गां गां गा पा पा मा पा धा नी स नि धा पा पा नी नी मा पा गां गां । सां सां सां सां मा मा पा पा गां गां गां गां गां गां गां गां री गा नी सां सां सां सां । नी नी पा पा सा सा ॥

× आगे की गीत–पङ्क्ति के प्रारम्भ में उर्वरित अक्षर 'णं' आया है ।

---

1 ह 2 लुज्ज्या 3 तिं 4 कृपिणो 5 तरहा 6 बिबि०क

णं००० [1]विध०येत्वमे०वय० च्छं[2]सिना० ना० सुगतिं०००००
आ००००००००। आ०००००००००० आ० ० ० ० ० ० ० ०
आ० ० ० ० ० ० ० ० सा० ग र स्वं[3] रू० पमिति विषमं० ॥

सा सा नी नी पा पा नी नी सा सा गा सा धा नी मा मा
मा मा नी री गा नी सा सा सा सा नी नी पा पा सा सा सा
सा नी नी पा पा नी नी सासा सां धा नी मा मा मा मा नी नी
पा पा नी मा मा मा सा सा धा नी पा पा पा पा नी नी सा
सां गा नी सा सा सा सा पा धा मा ॥

० ० दे० वं० [4]देव व (रं) ।० निर्विष विषं० ० ०
आ०००००००० आ०००००००० आ०००००००० सकला० लोकं[5]०
कं[6] पित भुवनं००० का० रुं[7]० ण्यायनं पुं[8]र० क्षि० तं० ॥

मा मा मा । सागा सासा मा मा मा मा मा मा मा मा
मा मा । गां गां गां गां गां गां गां गां गां गां सा सा गा
गा पा धा मा मा । धानी स नी धा पा पा पा पा । पा पा पा
पा पा पा पा पा पा पा नी नी सा सा सा सा। सा सा सा सा ।
नी नी नी नी । नी नी नी मी नी मी नी नी । सा सा सा
सा००० ॥

मा० तृ० गण सहितं । सकल तनुं[9]००० । ००००००००
[10]अखिल० लोका० बॉ[11]० स० करं०००००००००० मदनांग०
ह० रं[12]० सं० यमित००० । [र][13]मनसिजम् ॥

---

1 विधि 2 रेक्ष 3 स०ह० पा 4 देवं 5 का 6 का० तंतुपुवनं
7 रा० ण्यापनं 8 सु 9 नु 10 अनीता 11 ना 12 र 13 भयसिज

सा सा सा सा नी नी नी नी पा पा पा पा पा नी नी सा सा सा सा सा नी नी पा सा गां गां गां गां । सां गा सां गां गां गां गां गा सा सा गा गा पा धा मा मा मा पा पा नी नी सा सां सां सां सां । पा पा नी नी सा सा सा सा गा नी सा पा नी नी मा मा पा पा ॥

गतं॰ । ॰॰॰॰॰॰॰॰॰ से॰ [1]वितं [2]च॰॰॰ । जगत॰ स्त्व[3]॰ मेव । के॰ वल॰ मी॰ श्वर । गति [4]रसिना॰ न्यो॰ [5]यतिधा॰ म मतिमा(न्) । [6]यतीना॰ मना॰ [7]ध । मगतिं ममशरणं ॥ पा॰॰ सा सा गा मा नी नी सा सा पा धा मा म ॥**शरीरम्**॥

नि नि गा सा सा धा नी । नी नी सा पा गा नी सा सा । सा सा पा धा मा मा मा मा मा सा सा सा सा सा सा सा सा री गा मा मा पा धा नी मा पा पा पा पा पा पा पा पा धा ॥

ना॰ न्यो (?) पा॰ प मल॰॰॰ [3]ग्रह॰॰
दुःखं [9]मह (दे) तच्च । [10]पिब॰ [11]महेश्वर ।
पापमल॰ ॰ ॰ । कृतं॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ।
अपहर [12]भव॰॰ दु॰ ष्कृतमखिलं॰ ।
प्रसी॰ द॰ । शंकर ॥

पा पानी नी सा सा सा पा मा । पा धा नि ध पा मा मा मा मा ।
करुणा॰ गृ(हं) देवहि (तं)॰॰॰॰॰॰ । सि द्धि क रं॰॰॰॰॰॰ ।

---

1 सि 2 य 3 त्व 4 रति 5 यदिना 6 मतिना 7 द्या
8 गृ 9 महे 10 तिच 11 ममे 12 भग

नी सा सा सा गा नी सा सा सा ॥
प र मं० ० ० दे व व (रं)००० ॥

शीर्षकं । दिवाकर–पाणिका शुद्धमध्यमे ॥५८१॥

सां सां नी नी पा री मां ग री सां सां री म ग ।
दे वं० ० ०० ०० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

सा न ध री म । री री ×[करणां] सां सां ।
करुणा वरुणा । ल ० ०० यं मम[1] ।

सां सां नी पा री री म ग री सा रि ध री म ग री सां सां ।
आ ० ० ०० ० ००० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

सां गा पा नी ध नि ध नि सा सा० ।
श र णं ० ० व्र० जा ० ० मि ।

सा सारी गापा निधप । मां मां ।
कृ प णो ० दी ० ०० । नो ० ।

सां गां पा नी नि म नि म सा सा ।
आ ०० ० ० ०० ० ० ० ०० ० ।

सा सा री गा पा नी ध नी प मां मां ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

× ताराङ्कित 'करणां' शब्द का प्रयोग यथास्थित स्वर–मध्य–गत न होकर द्वितीय पङ्क्ति में 'वरुणाइ । ला० ०० नं' के पूर्व उपयुक्त प्रतीत होता है। इस तरह 'करणां वरुणाइ । ला० ०० नं' का शोधित रूप होगा 'करुणा वरुणा । ल ० ०० यं,' जैसा हमने दिया है।

[1] दन

री गा धा सा री म ग री सां सां ।
शं० [1]भुं ० शं[2] ० ०० करं ० ।

सा सा धा नी पा पा पा पा ।
का० रु ०० [3]ण्या धि कं ।

री गा धा । सा री म ग री सा सा ।
आ ० ० । ० ० ० ० ० ० ० ।

सा सा धा नी पा पा पा पा । नी पा धा नी सां सां सां सां ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । [4]अ ग तिं ० सु सिद्धं ०० ।

सा सा री गा पा नि ध पा मां मां ।
भ व म म श र० ० णं ० ।

नी पा धा नी सां सां सां सां ।
आ ००० ०० ० ० ० ० ।

सा सा री गा पा नि ध पा मा मा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

सा सा सा सा ध नी पा पा ।
पा ० पा ० त्मा ० नं ० ।

धा नी री री मा मा री री । सां सां सां सां मां मां मां मां ।
दु ष्कृ त ० क रु णं ० । दु ष्ट स त्वं[5] ० अ० भ ० ।

पा गा गा गा सां मा । मा मा ।
[6]यं ० अ व पा ० । [7]प ०० ।

---

1 सु 2 सं 3 ण्य 4 अंगति 5 त्वा 6 मे० भ 7 पं

पा नीं नीं नी मा पा पा पा ।
मे[1] हा ० - - - र ।

पा सा पा नी ध् प म मा मा मा ।
सं ० ० ० ००००० ० ।

सा सा सा सा धा नी पा पा । धा नी री री री मा गा री ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । आ ० ० ० ० ० ० ० ।

सां सां सां सा मा मा मा मा । पा गा गा गा सां मा मा मा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । आ ० ० ० ० ० ० ० ।

सां सां गा गा पा पा नी नी । धानी धानी धा सा सा सा ।
दु ष्कृ त म ति श्चं[2] ० ० । शो० का० कु ० लि तैः[3] ।

मा सा सा सा गा सा री गा ।
त्वा० मे ० व दे० व ० ।

पा धा नि ध्र पा मा मा मा मा ।
श र ण ० मा[4] ग तो ० ० ।

सां सां गा गा पा पा नी नी । धा नी धा नी ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । आ ० ० ० ।

धा सा सा सासा । मा सा सा सा सा सा री गा ॥
० ० ० ००० । आ ० ० ० ० ० ० ० ॥

प्रतिमुखम् ॥

---

[1] नमा [2] मतिच [3] तं [4] मु

री री गां धा सा सा सा सा । री गा म ग री सा ।
[1]स्मि॰ त्व ॰ न्ना ॰ न्यो ॰ । लो ॰ का ॰ ॰ ।

सा सा नी । री मा री गा सा सा सा सा ।
[2]नां ॰॰॰ । श र णं क श्चि ॰ ॰ ॰ ।

री री नी नी धा धा धा धा । मा मा मा मा नी धा पा धा ।
न्न वि द्य ॰ ते ॰ ॰ ॰ । तं म्मा ॰ द्रु मंश्च (?) ।

सा सा धा नी पा पा पा । सा सा सा सा री सा ।
दो॰ [3]षो ॰ हं ॰ ॰ ॰ । भ व मे॰ भ व तु ।

री री । पा धा नी ध पा मा मा मा मा ।
॰ ॰ । भ व श ॰ र णं ॰ ॰ ॰ ।

सा सा सा सा नी धा पा । रीं गां मं गं रीं सां सां सां ।
सु म हा ॰ पा॰ तक॰ । का ॰ ॰॰ रि ॰ [4]णां॰ ॰ ॰ ।

री री री गा धा सा सा सा । रीं रीं मांरीं रीं रीं रीं रीं ।
स ॰ ॰ चं दो ॰॰ ष(?) । दु ष्टा ॰[5]त्म ॰ नां ॰ ।

मा मा मा मा मा मा मा मा । पा पा गा गा गा गा गा गा ।
श र णं ॰ त्वं ॰ सु र॰ । पा ॰ पा ॰ नां ॰ ॰ ॰ ।

सा सा गा गा पा पा पा नी नी ।
पा ॰ पा ॰ ना ॰ द्यं ॰ (?) ।

सा सा पा ध मा मा मा मा ।
ना ॰ ॰ स्प ते(?) ॰ ॰ ॰ ।

---

[1] न॰ त्वं॰ ना॰ तौ॰ [2] ता [3] सो [4] णं [5] त्मा॰ नं

सं ग धां धा नी गा सा सा । सा गा मा ध नी पा पा पा ।
व ग र्वे ० ते (?) ००० । न ति का ० ० रु णि कं ।

रीं रीं रीं मा धां सां सा सा । री ग म ग री सा सा सा सा ।
अ भो पा स ० ० ० य (?) । वि म ति ० ० नं (?) ०० ०० ।

*[सा सा गा गा पा पा धा नी नी ।
पा ० पा ० ना ० धं ० ।

सा सा पा ध मा मा मा मा ।
ना ० ० स्य ते ० ० ० ।

सं ग धां धा री ग सा सा । सा गा मा ध नी पा पा पा ।
च ग र्वे ० त ० ० ० । न ति का ० ० रु णि कं ।

रीं रीं रीं मा धां सा सा सा ।
अ भो पा स ० ० ० य ।

री गा म ग री सा सा सा सा ।
वि भ ति ० ० नं ०० ०० ।]

सा सा गा गा पा पा नी नी । धा नी धा नी ।
पु न र पि श र णं ०० । स मु प ग ।

धा धा सा सा सा । सा सा सा सा गा पा पा पा ।
तो हं ० ० ० । ग ति र ० सि० दे ०० व ।

पा धा नी ध पा मा मा मा मा ।
[1]प ० रा ० ० त्मा नं ० ० ।

* कोष्ठान्तर्गत अंश पुनरुक्त है ।

1 पू

गा री ग धांधां मारी रि सासा । ऽऽऽऽऽ ।
गृ हं ० सुर मणि ० मुकु । ००००० ।

धा नी पां पां पां पां पां सां सां सां सां ।
टा ० चिंत पा ० द स ० ० ० ।

री री प धा मा मा मा मा ।
रो ० ० रु हं ० ० ० ।

सां सां सां सां सां सां सां सां सां सां । नी धा पा पा ।
कृ त ० ० ० ० ० ० ० ० । वि [2]वि ध (०) ।

री री गा धां सा सा सा । री गा म ग रि सा सा सा सा ।
दुष्कृत [3]वि त ति [त] ० । [4]व्य थितं ० ० ० खे ० (?) ।

धानी धानी धा सासा । पा धा पा धा पा ध स सा स ।
स त त० क (?)र हृ सि । त ० त्पू ० ० र्वं ० ० ० ।

सा सा री री धा सा धा सा ।
भ व सा ग र प ति ० ।

मा मा ग रि ग म सा री ध सा ।
[5]तं मां ० ० ० ० ० ० ।

प म ध पापा मा मां मा मा मा ।
श र ० ०णं ० ० ० ० ० ।

शीर्षकरणा पाणिका समाप्ता षड्जग्राम-समाश्रिता गीयते ॥५८२॥

---

[1] नु [2] तिताः [3] विइति [4] क [5] आं

मा मप पा पा पा पा धनी धा धा ।
[ह] ◦◦ ◦ ◦ ◦◦◦ [1]स ◦ ◦ ।

धा म स सा ग स ध नी ध स सा सा सा ।
[2]ह ◦◦◦ ◦◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ [3]स्रां ◦ ।

पा धा सा री गा । री ग सा नी ध पा धा पा ध स सा सा ।
[4]शुं ◦ कि र णो । ◦◦ द्य त ◦ [5]प्रं ह रं ◦◦ ◦◦ ◦ ।

रीं रीं रीं प मा गा री प ध पा ध सा ।
आ ◦◦ ◦ ◦◦ ◦◦ ◦◦ ◦◦ ◦ ।

सा सा सा सा सा सा सा सा सा सा सा ।
आ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ।

सा री गा री ग सा नी नी ध धा ।
आ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ।

स ग ध स सा सा सा सा सा ।
आ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ।

मा म म प धा पां धां पां ध स ।
[6]सं ◦ य ◦ मा ◦ भिरतं ◦ ◦ ।

सा सा सा सा सा सा सा सा ।
तं ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ◦ ।

सा री गा री ग सा नी ध पा धा ।
स ◦ त्वा ◦◦ धि ◦◦ क [7]सुं ◦ ।

---

1 सु 2 भ्य 3 स्ता 4 स 5 प्रहर 6 ष० ह्व० मां० भिरत 7 शु

पा धा पा ध स सा सा । सा सा ।
० ० ० ० ० खं[1] ० । ० ० ।

री री मां गारी प ध पा प स । सा सा सा सा सा सा सा सा ।
आ० ० ०० ० ० ० ००० । आ ० ० ० ० ० ० ० ।

सा री गा री ग सा नी नि ध धा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

स नि ध स सा सा सा सा सा । मा मा मा मा मा री री सा ।
आ ० ० ० ० ० ० ०० ०० । वं[2] ० दे ० म ००० ०० ।

स री स री री री री री री री ।
० ० ० ० नो[3] ० ० ० ० ० ।

मा म प पा धा पा धा पा प ध स सा सा सा सा सा सा ।
वि ० ० स्ता ० र का ० र णं ० ०० ० ० ० ० ।

रीं रीं री ग मा मा री प ध पा ध सां ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

सा सा सा सा सा सा सा सा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ।

सारी गारी ग सा नी नि ध धा । स नी ध स सा सा सा सा ।
आ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०० । आ० ०० ० ० ०० ०० ० ।

मा म प पा धा पा धा प ध स ।
(ऋ)क्[4] ० ० सा ० म गी[5] ० ० ० ।

सा सा सा सा सा । सा सा सा ।
तं[6] ०० ०० ० ० । ० ० ० ।

---

1 णं 2 वं० दो० मा 3 ना 4 क्र ०० षा 5 गा 6 तु

सारी गा री ग सा नी ध पा धा ।
य ० ज्ञ ०‿० सं ०‿० स्तु ० ।

पा ध पा ध स सा सा सा सा ।
० ० ० ० ० ० तं ० ० ।

रीं रीं रीं प मा गा री प ध पा ध स ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

सा सा सा सा सा सा सा । सा । सारी गारी ग सा नीं ध धा ।
आ ०० ० ० ० ० ० । ० । आ० ० ० ० ० ० ० ० ।

ऽऽऽऽऽ । स नी ध स सा सा सा सा सा सा ।
ऽऽऽऽऽ । आ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

मा मा मा मा मा गारी री स । सारी सरी ।
त ० रु ण ० र०००००० । ०० ०० ।

री री री री री री । मापा धनी धा पा धा । पा धा ।
वि ० ० ० ० ० । र ० ० ० ० क्त[1] ० । ० ० ।

पाप ध स सा सा सा सा सा सा । सारी ग गा गा पाधा पाधा ।
रु० ० ० ० चं[2] ० ० ० ० । अ० ० म ० र ग ० ० ।
० ० ० ० ० ।।
(ण० ० ० ०) ।। **प्रतिमुखम्** ।।

सा ध नि ध स नी धा धा धा । ऽऽऽऽऽऽऽ । मा मा मा मा ।
श ० र ० णं ० ऽ व्रजा ० । ००००००० । मि[3] ०० ० ० ।

री री री री मारी मा मा । मा ध सा ।
० ० ज्ञा[4] [आ] ० न सं० भ० । ० ० वं ।

---

1 पु 2 धं 3 नि 4 वा

सा सा सा सा सा सा सा सा । नी धा धा ध स ।
० ० ० ० ०ऽ० ० ०० । ० ०० ० ० ० ।

सा ग सा सा पा - मा मा ॥
[1]द्विज ० [2]विप्रजन ० नं ॥

शीर्षकम् । स्कन्द–पाणिका समाप्ता ॥५८३॥

मा पा पा पा पा सां सां सां । री री मा मा पा पा पा पा ।
क म ल भ व व द नं । निग दि त व र[3] मु नि ।

सां सां री री मा प म गा री ।
वं ० दि त च रि[4] ० तं ० ।

री री मा । नी नी धा नी पा पा । मा मा गा सा ।
क रु णा । [च] नि ल ०० यं ० । आ ० ० ० ।

सा नी सा नी धा पा नि ध मा मा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ।

धा धा नी धा पा पा पा पा । रीं रीं रि ग सां सा गा सां सां ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । क ० ल्पां ० ऽ तद हनं ।

धानी प् ध ग् स सा धा मा मा ।
भी० [5]मं० ०० (न) र्त ने[6] ० षु[7] ।

मा धा म सा गा री । री मा - धा पा - म पा पा ।
व ह्नि ० स्फु० लिंग । [8]खं डि ता ० का ० ० शं ।

मा मा सा सा मा मा गा सा । सानी सनी धा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । आ० ००० ।

---

1 द्दि 2 विपु 3 रु 4 वरि 5 मो 6 दने 7 उ 8 खठि

पा नी धा मा मा । री री मा मा पा पा धा मा ।
० ० ० ० ० । आ० ० ० ० ० ० ० ।
धा धा मा धा पा पा पा पा । मा मा पा नी धा मा मा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । [तु]० ० क ० ल्पां त[1] ।
पा ध री री री री री । मा मा मा । मा गा री री री ग ।
[ण]० ०० ० ०० ० ० । ध्ये ० ० । ० ० ० ० ० ० ।
री री री री री री री ।
० ० ० यं ००००० ।
नी ध नी ध नी ध नी ध री ग । - - - - - - - - - - ।
जि ० ० ० ० त० ०० म००० द०ऽ० । नं० ० ० ० ० ० ० ० ।
- - - - री ग ।
दि ० ० ० ० ० ।
सां सां । पा धा पा धा पा ध स । मा पा ध नी धा पा पा ।
व्य [ध।] - हे ० ० ००००मे[2] । कुं ०० ० ड ० ० ० ।
धस पा ध स सा सां री गारीग सांनि ध नी धा ।
०० ० ल ००० चा ०० ००रुं [न] ० ० ० ।
पा धा स नी ध सा सां सां सां सां ।
प ० ०० ० ० ०० ह्म ०० ० ० ।
मापा ध नी पा पा धा पा धा ।
लो० ०० ० ० च ० ० ० ।
पा ध सं मा मा म ध धारी री ग ।
० ०० ० ०० ०० ० ० (नं) ० ० ।

---

1 ल्पता 2 मं

- - - नी धा पा धा । - - - - पा ध स सां ।
षण्मु ० ख[1]० ०० ०० । वि०००० ० ० ० ।

मा पा ध नी धा पा धा पा धा । पा ध स ।
आ ० ० ० ० धि[2] ० ० ० । ० ० ० ।

स रीं री गां ऽ०ऽ सं सं नी ध नी धा ध ।
वे ०० ० ०० [3]दंज [यं] ०० ०० ००० न्म ० ।

धा स नी ध सं सां सां सां सां ।
का ० ०० र ० णं[4] ० ० ० ।

स नी मामामा धमाम धमाम धमाम ।
[5]गुह्य ० ०० ०० ० ० [6]तमं म हे ।

री ग री ग री ग री ग री ग री ग री ग री ग री ग री ग
[7]श्वरं ०० ० ० ० ० ० ० ० ० ०० ० ०० ०० ० ० ० ० ०

सा सा । सा मा प पा धा पा धा पा धा ।
० ० । आ ० ० द्य म नं ० ० ० ।

पा धा पा ध सं । नी ध नि ध पा धा पा धा पा धस ।
०० ०० (तं) ०० ०० । हु ० त स ह स्र द श व र्ष[8] ।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । धा नी पा मा नि ध नि ध पा पा ।
- - - - - - - । [9]मु नि नु तं ० ० ० ० (० ०) ।

पा ध नी सां सां पा । री पा पा । गा री मानी धा पा पा ।
[10]च्चि० ० न्ता ० । मणिनव । वं[11]० धिं० त ज्ञा नं ।

---

1 खं 2 हि 3 अ 4 ण 5 मुह 6 तमहंम 7 सव 8 दहसदशवर्ष
9 रुविनतं 10 वि ०० न्ता० । माणिनन 11 म० च्चि० ज्ञानानां

मां मां सां सां मा मा गा सां ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ।

सा म स नी धा पा नी ध मा मा ।
आ०० ० ० ०० ०००० ०० ००० ० ।

री री मा मा पापा धा मा । धा धा नी धा । पा पा पा पा ।
आ०० ० ०० ०० ० ० । आ०० ० ० । ० ० ० ० ।

सां सां ध सां मा म ग री री । री री पा पा री री मा मा ।
[1]अविदित०० (त) त्त्वं ० ० । सुरसं घै ० रवे ।

मा मा गा ध नी धा धा प प ध मा ।
[2]द्यं ० स ० र्वे ग ० ० ० ० ० ।

म प मा मा मा री री मा पापा पा । ऽ ऽ ऽ ऽ ।
तं प्र ण तो ऽ हं ० ० (०० ०) । ऽ ऽ ऽ ऽ ।

मा मा सा सा सा सा गां सां ।
आ ० ० ० ० ० ० ० ।

सानी स नी धा पा नि ध मा मा ।
आ ०० नी धा ०० ०० ०० ० ।

री री मा मा पा पा धा मा । धा धा नी धा पा पा पा पा ।
आ ० ० ० ० ० ० ० । आ ० ० ० ० ० ० ० ।

मा म गा री री । मा मा पा धा नी ॥ मा धा ।
[3]गृह प्र ० वासं । ० ० प[4]झं ० ० ॥ ० ० ।

---

1 अविद्धित ०० त्वं 2 दे० स० र्वे य 3 गृहं प्र० वास 4 ज्ञा

री ग प ध मा मा । धा धा नी धा नी धा प धा ।
शै० ला ० वा ०० ०सं । भुवना ० वा[1] ० सं ० ० ।

री मा पा ग ध नि ध पा पा पा । धा नी धा स नि ।
ज्ञा ० ना ० ० वा ०० सं ० । वि ० द्या[2] ० ० ।

पा पा पा पा । पा पा पा री रीं रीं रीं रीं । ऽ ऽ ऽ ऽ ।
वा ० सं ऐं[3] । कां ० ता ० वा ० सं ० । ऽ ऽ ऽ ऽ ।

मां मा सा ध नि सां सां पा पा ।
सु कृ ता ० ०० वा ० सं ० ।

धप् मा मा म ग गा री मा ।
०० दुर्ग्गा[4] ०० वा ०० सं ० ।

मा गा सा ध् स सा धा नी धा ।
स० र्वा ० ० ० ० वा ० सं ० ।

मा मा मा मा सा सा ध गा सा सा ।
बु ० द्धि ० क्षं[5] मा ० ० [6]नि धिं ।

ग म री ग सा धा नी धा पा पा ।
शी[7] ० ० ० र्षा ० वा ० सं ० ।

सां सां धा सा सा मा मा ।
ज न्म ज रां[8] ० मृ ति ।

मा मा पा पा नि ध सा सा सा । री री ग री सां ।
पी डा द्य प ० ह रं (० ०) । दु ० ष्कृं[9] त ० ।

---

[1] या० स [2] ता [3] वा [4] दुर्म्मा [5] समा
[6] विधि [7] शि [8] ग [9] षच

नी ध पा पा ध मा । मा नि ध सं ऱ्री गरी मग ध्नि पापा ।
हरं ०० ० ऽ ०० । सौ[1] ०० ख्य ० क ० रं ०० ०० ०० ।

म ध मा मा रि ग सा सा प ध मा ।
सौ[2] ० ० म्य मु ० खं ० ० ०० ।

धा नी ध स् ध नि् पा पा ।
भी० म ० मु० खं ० ० ०० ।

सां सां धां सां मा म ग । री री ।
गंण[3] पति (प) रि वा ०० । रं[4] ० ।

री मा मा री मा मा मा । मा मां[5] म ध पापा पापा पापा ।
सुर परि वा ० रं ० । मां ० तृ ० (ग) ण नुतं० ।

मा सा ध धा सा मा सा सा सा ॥
पितृ व ० ० न नि र तं ० ॥

सा धा मा सा सा धा नी नी नी । ० ध पा नी नी ।
शं ० भुं न तो ० स्मि । ० ० ही ० ० ॥

गा री । री री गा गा री म । ग री री । धा मा मा री गा मा मा । री री गा मा नी नी नी नी नी नी मा धा मा गा गा गा गा धा मा धा मा मारिग गा । गा । गा मा धा नि मा रि ग ग ग । री री मा ग नी रि नी नी । नी नी । री मा धा मा री ग नी गा री री सा मा री री ग गा गा ॥

---

[1] सोख्या [2] सो [3] रणिपरिरिवा ०० । [4] र [5] मा० तृ० णनुत

भुजं[1] ० ग व ० ० ० ल (य)। धा ० ० रि णं ० ० ० आ ०००००० पिनाकिनं ०००० त्रिलो० चनं ०० आ०००००० आ ०००००००० । दिव्य कुं ००० डं[2]ल ।

धा मा मा मा री गा मा गा मा मा री री मा ग म ग री नी नी नी । नी नी मा धा मा री ग् गा गा । मा० मा० मा० मा० मा० मा० मा० मा० मा० मा० मा मा मा मा मा मा मा मा । री गा० मा० पा० गा गा गा गा । री री गा मा स ग री री री ॥

भू ०० षितं[3] ००० । आ ०० ०० ०० ०० आ ०००००००० । परमा० र्थ विदितं। दे० वें० द्र नमितं । सं० सार दुः० ख० । [4]नाशकरं ००० व्य० क्ता० व्य [व्य] ०० क्तं ० । री गा मा पा री० री० । री गा मा पा मा गा पा री नी धा पा गा री गा गा गा री री री री री री री री । री री गा मा मा पा री । मा० मा० मा० मा० सा० सा० । नी गा नी गा नी नी नी नी नी सा री सा नी सा री गा मा गा री मा पा धा ॥

[5]वे० द ज्ञा० नं० । क्षिति [6]जल पवन हु। ता० [7]श न दे० हं० त्रिभुवन वं० दित । [8]मर वरं ००० । दे० वा० धि दे० वं। शं। ० [9]भुं प शुपतिं । हर सहितं ००० । [10]दंक्षिणस्यां ग्रा० (?) ॥

धा ध ध धा धा धा धा धा धा धा धा धा धा मा नी सा

1 भुजं० दु वा ००० लं 2 ण्ट 3 ता 4 नास
5 वद 6 ज्वल 7 स 8 अ 9 प्रुष 10 दा

धा नी नी नी नी सा धा मा धा मा मा मा मा । मा मा गा गा री गा री री धा मा नी धा मा नी धा मा नी धा पा पा पा पा । ० मा० धा धा मा० धा धा मा धा धा । धा री री री री री री री री री री मा मा री री ग री गा ॥

०० [1]दीपि० ता । [2]भा भ वा० नी ०० [3]त्रिगुणं । नित्य मं[4]० नित्यं० शं[5] ० वं ० सकलं० । [6]कलारहितं ० ० ० पशुपतिं गणपति । [7]गिरिजागु । हं० । गं० ध० वं ।

ग री गा मा धा री ग गा गा गा धा नी गा री मा गा री गा मा धा नी मा गा गा री री री री री री री री री मा री मा मा मा मा मा मा । पा धा पा धा नी नी धा नी धा मा मा धा मा मा गा गा । गा गा गा गा गा गा मा मा धा धा नी नी सा सा । धा धा पा ॥

(नु) तं ०० न० मा० मि [8]कमनीयकलं ।
वी० त [म] भ यं ।
धूपभवचंद्रगं (?) [9]जूट कला० पं० ।
आ० द्य पुरुषं [10]परंमा० यु (धं)० ।

असुर० [11]सुरं० वं० दित चरणं० । [12]सौम्यं । पा धा धा नी नी [ग्रह] धा नी मा री गा गा । नी री मा ग मा रिग नी नी नी नी । नी री मा मा धा - - गा गा नी - ॥

[13]**गान्धारी–पाणिका समाप्ता ॥ (इति पाणिका–प्रकरणं समाप्तम्) ॥५८४॥**

1 दिहपा० ता 2 मा 3 यंगुण 4 स 5 सा० वं० 6 कल 7 गिरिनयं । हं० । स० धं० व
8 कोमनेएकमा 9 जूठ 10 परमं 11 रा 12 सा 13 गांधार

अथ कम्बल-प्रकरणम्

अथ प्रसङ्गाज्जातीनां तद्भवेष्वथ च क्रमात् ।
ग्रहादि-लक्षणं किञ्चित्कम्बलेष्वभिधीयते ॥५८५॥

जातराग[1] ललितं । गुह[2] जननी । ०० ।
दे० वं ०० । स० ततं । प्रणमामि[3] सदाशिवं० ॥५८६॥

इति (गीतानि) पञ्चम्याः फणीन्द्रः किल कम्बलः[4] ।
स त्वगायत्[5] पुरैतानि चन्द्र-भूषणतः[6] पुरः ॥५८७॥

गीतैरेतैः स तु प्रीतस्त्र्यम्बकः[7] कम्बलायताम्[8] ।
मायन्मदालसां[9] दृष्ट्वा[10] पूर्वदेहानतिक्रमात् ॥५८८॥

ततः प्रभृति[11] लोकेऽस्मिन् कम्बलानीत्यमूनि च ।
तन्नाम्नैव प्रसिद्धानि[12] गीयन्ते गीतवेदिभिः ॥५८९॥

यत्र ग्रहोंऽशश्च तथाऽपन्यासः पञ्चमः स्वरः ।
ऋषभो[13] यत्र बहुलः षड्जो[14] न्यासश्च संश्रितः[15] ॥५९०॥

षड्ज-[16][स]धैवत-गान्धारा स्वल्पा[17] यत्र (च) संश्रिताः ।
प्रथमं तत्र जानीयात्कम्बलं पञ्चमी-भवम् ॥५९१॥

उदाहरणं यथा—पा पा पा पा प् ध नि ध री री री मा गा रि स रि स नि ध नि स स री री रि म् ग म पा पा पा पा । प् ध प् म् ग रि स रि ध म रि स रि ध ध प रि पा पा ।

---

1 जात्रारात्र 2 ग्रह 3 प्रणमधसशिएवं 4 कस्वलाः 5 सप्तगायन्त 6 भूमाण 7 प्रीत अम्बकः 8 कस्यलायताम् 9 आ 10 दृष्टा 11 प्रभुति 12 नी 13 द्या 14 षड्जश्च 15 यः 16 मध्य 17 स्वालप

[अथ पञ्चम-स्वरस्य ग्रहा अपिचात्सता स्वराणांनिषाद]

हौ हौ हौ हौ हौ हौ हौ हौ ०० हौ हौ प्रणभजर्हि (?) ।

री ग म म पा प प ध नि ध री री ।

री मा गा रि स रि स नि स स रीरीरि म ग रि ग म पा पा पा ।

प ध प म् ग रि स रि ध ध परि पा पा ।

[अथ पञ्चम स्वरस्य ग्रहा अपि चालपता स्वराणां निषाद]

पा प ध ग स ग रि स रिध् ध् स रि पा पा ॥५९२॥

अथ पञ्चम—स्वरोंऽशो ग्रहोऽपि चाल्पता स्वराणाम् ।

निषाद-गान्धार-ऋषभाणां धैवत-षड्ज-स्वरयोर्बहुलत्वम् ।
यत्र च सदैव जानन्ति तद् द्वितीयं कम्बलमुदितं च ॥५९३॥

हूं हूं हूं हूं हूं । शंकरं रुद्रं सततं वंदे तापन ॥

पा ध नि धनि धनि गरि सरि सा सा सा सा ।
सरि सनि धनि धनिस सरी । स पा पा पा पा पा पनि ग रि ॥

[म] दे ० वं ० । हौ ०० हौ ० हौ हौ हौ ।
हौ० हौ० हौ० । सं सं सं सं । तमहं ० ॥

गम् पा पा पा पा । पा पा ध नि ध ग रि स ध पा पा पा पा ॥ ५९४ ॥

---

[1] स्वरस्य [2] चाल्पता [3] स्वरायोर्व [4] जाम [5] त्व [6] सक्रं [7] हौद

सापन्यासत्वे[1] स - रि - स - धानां तथाल्पता[2] यत्र ।
पञ्चम-जाति-प्रभवं भवतीति भेदे भवस्य यद्गीतम् ॥
कथयति मिथिलाधिपतिस्तृतीयं[3] [मिथिलाधि] कम्बलं[4] तदपि
॥ ५९५ ॥

उदाहरणम्—गारि म गारिरिरिरि गारि ॥
वंदे॰ देवं हं हं हं । हं॰ हं॰ हं॰ हं॰ । हं हं हं हः ।
सरिसा मामा पाधानि ध स् ध् पा पा पा धानिध् माम् गाम् ।
सा म गा[5] काः (?) ॥५९६॥

चतुःसमुद्रावधिभू—(मि-गीत-प्रदीप्ति-) मानद्भुत-कीर्ति-कम्बलः ।
नृणां महेशप्रतिमोऽनुमन्यते सतां[6] मनःस्पर्शि चतुर्थ-कम्बलम्
॥ ५९७ ॥

उदाहरणम्—प्ध् नि ध सा री रि ग म गा री सां सां सां
रिगरी सा ध नीमध पा प धम गरीरी ।
ध नी ध स ग म ध पा पा पा । वणं (?) ०००० ।
हौ हौ हौ ०० हौ हौ हौ हौ हौ हौ । शंकर-चरणं सततं वंदे
॥ ५९८ ॥

यत्र च पञ्चम-स्थाने बहुत्वमपि स्वरस्य षड्जस्य[7] यथा ।
मध्यम-निषाद[8]-धैवत[9]-गान्धारा यत्र चाल्परूपाः स्युः ।
मनुतेनान्य-नरेन्द्रो - - - - - - - - - - - - - - - - ॥५९९॥

---

1 सप 2 तथाल्पतये 3 म 4 कबल 5 गाः 6 सतादभदशि
7 बहु 8 दे 9 ते

गमरिसारीसनि सा सा सा रि सा धनि पा ध म ग री पा पा।
पध् सनि ध मा धा स नि स री री ॥६००॥

[1]षड्ज-मध्यम-[2]धैवत-निषादर्षभ-गान्धारैः।
- ॥६०१॥

ग स मगरि स ध। ध स ग रि सा सा।
स नि सनि ध म ध स नि धा पा पा पा पा।
प ध प म ग म प म प ध् म पा पा॥ (स) ०० ह्रस्व ००
शान्त।

रु० द्र० विधानं ०० त ००० ह भारमिति (?) संस्तुत मूर्तिः।
ऽ हन्तो (?)।
हा हा ००० हतोपुरुषात ० ० ० ० ० ० ० ० आवार (?) ०
पा धा स ध स म ग नि ध पा पा। हतामथंशताम् (?)
॥६०२॥

- - - - - - - - - - - - - - - यथा यत्र।
[3]अवगम्य स्वरापन्यासत्वं यथाऽत्र संश्रितम्[4]।
सततं धैवत एवांशः[5] शेषाश्चाल्पाः[6] स्वरा यत्र ॥६०३॥

उदाहरणम्—प म प म ग स री पा ध म ग मा मा।
मा ध नि म ध प ग गा प म् पा पा। पा पा।
प् प् ध नि प ध प् ध् नि प ध् प म रि ग ॥६०४॥

---

1 बहु 2 धैवताः 3 अवम्यम्य 4 तः 5 शत्वं 6 शेषाचाल्य

अष्टादश-जातीनां[1] यावन्तः[2] शुद्ध-विकृत[3]-भव-संख्याः ।
रागास्तावन्तोऽपि ज्ञेया जात्युद्भवा[4] विबुधैः ॥६०५॥

इह मन्द्र[5]-मध्यमकेऽथ - - - - - - - - ।
[हरिजाणसे (?) ०० ० देवैः ०० नमितं[6] ।
हौ हो हौ ० प्रा ० ० ० । सादं (?) ० तमहं ० प्रण (मामि)॥]
- - - - - - परे पुनरुन्नेया एव विद्वद्भिः ।
गान्धारग्रामेऽपि हि ततो न संख्यया ज्ञेयाः ॥६०६॥

अपि च कपालेन[7] पुनः प्रोच्यन्ते[8] बहुतरा रागाः ।
रागोत्पत्ति-कृता[9] अमी - - - - - - - - ॥६०७॥

गदितास्तेनात्र (स्व) रा भजन्ते यत्र चाल्पताम्[10] ।
तत्राह[11] बहुलत्वं (च) श्रीमान्नान्यो[12] नराधिपः ॥६०८॥

[जातिकाध्यायः] ।
संग्रामे (लब्ध-वीर्यैर्विहित-भुज-बल-स्वच्छ-कीर्ति-प्रतानै-)
स्तैरद्यो[13]-[प्यु]-द्दाम-वातोत्कर-भृत-कुहरोद्गीर्ण-सुस्निग्ध-वर्णैः ।
गीयन्ते यद्यशांसि प्रतिदिश (मभितो मुद्रिताम्भोज-नेत्रैः)
(संगीताम्भोधि-चन्द्रः) स[14] जयति [स] नृपतिः **कीर्तिराजा-
नुजन्मा** ॥ ६०९ ॥

---

(६०९) अन्तिम शब्द से विदित होता है, कि नान्यदेव के जेष्ठ भ्राता का नाम कीर्तिराज था ।

---

1 णां 2 न्यः 3 विक्कृति 4 जात्य 5 वद्र 6 निमितं 7 का 8 पाच्यते
9 कृता ऽ मी 10 चाल्यताम् 11 तमाह 12 श्रीमानान्यो 13 तैरद्या 14 म

ये ऽ [1]स्याधीशा नृपनय-[2]विदो ये च [न] रत्नत्रयेऽपि
(ये वा गीत-प्रथन-पटवस्तेऽपि यस्यैव शिष्याः ।)
[3]वाद्याचार्यो जयति [4]विदितासीम-सम्यग्-विजाति—
[5]र्जात्यध्यायं [6]व्यधित [7]स बुध-प्रीतये नान्यदेवः ॥ ६१० ॥

इति नान्यदेव-विरचिते **भरत-भाष्ये जातिकाध्यायः समाप्तः॥**

---

(६१०) अन्तिम पङ्क्ति में ग्रंथ का अपर अभिधान **भरतभाष्य** निर्दिष्ट है ।

1 स्वायशो 2 विदां 3 ते द्यावार्यो 4 विहिता 5 जात्यध्यायं 6 व्यरचि 7 वि

॥ सप्तमो रागाध्यायः ॥

[रागोत्पत्त्यध्यायः]

१. तत्रादिमं गीति-काल-प्रकरणम्

शुद्धा भिन्ना च या गीतिरायामे प्रथमे मता ।
मध्य-प्रहर-युग्मे च **गौडी** गीतिः प्रशस्यते ॥१॥×

गीतिर्या **वेसरा** नाम सर्व-ग्रहण-कारिणी[1] ।
दिनस्य प्रथमे भागे सा गेया गीति-वेदिभिः ॥२॥

या च **साधारणा** गीतिः सर्व-धर्मेण निर्मिता ।
निनीनि (?) गीति-काले सा काले साधारणा स्मृता ॥३॥

यस्य यस्य तु रागस्य या या भाषा प्रकीर्तिता ।
तस्य तस्यैव यः कालः स तासामपि कीर्तितः ॥४॥

अपां श्रेयो-विशेषाय कालस्य नियमः स्मृतः ।
गीयते सर्व-काले[2] तु सर्वा नित्यार्थ-सिद्धये ॥५॥

२. राग-भाषादि-भेद-प्रकरणं द्वितीयम्

तंत्र[3] श्रुति-स्वर-ग्राम-मूर्छा[4]स्तानाश्च जातयः ।
सालङ्काराः सगमकाः पूर्वं तु गदिता मया ॥६॥

× यह श्लोक **भ. भा.** प्रथम खंड राग–काल–प्रकरण में पृ. १५० पर मुद्रित है।

(१–३) भरतोक्त मागधी आदि चार तथा मतंगादि–मत से शुद्धा, गौडी, भिन्ना आदि पाँच गीतियों का विषय **भ. भा.** खंड-१, पृ. १५७ पर वर्णित है ।

---

1 हारिणी 2 कालस्तु 3 अत्र 4 मूर्च्छना

शुद्धाः संसर्गजाश्चैताः समाङ्गैश्च पृथग्विधैः ।
ग्राम-त्रय-विभागेन तान-संख्या विकल्पिता ॥७॥

उत्पद्यन्ते सदा दारु-गा-[य]त्र-वीणा-समाश्रयाः ।
पृथग्विभान्ति सुभगा रागा लोकानुरञ्जकाः ॥८॥

[1]शृङ्गारेण तु रागाणां [नां] यथा [2]नाट्यं प्रतिष्ठितम् ।
यत्र नास्त्येव गणना-शक्तिः कल्पायुषामपि ॥९॥

तथा [3]तालैः [4]पदैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव ।
" अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता " ॥१०॥

अंशानामपृथग्भावादपि रागेष्व-[पे]-नेकशः ।
भेदाः सन्ति [5]कियन्तस्ते सुदुर्लक्ष्याः स्वभावतः ॥११॥

शर्करा-गुड-खण्डानां यथेक्षु-रस-जन्मनाम् ।
स्वसंवेद्यं हि माधुर्यं पृथग्वक्तुं न शक्यते ॥१२॥

यो न तीर्णो मतंगाद्यैः रागाब्धी राग-पारगैः ।
सोऽल्प-बुद्ध्या प्लवेनेव[6] तरितुं शक्यते कथम् ? ॥१३॥

मुनीनां [7]च मतैर्युक्ता रागाः कतिपयाः [8]स्मृताः ।
ग्रहांशौ तार-मन्द्रौ च न्यासापन्यास एव च ॥१४॥

अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडुविते क्रमात् ।
आरोह्या[9]द्याश्च वर्णानां [10]ध्वनिर्निरवशेषतः ।
अलङ्काराश्च दृश्यन्ते यत्र जातिर्व्यवस्थिता ॥१५॥

---

(१०) श्लोक की द्वितीय पङ्क्ति कवि **माघ** के शिशुपालवध काव्य (२।७२) से उद्धृत है ।

---

1 भृ 2 नाद्यं 3 च मावलैकेति 4 पधै 5 किल्वेते 6 ह 7 मतमाणैर्युक्ता 8 धुना 9 हा 10 ध्वनिन्नि

दारव्यां (स्व-)र-वीणायां षड्जादीनां निवेशनम्[1] ।
रागस्योत्पत्तये यस्मात् स **आलापक** इष्यते ॥१६॥

स्वराणां न्यूनताधिक्यं षाडवौडुवितावपि ।
आलापकवदत्रापि[2] जायन्ते सदृशानि चेत् ॥१७॥

अंश-न्यासादि-योगेऽपि सति यत्र विवादिनौ ।
स्वरावेकत्र न स्यातां **रूपकं** तत्प्रकीर्तितम् ॥१८॥

श्रुत्यनुरञ्जिताः[3] सर्वे स्वरा जात्यंश-कीर्तिताः[4] ।
मूर्छना-तान-संयुक्ता दश-लक्षण-लक्षिताः ॥१९॥

अलङ्कारैश्च संपन्ना गमकैः परिकीर्तिताः ।
रञ्जनाद्रागतां यान्ति - - - - - - - - - - ॥२०॥

ग्रामरागाः[5] सप्त[6] मूल-राग-षट्कमनन्तरम्[7] ।
ततो भाषाश्च षण्मुख्या देशाख्यास्तूनविंशतिः ॥२१॥

(१७–१८) i. नान्यदेव के द्वारा दी हुई **रूपक** की यह व्याख्या अपनी विशेषता रखती है । यह रूपक रूपकालाप है ।

ii. रागालाप एवं रूपकालाप अथवा रूपक की संक्षिप्त व्याख्या **शाङ्र्गदेव** ने दी है (II, पृ० २१, श्लो० २३–२५) । रूपकालाप विदारियों (गीत-खण्डों) में विभक्त होता है, उसीका अन्य नाम प्रबन्ध है (II, पृ० २१, क०) ।

(२१) मतंग के मत से मूल–राग अर्थात् भाषा–जनक राग ६ थे, ऐसा कई ग्रंथकारों का कथन है । **शार्दूल** के मत के अनुसार भाषा–जनक राग ४ थे तथा **मतंग**–मत के अनुसार ६ थे, इस प्रकार **कुम्भ** का कथन है (**सं० रा०, पृ. २७०,** श्लोक ६५–६६), यद्यपि **याष्टिक** के मत का अनुसरण इस विषय में **मतंग** (**बृ० दे०**, पृ. १०५) तथा **शाङ्र्गदेव** ने (II, पृ. १०, श्लो. १९–२१) स्पष्टतः किया है । याष्टिक–मतानुसार भाषा–जनक राग १५ हैं ।

---

[1] षड्जादेश निवेशतिः [2] आलोपक [3] श्रुत्या [4] नात्यंश [5] ग्रामराग
[6] दृष्ठ [7] मन्तरम्

[1]तथोपराग-संभूता भवन्त्यत्र (त्र-) योदश ।
स्वराख्या-द्वितयं चेति चत्वारिंशत्प्रकीर्तिताः ॥२२॥

शुद्धो भिन्नश्च गौडश्च (च-) तुर्थो वेसरस्तथा ।
साधारण इति प्रोक्ता गीतिभेदाश्च पञ्चधा ॥२३॥

एतैरन्यैरपि [2]प्रायश्चोक्ष-वेसर-कैशिकैः ।
उपाधि-भेदैर्जायन्ते राग-नामान्यनेकशः ॥२४॥

केषांचिन्नाम रागाणां पूर्वैर्मुनिभिरीरितम् ।
अन्यच्च पुत्रवन्नाम-करणं तु यथेप्सितम् ॥२५॥

षड्जग्रामिक-वीणायां [3]समुन्मीलित-निःस्वनाः ।
[4]मध्यग्रामिक-वीणायां (तथा) सम्मीलिताश्च [5]ये ॥२६॥

सर्वभाषा-स्वरूपैस्तु [6]नियतैः [7]क्वचिन् मिश्रितैः ।
युक्ताः समुपजायन्ते **ग्रामरागास्तु** ते मताः ॥२७॥

ये च निःशेष-भाषाणां [8]मूल-रन्ध्राश्च हेतवः ।
लोकेषु [9]युक्ता बहुधा **मूलरागास्तु** ते स्मृताः ॥२८॥

व्यक्तायां वाचि भाषायां वा **विभाषा** तु पठ्यते ।
[यततः] अकार-प्रत्यये वापि भाषा समुपजायते ॥२९॥

भाष्यन्ते व्यक्तमेवात्र[10] मूल-राग-गता गुणाः ।
यस्यां, तेनेह संप्रोक्ता [11]ततो **भाषा** मनीषिभिः ॥३०॥

(२४–२५) इन श्लोकों में रागों के नामों का विषय स्पष्ट किया गया है ।

---

[1] तद्यो [2] प्रायशोश्चाक्षस्वरकैसिकैः [3] ससु [4] मध्यमग्रामिकावेणुमम्मीलिताश्च
[5] थेः [6] निषतैः [7] कुत्रवि [8] मूलरन्धा न [9] युधा [10] मेवासि [11] तता

देशे देशे जानपदा भाषन्ते प्रकृति-श्रितम् ।
सा स्याद् भाषेह **देशाख्या**, देशे नामकृताह्वया ॥२१॥

मुख्यत्वेनैव श्रूयन्ते या पुनर्गीत-कोविदैः[1] ।
रञ्जनातिशयत्वेन तास्तु **मुख्याः** प्रकीर्तिताः ॥२२॥

स्वराणामाश्रयादासामाख्यानं[2] क्रियते बुधैः ।
ताः **स्वराख्या** इति प्रोक्ता भाषा-(स्तत्त्व-) मनीषिभिः ।
उपरागात्तु जायन्ते यास्तु - - - - - - - ॥२३॥

भाषा-विभाषयोर्यासामन्तरेणैव भाषणम् ।
ता **एवान्तरभाषाः**[3] स्युरिति प्रोक्तं मनीषिभिः ॥२४॥

- - राग-भाषाणां किञ्चित्किञ्चित्स्वरा (?) यतः ।
अर्वाक्पुरुष-स्पृष्टानि[4] **क्रियाङ्गाणि**[5] प्रचक्षते ॥२५॥

शुद्धगीत्या षड्जग्रामः शुद्धसाधारितस्तथा ।
वेसरायां [6]बोट्टरागः सौवीरष्टक्ककैशिकः ॥२६॥

वेसरः षाडवाख्यश्च [7]टक्करागस्ततः परम् ।
द्वा-[दश] दशैव तु भाषाश्च स्मृता नानाविधा बुधैः ॥२७॥

(२६–२४) ग्रामराग, मूलराग, भाषा, विभाषा आदि राग–वर्गों की व्याख्या इन श्लोकों में दी गई है।

(२७) **नान्यदेव** ने टक्क की भाषा १२ कही हैं। जिन में मुख्या भाषा १, देशाख्या ३, स्वराख्या २ तथा उपरागजा ६ बतायी है। नान्यदेव के इसी कथन का अनुकरण **कुम्भ** ने किया है, ऐसा प्रतीत होता है (**सं० रा०, I**, पृ, २७२, श्लो. १०८–११०)।

---

1 पुनर्गत 2 स्वराणामाक्षयायासमाख्यानं 3 साषा
4 स्पष्टानि 5 शानि 6 मोद 7 द्यु

तत्र मुख्येति विख्याता चैका मालववेसरी ।
देशाख्या मालवा चाद्र (?) सौराष्ट्री सैन्धवीत्यपि ॥३८॥

स्वराख्या-द्वितयं मध्यदेहा पञ्चमलक्षिता ।
तथा [1]षड्डुपरागजास्त्रवणा [2]त्रवणोद्भवा ।
भाषा कोलाहला वेगरञ्जिता ललिताभिधा ॥३९॥

भिन्न-गीति-समुद्भूतो भिन्नकैशिकमध्यमः ।
भिन्नषड्जश्च, **भाषाश्च** समस्तास्तैरुदीरिताः[3] ॥४०॥

शुद्धा मुख्या तु देशाख्या दाक्षिणात्या (च) सैन्धवी ।
[4]बाङ्गाली-त्रितयं देशी[5] तथैता उपरागजाः[6] ॥४१॥

श्रीकण्ठिकाख्या ललिता त्रवणाख्या ततः परा ।
गौड-गीत्यान्ध्रगौडस्तु गौडकैशिकमध्यमः ॥४२॥

गौड-गीत्यां तथैवोक्तो गौडपञ्चम एव च ।
[7]रेवगुप्तकाख्यश्चैव तथा भम्माणपञ्चमः ॥४३॥

---

(३८) देशजा भाषा ३ कही है। **मतंग** ने टक्क की भाषा १२ तथा अन्य मत से १६ कही हैं (बृ० दे०, पृ. १०५। **नान्यदेव** ने प्रथम मत का अनुसरण किया है।

(३९) टक्क की उपरागजा भाषा छः कही गई हैं, परन्तु पाँच ही नाम दिये गये हैं। द्वितीय चरण में 'भाषा' के स्थान पर 'ताना' शब्द लेने से छः नाम हो जाते हैं। **कुम्भ** ने टक्क की मुख्या, स्वराख्या तथा उपरागजा भाषाएँ कही हैं (I, पृ० २७३, २७४)। उपरागजा भाषाओं के ये ही पाँच नाम कुम्भ ने दिये हैं, तथा छठाँ नाम 'ताना' दिया है।

---

1 षट्परागोच्चा श्रवणा 2 श्र 3 स्तैरभ्युदीरिताः 4 पाञ्चाली 5 देश
6 दुपरागजाः 7 एवगुप्त

[1]रूपसाधारितश्चेति [2]साधारा-गीतिमाश्रिता: ।
[3]पञ्चमः [4]षाडवः [5]शुद्धकैशिकः [6]शुद्धभैरवः ॥४४॥

[7]श्रीरागः सोमरागश्च वल्लाता रक्तहंसकः ।
कामोदो [8]मेघरागश्च देशो[9] मल्लार एव च ॥४५॥

[10]भंम्माणी [भै] भैरवी ढोली [11]सावेरी (च) वराटिका ।
[12]वेलावली मधुकरी पौराली पल्लवी तथा ।
घण्टारवेति विद्वद्भिर्विभाषा दश कीर्तिताः ॥४६॥

प्रोताख्या भास-(व-)लिता [13]नाद्या मधुकरी तथा ।
शालवाहिनिकेत्यन्तरभाषाः पञ्च कीर्तिताः ॥४७॥

आद्या [14]गौडकृती रामकृतिर्धन्यकृति[15] स्तथा ।
शिवकृतिर्नागकृतिः[16] (कृतिः) कुमुद-पूर्विका ।
क्रियाङ्गाण्येवमादीनि कीर्तितानि मनीषिभिः ॥४८॥

षड्जग्राम-गता (ह्येता) रागभाषा विभाषिकाः[17] ।
अन्तरभाषा-सहिताः सक्रियाङ्गा उदीरिताः ॥४९॥

---

(४४) i. 'साधारणा' के स्थान पर 'साधारा' शब्द का प्रयोग ग्रंथकार ने छंद को जमाने के हेतु किया है।

ii. रेवगुप्त तथा पञ्चमषाडव को **शाङ्गर्देव** ने प्राचीन आठ उपरागों में वर्गीकृत किया है (II, श्लो० १५)।

(४५-४६) उपरोक्त श्रीराग, सोमराग, रक्तहंसक (शुद्ध-) भैरव, कामोद, मेघराग तथा देश इन सात रागों को शाङ्गर्देव ने प्राचीन २० रागों में अन्तर्भूत किया है (II, श्लो० १६-१८) । **कल्लिनाथ** ने घण्टारव तथा पल्लवी को 'प्राक्-प्रसिद्ध-देशी-रागों' में दिया है (II, पृ. १४५)।

---

1 रूपसाधारितं चेति 2 साधाराद् 3 मध्यम 4 षडवो 5 मध्य 6 मन्न
7 श्रीराम 8 मेघनद 9 चादर्श 10 भस्माणी 11 सावरी 12 चेला
13 नोधा 14 गौडी 15 हनुकृति 16 नामकृतिः 17 ताः

यस्य यस्येति [तु] रागस्य या[1] या भाषा विभाषिका ।
तस्य तस्यैव या गीतिः सा तासामपि कीर्तिता ॥५०॥

यत्र यत्र प्रभेदस्तु गीतीनां नोपदर्शितः ।
यथा लक्ष्ये[2] (स-) मालोक्यं[3] तत्र तत्र विधीयते ॥५१॥

शुद्धया मध्यमग्रामः [4]कैशिकः शुद्धषाडवः ।
पञ्चम-सृष्टं[5]-भाषाणां[6] मुख्या[7] ह्याभीरिका स्मृता ॥५२॥

[8]देशाख्या दाक्षिणात्या च सौराष्ट्री गुर्जरी तथा ।
बाङ्गाली सैन्धवी चोभे पञ्चैतां[9] उपरागजाः ॥५३॥

[10]त्रवणा कैशिकीति (च) भिन्नायां भिन्नपञ्चमः ।
भिन्नतानस्तथा भिन्नकैशिक इति (च) त्रयः ॥५४॥

[11]गौडीगीत्यां तथा गौडकैशिको [12]गौडपञ्चमः ।
- - - - - - - - - - - - - - (गौडकैशिकमध्यमः) ॥५५॥

वेसरायां तथा गीत्यां[13] रागो[14] मालवपञ्चमः ।
रागः षाडवकाभिख्यस्तथा हिन्दोल एव च ।
[15]भाषा-चतुष्टयं तस्य मुनिभिस्तत्र कीर्तितम् ॥५६॥

(५६–५७) हिन्दोल की भाषाएँ ४ कही हैं। हिन्दोल की ये ही भाषाएँ **कुम्भ** ने बतायी हैं, परन्तु मालववेसरी के स्थान पर मालवकैशिकी मुद्रित है। यह wrong reading हो सकता है, क्योंकि मतंग की सूची में वेसरी निर्दिष्ट है

---

1 प्राया 2 लक्षये 3 क 4 शोषिकः 5 स्पष्ट 6 भाषाया 7 मुख्या तथ भीरिका 8 देशाक्षा 9 ते 10 लवणां 11 गौडवीत्यां 12 अंशकस्तथा 13 गीतो 14 रागे 15 भाषा चतुष्टर्थवास्य

मालववेसरी मुख्यां[1], देशाख्ये परिकीर्तिते[2] ।
गौडी काम्बोजिकेति द्वे, छेवाटी[3] तूपरागजा ॥५७॥

गीत्यां तु[4] वेसरायां च रागो मालवकैशिकः ।
अस्य भाषाः षडेव[5] स्युर्मुख्या मालववेसरी ॥५८॥

मालवा गौडिका चैव बाङ्गाली सैन्धवी तथा ।
तथा हर्षपुरी चेति देशाख्याः पञ्च कीर्तिताः ॥५९॥

साधारणायां - - - - - - - - गान्धारपञ्चमः ।
[6]कोल्हहासो नर्तरागस्तथा पञ्चमषाडवः ॥६०॥

[7]कैशिकादिस्तु ककुभो भासः ककुभ एव च ।
[ति] प्रोष्य (?) भाषा (च) मुख्या तु रंगन्ती[8] परिकीर्तिता ।
देशाख्याऽऽभीरिका (चो) परागजा भिन्नपञ्चमी ॥६१॥

[9]चोक्षषाडविका वष्वे (?) पञ्चमी[10], चोक्षकैशिकः[11] ।
षड्जकैशिकनामा च प्रसवाभिख्य एव च ॥६२॥

(बृ० दे०, पृ० १०६)। अपरं च, शाङ्गंदेव की सूची में वेसरी तथा मालव-वेसरी दी हुई है (II, पृ० १२ श्लो० ३१, ३२)। हिन्दोल की भाषाओं की संख्या **मतंग** ने ५ दी है, परन्तु आगे चल कर **शाङ्गंदेव** ने ९ कर दी है।

(५८–५९) **सं० र०** में मालवकैशिक की भाषाएँ १३ तथा विभाषाएँ २ दी हुई हैं (२।३३–३५)

(६०, ६१) **सं० र०** में साधारणा गीति के राग ७ बताये गये हैं, जिनके कुछ नाम नान्यदेवोक्त नामों से भिन्न हैं।

---

[1] प्रख्या [2] कीर्तिता [3] छेवाडी [4] मंध्री च चः प्रोक्तो [5] षडेस्यु मुख्या
[6] कोण्हाहासकः के-दाख्यो [7] कैशका तु स्वकुकभो [8] इंगवी [9] वाक्ष [10] पञ्चमा
[11] श्चाश्चकैशकः

नट्टनारायणो रागो ध्वनिर्बङ्गाल एव च ।
आम्रपञ्चमकश्चैव रागो देशाख्य एव च ॥६३॥

गुर्जरी रञ्जिका[1] रीति[2] स्तोडी प्रथममञ्जरी ।
महल्लारो भुञ्छिका[3] [4]भोगवर्धनी स्तम्भपत्रिका[5] ।
कालिन्दी च तथान्धाली विभाषा इति कीर्तिताः ॥६४॥

प्रथमा भासवलिता[6] द्वितीया किरणावली ।
शकाद्या[7] वलितेत्यन्तरभाषास्तिस्र इत्यमूः ॥६५॥

देवकृति (नागि-) कृतिस्त्रिनेत्रकृतिरित्यपि ।
भावकृतिर्धन्यकृतिः[8] क्रिङ्यागाण्यत्र[9] पञ्च तु ॥६६॥

[10]पुनरुक्ता तु या याऽत्र रागे भाषा तदुच्यते ।
टक्करागे च हिन्दोले तथा मालवकैशिके ॥६७॥

मालववेसरी ख्याताऽऽभीरी[11] पञ्चमे ककुभे ।
मालवीद्वयमाख्यातं (ट-)क्के मालवकैशिके ॥६८॥

टक्करागे च [12]भिन्ने च पञ्चमे त्रवणा मता ।
टक्के च भिन्नषड्जे च तथा मालवकैशिके ॥६९॥

गौडिका चैव हिन्दोले तथा मालवकैशिके ।
पञ्चमे चैव निर्दिष्टा सैन्धवी जितसिन्धुना ॥७०॥

---

(६८) **आभीरी** भाषा (अथवा विभाषा) पञ्चम तथा ककुभ दोनों रागों की अलग-अलग है। एक आभीरी को **सं० र०** में पञ्चम ग्रामराग की भाषा बतायी है तथा अन्य आभीरी को ककुभ की विभाषा कही है (**सं० र०** २।२३, २८)। यही व्यवस्था द्विरुक्तादि अन्य भाषा-रागों के विषय में ज्ञातव्य है।

---

1 वर्तिका 2 गीति 3 दुछिका 4 भेग 5 सुसु 6 भिन्नललिता 7 शक्ताख्य
8 द्वन्य- 9 क्रियांशा- 10 पुनरुक्तास्त्रिया 11 आभेरी 12 भिन्नैव

टक्के च पञ्चमेऽप्याह सौराष्ट्रीं राष्ट्रवर्धनः ।
भिन्नैव पञ्चमे चैव बाङ्गाली कैशिके तथा ॥७१॥

दाक्षिणात्या तथा भिन्नषड्ज-पञ्चमयोर्मता ।
या [1]इमाः पुनरुक्ता[2]स्ता भाषा अष्टौ प्रकीर्तिताः ॥७२॥

ता एव [3]नामसाम्यतश्चोभय-ग्रामजाः स्मृताः ।
अन्येऽपि नाम-साम्येन रागाः स्युरुभयत्रजाः ।
लक्षणालापरूपैस्तु भिद्यन्ते परमार्थतः ॥७३॥

गान्धारग्रामिका रागाः शुद्धा[4]मित्याश्रितास्त्रयः ।
[5]कौशलो रुद्रदामा च[6] गन्धर्वामोद[7]न [दन] स्तथा ॥७४॥

भिन्नायां वीरहासश्च जीमूत [8]श्चोक्षषाडवः ।
[9]पिञ्जरी रविचन्द्रश्च[10] गौडगीत्यां प्रकीर्तितौ ॥७५॥

[11]वेसरायां तु [12]गान्धारषाडवस्तुम्बुरुप्रियः ।
साधारणाभिधायां तु [13]शारदो वे (-ग-) मध्यमः ॥७६॥

गान्धारललिता भाषा[14] स्वराख्याऽत्र प्रकीर्तिता[15] ।
देशाख्या द्राविडी चैव [16]माङ्गली पार्वतीति च ॥७७॥

उपरागात्तु संभूता इति **भाषाः** प्रकीर्तिताः ।
धन्नासी चैव [17]कच्छेली पुलिन्दीत्येवमादिका[18]ः ॥७८॥

गान्धारग्राम-संभूता **विभाषा** इति कीर्तिताः ।
[19]शंकाख्यललिता सिन्धु-ललिता भूतमत्सरी ॥७९॥

---

1 इमा 2 सा 3 नामसात्म्यतोभय 4 द्ध 5 कौशेला 6 हामश्च 7 मौदन 8 वाक्य 9 पञ्जरी 10 रतिचन्द्रष्व 11 वेद 12 गांधारा 13 सारदो 14 षाः 15 ताः 16 ड 17 बछे 18 क्षिका 19 स

तथात्रान्तरभाषाश्च [1]प्रसिद्धा एवमादयः ।
तथा हि मत्तविश्वा [2]च स्वभावक्रुतिरित्यपि ।
[3]क्रियाङ्गाण्येवमादीनि गान्धार-[4]ग्रामजानि च ॥८०॥

३. अथ राग-वर्णन-प्रकरणं तृतीयम्

[5]ग्रामत्रयगता रागा येऽमी समुपदर्शिताः ।
उदाहरणमस्माभिः [6]कश्यपादेव [नि]गद्यते ॥८१॥

(षड्जग्रामिका रागाः)

१. षड्जग्रामः रागः

[7]शृङ्गाराद्भुत-वीर-रौद्र-विषये दीप्तायता - - -,
मृद्वीभि[8]ः श्रुतिभिः [तिभि] श्रितो यदि भवेत् षड्जो ग्रहांश-
स्थितिः ।

---

(८०) प्राचीन मूल १८ ठाठ–राग 'जाति' नामक थे, उनसे ग्रामराग पैदा हुए। कई राग सीधे जातियों से पैदा हुये थे। मुख्य सात ग्रामरागों का उल्लेख **भ० ना०** में है (३२।४२७-४२९)। **शाङ्गर्देव** से पूर्ववर्ती सभी रागों को प्राचीन कहा जा सकता है। इन प्राचीन रागों का विभाजन **शाङ्गर्देव** ने दस वर्गों में किया है:— **ग्रामराग** ३०, **उपराग** ८, **राग** २०, **भाषा** ९६, **विभाषा** २०, **अन्तरभाषा** ४, तथा रागाङ्गादि चार वर्ग, जो मतंग के समय में प्रचलित थे। रागाङ्गादि रागों की गिनती शाङ्गर्देव ने इस प्रकार बतायी है:—**रागाङ्ग** १३, **भाषाङ्ग** ९, **क्रियाङ्ग** ३, **उपाङ्ग** २७।

(८१) कहने की आवश्यकता नहीं कि **ह० लि०** के इस वाक्य में दिया हुआ 'कुम्भ' का नाम लिपिकार–प्रमाद है। इस विषय में नान्यदेव ने **कश्यप** तथा **मतंग** के आधार दिये हैं, अतः यहाँ कश्यप अथवा मतंग का नाम होना उचित प्रतीत होता है। **कुम्भ** पश्चात् का ग्रंथकार है।

---

1 प्प 2 त्र 3 क्रियांगादेव 4 ग्रामि 5 गा 6 कुम्भादेवेति 7 श्र 8 ति

न्यासस्थो यदि मध्यमः सरिषभो[1] - - विदारी-स्वरः,
शेषाश्चेदनुवादिनो, यदि भवेद् ग्रामस्तदा[2] षड्जकः ॥८२॥

मूर्छनोत्तरमन्द्रा च गान्धारश्चाधिक-ध्वनिः ।
मीनध्वेज-सुरज्येष्ठ-रुद्र-देवेन्द्र-[3]दैवतः ॥८३॥

षड्जिका षड्जमध्या च[4] पूर्ण-कम्पित-धैवतः ॥
सप्तमाल्यं (?) तथा रागः षड्जग्रामस्तु जायते ॥८४॥

तथा च **कश्यपः**,
"षड्जांशो मध्यम-न्यासः स्यात् षाड्जी-षड्जमध्ययोः ।
षड्जग्राम इति प्रोक्तः संपूर्ण-स्वरकस्तथा" ॥८५॥

नारदोऽप्याह—
"ईषत्स्पृष्टो निषादः स्याद् गान्धारश्चाधिक[7]-ध्वनिः ।
धैवतः कम्पितो यत्र षड्जग्रामं विनिर्दिशेत्" ॥८६॥

म म स स ध स नि ध री ग म ग म स री ग ध स ध रि
ग स री गं सं सं सं सं सं ध नि नि स नि ध प ग म नि ध
प रि री स स म म ध ध नि प स सं गं स म ग स [छाद्दा]
म म प [द्दा] म ग ध ध नि प प म रि ॥ (इति षड्ज-ग्राम—रूपकम्) ॥८७॥

---

(८२) i. स—ऋ का संधि टालने के लिये ग्रंथकार ने ऋ के स्थान पर रि का प्रयोग किया है, ऐसा प्रतीत होता है ।

ii. श्लोक की प्रथम पङ्क्ति के अन्तिम तीन अक्षर लुप्त हैं ।

(८६) ना० शि० १–४–८ ।

(८७) इस स्वर—प्रस्तार (आलाप) का कुछ अंश लुप्त है ।

---

[1] सरिषभाभो [2] तान [3] जीवनः [4] मूर्च्छनान्तर [5] दे [6] श्च [7] दिक

२. शुद्धसाधारितः

- - - - ग[1]-ग्रहापन्यासांश-स्थायि-षड्ज-ध्वनिः,
न्यासे स्वीकृत-मध्यमैक[2]-सधुरो[3] यः षड्जमध्योद्भवः[4] ।
युक्तश्चोत्तरमन्द्रयाऽपि परितो यः शुद्धमध्यास्थितः,
स्वल्पद्विश्रुतिकः[5] स्वरः प्रविलसत्षड्जादितानः[6] पुनः ॥८८॥

पञ्चम-स्वर-संवादादनुवादी चान्तः स्वरः ।
स उक्तः शुद्धसाधारो धर्माधार-धरा-भृता ॥८९॥

सस धम पप मम धनि मस ससरि गम गनि ध पप धम गरिग मंसंसंसंसग सस मनिधप ध ध सम समस ध ध म ध मम पप सस ग स धप ध ससससं ध स ध परिमरिगसरिसस-मसधसं म नि धमरि मस संसं स मम स प धस गम ॥ इत्यालापकः[7] ॥ सस धम गारिससपधमससधरि प ध ससस धरि प ध सस गारि मंमं सस ममप सस ध पप मम संसं पप ध ध रि रि प प स ध सस रि स धधस पम पम पध नि स स ध धम गरि गस गम मरि सरिगसस धध पप स स ध सारिग ससम स सपनिध ध म्म ॥ इति **शुद्धसाधारित–रूपकम्** ॥९०॥

---

(८८) इस श्लोक के प्रथम चरण में कुछ अक्षर खण्डित हैं ।

(८९) छन्द जमाने के लिए ग्रन्थकार ने 'अन्तरः' शब्द को 'अन्तः' कर लिया है ।

(९०) नान्यदेव ने रागों के स्वरालाप के सामान्यतः दो प्रकारः—१. आलाप तथा २. रूपक दिये हैं । **सं० र०** में शार्ङ्गदेव ने इसी का अनुसरण किया है, किन्तु क्वचित् रूपक के स्थान पर 'करण' अथवा 'वर्तनी' दिया है (II, पृ. ७९, ८३, ११० इ.) ।

---

1 ग्रागहपदांस 2 मेक 3 ज्यः 4 ध्याद्भवः 5 श्रुतिः 6 सावित्रतानः 7 इत्यालोपकः

३. बोट्टः

[1]न्यासोंऽशः पञ्चमः स्याच्चेदपन्यासश्च धैवतः ।
मध्यमोऽस्य स्वरः, स्वल्पो गान्धारः सप्तमो यदि ॥९१॥

पञ्चमी-षड्जमध्याभ्यां [2]जातः शृङ्गार-हास्ययोः ।
जायते [यो] [3]बोट्टरागाख्यः कन्दर्प-गण-दैवतः ॥९२॥

तथा च [4]**कश्यपः**,

" स्यात्षड्जमध्यमा[5]-जातः पञ्चम्याश्च विनिर्गतः ।
[6]बोट्टरागोऽल्प-द्विश्रुतिः [7]पांशो, न्यासस्तु मध्यमः" ॥९३॥

धपपपपध समगरिरिरिरिनि परिनिपपमसगपधपप समसपपपपपपम
धरिपधमममगरिरिरिपमपपममसरिमगममधसमसधरिगारिसम स
पप ग मम ॥ इति **बोट्ट–रूपकम्** ॥९४॥

४. सौवीरकः

न्यासांश-विस्फुरन् षड्जः स्वल्प-गान्धार-सप्तमः ।
षड्जोक्त-मूर्छना-तान-श्रुति-संतान-सुन्दरः ॥९५॥

षड्जमध्या-समुद्भूतः शृङ्गारे स्मर-दैवतः ।
जित-सौवीर-वीरेण सौवीरक उदीरितः ॥९६॥

तथा च **कश्यपः**,

" षड्ज-न्यासांश-संयुक्तः कारणं षड्जमध्यमा ।
सौवीरः स्वल्प[8]-गान्धारो निषादश्चापि दुर्बलः " ॥९७॥

---

(९४) इस प्रस्तार में आलाप–खण्ड लुप्त है ।

---

1 नासोंश 2 जातिः 3 दक्क 4 व 5 मो 6 वौढ 7 पञ्चमांशौ तु 8 क स्व

स स स ध नि ध स स ध नि ध प प रि प रिं रिं प धं ध पं प नि ध स नि ध प प। प धं रिं रिं ग म म ध ध स प ध म नि स म। सं म म सं स स रि। ग स सं ग रि ग स मं धं सं पं ध स नि म स म म स पं निं धं ध स म रि म ग ग सं सं स रि प प प ध प ध स म स नि नि। म [ए ए] रि रि म म प ग रि ध नि ग रि ध रि स। रि म स नि ध स प ध स नि स स। **इत्यालापकः** ॥

सं गं सं प ध म ध रि रि ध ध स सं स स ग म ग ग ग रि नि ध ध प रि प ध ध स स स ग म ग म ग म स म स म प ध ध रि प ध [उ] ध नि ध नि ध ग ग रि ग स मं म ध नि म म [जं] स सा म म गं गं रि सं नि रि प प प [धैवत] ध प प प ध ध ध प प स स ध [उ] प ध स ग म म ग रि म रि ध म ध प रि ध रि प ध स ध [उ] नि स स स स स। इति सौवीरक-**रूपकम्** ॥९८॥

९. टक्ककैशिकः

नृत्यावसाने[1] शृङ्गार-बीभत्स-रस-संश्रये।
स्वल्प-सप्तम-गान्धारो ग्रहांशन्यास-धैवतः[2] ॥९९॥

अपन्यासो [3]निषादे च प्रस्फुरदृषभस्वरः[4]।
उत्तरायत-मूर्छायां ताने सति सुवर्णके ॥१००॥

मीनकेतु-महाकाल-दैवताभ्यामधिष्ठितः।
धैवती-मध्यमाजात्योर्जायते टक्ककैशिकः[5] ॥१०१॥

---

1 दैत्यावसाने 2 प्यशार्पित चौ 3 निकेत 4 तिस्युरद्बृ 5 कः

तथा च **कश्यपः**,

"धैवतांश-(स्तदन्तश्च) स्वल्प-द्विश्रुतिकं-स्वरः ।
मध्यमा-धैवती-जात्योर्जायते टक्ककैशिकः" ॥१०२॥

ध ध ध ध रि ध म प ध प प स स रि स स ध म म ध ध स - - प ध म रि म स रि स ध - - ध स ध ध ध ध प म ग मं नि स ध ध ध म स रि रि । ध ध स स ग स नि ध ध सं स प ग रि म म म ध प म [धैवत] ध ध ध ध स प स म ध प रि रि म प प प म म ध स ध ग धं ध ध । **इत्यालापकः** ॥ ध ध रि [धैवत] सं [ज] स ग रि मं मं म ध ध प प ध [धैवत] ध ध ध सं स - - - स ग् ध रि ग रि स प ध रि ध ध रि प ध नि ध नि ध ध ध ध स ध स ध सं सं पं ध स म ग ध ध रि रि ग म् म म रि म म प ध प ध रि ध ध ध म ध ध ध ध स ध ध स स म रि रि प प ध ध ध । इति टक्ककैशिक **रूपकम्** ॥१०३॥

६. वेसरषाडवः

मध्यमांशो मध्यमान्तो द्विश्रुति[1]-स्वर-वर्जितः ।
शुद्धषड्जाविधावुं[2] क्तः [3]कारणं षड्जमध्यमा ॥१०४॥

षड्ज-स्वरस्य संवादा[4]न्मध्यमन्यास-योगतः ।
शृङ्गारे षड्जमध्यायां ज्ञेयो वेसरषाडवः ॥१०५॥

[तथा च कश्यपः, "मध्यायां ज्ञेयो वेसर षाडवः"]

---

1 तिः 2 यु 3 वि–कारण च 4 स्यैव नाश योगतः

तथा च **कश्यपः**,

"मध्यमांशस्तदन्तश्च षड्जमध्या-समुद्भवः ।
द्विश्रुति-स्वर-हीनश्च भवेद्वेसरषाडवः" ॥१०६॥

म म म म स स प ध प ध स रि स म म ध स रि रि स-स ध स स ध प प प ध स ध स रि स स रि रिं म म ध स रि स स स स रि रि ग स स स ध रि ध प [ए] म म म ध प ध ध स रि रि स स ध प प ध प ध म म म म । (इति) **आलापकः** । म ध म म म म म स सं रिं रिं मं मं म रि सं रि म म ध ध ध ध स ध स ध रि ध ध ध रि । स म मं रि स ध ध रि रि नि स ध स रि रि म स [धैवत] ध ध स ध ध प प प (धैवत) ध० सं [ज] स ध स रि म म ध ध रि म म रि रि ध ध म म रि रि स रि स स ध सं सं ध ध ध स स रि म म । इति वेसरषाडव-**रूपकम्** ॥१०७॥

७. टक्कः

न्यासांश [य] ग्रह-षड्ज स्वयेरुविरोद्धः (?) षड्जिका-संभवः,
स्वल्प-स्वीकृत[1]-धैवतर्षभ[2]-रवः [3]संवादिमध्य [म] ध्वनिः ।
वीरे रौद्र-रसे च[4] [5]वारिधिपतिर्देवः स्फुरज्जीवनः,
[6]काकल्यन्तर-राजितः सुमधुरोऽसौ टक्करागः पुनः ॥१०८॥

(१०८-१०९) **मतंग** तथा **शाङ्र्गदेव** के कथनानुसार टक्क ग्रामराग षड्ज-मध्यमा तथा धैवती जाति से उत्पन्न होता है, एवं उसमें पञ्चम स्वर अल्प है। नान्यदेव तथा कश्यप के श्लोकों में ऋषभ-धैवत अल्प कहे गये हैं, वह समुचित प्रतीत नहीं होता। परवर्ती श्लो० ११४ में दिया हुआ टक्कवेसर का अर्थात् टक्क का वर्णन यथोचित है। ऋषभ-धैवत-वर्जित ग्रामराग केवल हिन्दोल ही है।

1 त्य 2 भा 3 सम्पा 4 पु 5 वारिगिभि 6 युक्ताश्चान्तरमत्रपतिमधुरः

तथा च कश्यपः,

“ षड्ज-न्यासांश-संयुक्तो धैवतर्षभ-दुर्लभः ।
षड्जग्राम-समुद्भूतः टक्करागः प्रकीर्त्तितः ” ॥१०९॥

स स स स ग नि रि म म म ग म म म ग ग म प ग म
ग म रि रि ग म ग रि स [ति] [त] म स रि- -ग स रि स
म ग ग म ध नि ग ग म ध नि ग म ग ग रि रि ग रि ग
स म स् ध नि नि ध नि ध ध प [च] म प प नि प म ध
नि म स म [त] स ध नि सं सं सं सं मां नि नि स म रि
रि नि नि नि रि । स म म ग स स ध प म स स स ध ध
ध ध ध ध ध ध ध स म नि ध म म म नि ध म रि रि म
रि ग स ग स ग स ध नि ध स ग स ध नि स स सं ध सं
[त्र] प म रिं रिं रिं गं रिं निं प प मं मं रिं मं ग मं ग रिं
ग गं म गं ग सं ध पं नि म स स स ॥ (इति) आलापकः ॥
स स पं ग म ग ध नि ध म म म स म ध नि म ध स ध रि
ग- -रि ग म नि प नि स स गं मं मं सं धं धं धं । मं मं स
ग म ध पं निं प प स स नि नि ध ध ध म म ध ध ग ग
स स रि रि न ग स स ग ग प प नि नि ध [उ] ध [उ]
मं गं गं मं मं धं धं नि ध नि स ग ध नि सं [ज] म न ध
नि प [तद्यमध्यम] म म रि ग रि ध प स रि ग रि स रि स
स स [धैवत] । सं [ज] स रि ग म म नि ध प म नि रि ग
स ग म ध स [ज] स स सं सं ग ग- -[उ] न ध ध म ध
स ध नि स स ॥ इति टक्क-रूपकम् ॥११०॥

८. सैन्धवः

[1]टक्करागस्य यः पूर्वमुक्तो मूर्छादि (-क-) क्रमः ।
स एव सैन्धवेऽप्यत्र विद्वद्भिः [2]समुदाहृतः ॥१११॥

षड्जिका-धैवती-जातः षडजांश-न्यास-संयुतः ।
[3]स्वरश्च पञ्चमः स्वल्प इति भेदस्तु केवलम् ॥११२॥

सं सं सं सं धं पं मं रिं गं निं पं प म मं रि गं रि गं मं गं
मं गं प ध प [उ] स स नि [उ] पं मं मं रिं रिं गं॰ मं मं
गं सं गं गं मं- -गं सं गं गं म मं नि ध म मं स सं ध ध नि
रि प ध ध निं म ध म स ध मं रिं गं स स रि स ग सं प
ध स रि ग स नि प म स मं गं गं गं [उ] ध ध म । -म

(१११–११२) i. यह टक्कसैन्धव राग होगा । टक्कसैन्धव को **शाङ्र्गदेव** ने आठ उपरागों में अङ्कित किया है (II, पृ० ९) । **बृ० दे०** में इसका वर्णन उपलब्ध है :—

"स्यात् षाडजी–धैवती–जात्योष्टक्करागस्तु सैन्धवः ।
षडजांश–न्यास–संयुक्तः पञ्चमेन तु दुर्बलः" ॥३६१॥ इत्यादि
(पृ० १०२–१०३)

ii. **कल्लिनाथ** ने मतंग का श्लोक ही उद्धृत किया है :—

"स्यात् षाड्जी–कैशिकी–जात्योः संभूतष्टक्कसैन्धवः ।
षड्जांश–न्यास–संयुक्तः पञ्चमेन तु दुर्बलः ॥" (II, पृ० १४३)

इसके प्रथम चरण में आया हुआ 'कैशिकी' शब्द समुचित प्रतीत नहीं होता ।

iii. **कुम्भ** द्वारा दिया गया वर्णन मतंग के दिये हुए वर्णन का ही सारांश है :—

"षड्जग्राम–समुद्भूतः षाड्जी–धैवतिकोद्भवः ।
- - - - स्वल्प–पञ्चम–निस्वानो रसे वीरे नियुज्यते ॥"
(I, पृ० ३४०, श्लोक ५८५–५८७)

---

[1] टक्करेण तु [2] रुदाहृतः [3] अपंच

निं ध ध म म नि नि ध म [उ] ग ग स स म म रि रि ग स स ग ग प प म म ध नि म ध ध प ध नि नि स ग ध नि स स स स ॥ इति **आलापकः** ॥

स स ध स स प ध सं [ज] स प ध निं ध प निं म ध ग म म म रि ग ध म - - - रि ग ध म प रि ग रि म ग स स [धैवतं] स [ज] स रि रि ग मं प नि ध नि ध म ध म रि ग म म ग ध ध नि सं [ज] सं सं स स ग म म म म नि ध [त] म ध म ध सं [ज] सं [ज] सं स म ग [उ] स म रि ग सं स ग ध ध नि ध नि ध ध नि ग रि ग ध ध स रि ग स म स स ॥ इति **सैन्धव-रूपकम्** ॥११३॥

९. टक्कवेसरः

षड्ज-न्यासांश-संयुक्तो धैवती-षड्जिकोद्भवः ।
पञ्चमेन विहीनश्च टक्करागस्तु वेसरः ॥११४॥

स स स मं मं रिं ग म रिं ग म रिं गं रिं रि ग म ग म ध स स नि नि स स स ग स स म ग म स स स स सं सं रिं सं गं रिं सं रीं गं सं । म ग म ध नि ध सा ध ग स ध ध

(११४) **i.** टक्क ग्रामराग वेसर गीति का है। **शाङ्र्गदेव** ने ग्रामरागों की सूची में टक्क का नाम टक्कवेसर प्रयुक्त किया है (II, पृ० ८, श्लो० ११)। सारांश, यह टक्कवेसर टक्क ही है ।

ii. श्लोक में ' धैवतीषड्जिकोद्भवः ' लक्षण दिया है। **मतंग** तथा **शाङ्र्गदेव** ने टक्क की जनक जातियाँ धैवती तथा षड्जमध्यमा बतायी हैं।

iii. मतंग ने पञ्चम तथा निषाद का अल्पत्व कहा है :- " निषाद-गान्धार-योरत्राल्पत्वम् ।" (पृ० ९४); परन्तु **शाङ्र्गदेव** ने केवल पञ्चम का अल्पत्व बताया है :--" अल्प-पञ्चमः " (II, पृ० ७८, श्लो० ९०) ।

म स स ग स रि ग म स ध रि स ग म नि स म ग म म स
म - - म ग मं मं मं ध म मं मं नि नि ध ध म म ध ध
म म स स म म रि रि ग ग । स स [ख] ग ग स स म म
नि ध ध म म मं गं म निं [त] ध नि ध नि ध नि ध ध
स रि ग ध नि स स ॥ इत्यालापकः ॥

सं [ज] सं ध नि ध स म [ध्य] म रिं गं रि ध म स म रिं
ग रि म रि ग म स [धैवत] सं [ज] स रि ध ग म म नि
ध नि म ध म रि सं मं ग धं ध म सं [ज] स सं मं सं ग
म नि-ध म ध नि सं [ज] स स स म ग म स म रि ग स
स म ध नि ध - - ध ध ध नि ध ध नि ध ध गं ध ग रि
ध ध ध स रि ग स म । ध म सं [ज] ॥ इति (टक्क-)
रूपकम् ॥११५॥

१०. मालववेसरा

धापन्यासा[1] च षड्जांशा विस्फुरत्षड्जमध्यमा ।
प-रि-हीना सं-स्फुरिता[2] [3]ज्ञेया मालववेसरा ॥११६॥

तथा च **कश्यपः**,

" षड्ज-निषाद-स्फुरणैर्धापि[4] न्यासेन टक्क-राग-भवा ।
पञ्चम-रिषभ-विहीना (भव-)ति सदा मालवाख्य-वेसरिका "
॥११७॥

(११६-११७) i. मालववेसरी, मालवा, मालवी, मालवरूपा, वेसरी एवं आद्य-वेसरी अथवा अर्धवेसरी आदि भाषारागों के कई नाम अंशतः समान हैं ।

1 धापा 2 ससरिता 3 विज्ञेया नववेसरा 4 द्वपि

स स स स ध नि ध नि ध नि ध नि ध नि स स नि ध ध
ध ग स स स स नि ध नि ध ध न [त] स स म नि ध ध

---

ii. मतंग के अनुसार मालववेसरी टक्क की भाषा है। **शाङ्र्गदेव** के मतानुसार एक मालववेसरी टक्कभाषा है, अन्य मालववेसरी हिन्दोल की भाषा है एवं तृतीय मालववेसरी मालवकैशिक की भाषा है (II, पृ० ११, १२)। **कल्लिनाथ** ने शाङ्र्गदेव का अनुसरण करते हुए तीनों मालववेसरी का वर्णन किया है।

iii. मतंगोक्त टक्क-भाषा मालववेसरी दुर्बल-पञ्चमा तथा षाडवा है।

iv. तीनों मालववेसरिओं का वर्णन **शाङ्र्गदेव** ने नहीं दिया है, किन्तु **कल्लिनाथ** ने दिया है। उसक अनुसार टक्क-भाषा मालववेसरी 'पाल्पा' तथा, 'षाडवा' है (पृ. १३४)। हिन्दोल-भाषा मालववेसरी 'रि-ध-त्यक्ता' है (पृ. १३८) तथा तृतीय मालववेसरी 'ध-वर्जिता' है (पृ. १३८)। तात्पर्य, **कश्यप-नान्यदेवोक्त** मालववेसरा टक्क-भाषा ही है, किन्तु वर्णन में भिन्नता है।

विभिन्न ग्रंथकारों द्वारा मालववेसरी एवं तत्सदृश नाम वाली भाषाओं का अन्यान्य ग्रामरागों में किया गया विभाजन निम्नप्रकार है :—

१. टक्कभाषा :—**मतंगोक्त** = १ मालववेसरी, २ वेसरी
,, **शाङ्र्गदेवोक्त** = १ मालववेसरी, २ वेसरी, ३ मालवी
,, **कल्लिनाथोक्त** = १ मालववेसरी, २ वेसरी, ३ मालवी

२. टक्ककैशिक :—**मतंगोक्त** = मालवा
,, **शाङ्र्गदेवोक्त** = मालवा
,, **कल्लिनाथोक्त** = मालवा

३. हिन्दोल :— **मतंगोक्त** = वेसरी
,, **शाङ्र्गदेवोक्त** = १ वेसरी, २ मालववेसरी
,, **कल्लिनाथोक्त** = १ वेसरी, २ मालववेसरी

४. मालवकैशिक :— **मतंगोक्त** = अर्धवेसरी
,, **शाङ्र्गदेवोक्त** = १ अर्धवेसरी, २ मालववेसरी
,, **कल्लिनाथोक्त** = १ अर्धवेसरी, २ मालववेसरी, ३ मालवरूपा

५. भिन्नषड्ज :—**शाङ्र्गदेवोक्त** = मालवा (विभाषा)
,, **कल्लिनाथोक्त** = मालवी (विभाषा)

मं मं प स स ध नि ध म म स नि ध म ध नि स नि ध गं गं स नि । ध स स मं मं ग मं म स ग म स स नि ध नि स ग म नि ध म स स ॥ इति **आलापकः** ॥

स सं [ज] स म नि ध नि सं [ज] स म म ध सं [ज] स म ध म सं [ज] स म नि स ग म ध ग [न्य] री स स ध नि ध स ग म ध नि स स म ध म रि ग स ध - - स मं [ज] स स स ग म [ज] स [धैवत] ध [त ज] स स स ध स नि नि ध रि ध रि म नि ध नि स ग स स नि ध नि स ध नि स स ॥ इति **मालववेसरा-रूपकम्** ॥११८॥

११. मालवा

न्यासांश-[क] ग्रह[ण]-षड्जवती षड्ज-गान्धार-पञ्चम-कम्प्रा[1] ।
रतयाभिवारा(?) उडूत(?) पञ्चमक-सैन्धव (ट)क्कराग-मिश्रध्वनिः[2]।
- - - - - सुगम कोकिल (?) मालवा स्यात् ॥११९॥ तथा च

कश्यपः,

(११९-१२०) i. उपरोक्त श्लोक ११९ अतीव भ्रष्ट है। **मतंगादि**-मतानुसार मालवा टक्ककैशिक की भाषा है। इस मालवा का वर्णन इस अध्याय में आगे आया है।

ii. **कश्यप** के उपरोक्त श्लोक १२० से ज्ञात होता है कि इस राग में ऋषभ वर्ज है। इस वर्णन के अनुसार यह टक्क की भाषा मालवी प्रतीत होती है।

iii. **मतंगोक्त** टक्कभाषाओं में मालवी (अथवा मालवा) अन्तर्भूत नहीं है। टक्कभाषा मालवी शार्ङ्गदेवोक्त सूची में (पृ. ११) दी हुई है तथा इसका

---

[1] कमता [2] मिमु

"पञ्चम-सैन्धव-मिश्रा षड्ज-स्वर-जनिता ऋषभ-रव-हीना।
तारगमैः (?) संयुक्ता द्वादशा (?) सा भवति मालवा ललितैः"
॥१२०॥

स स स स धप म [उ] ध ध ग प गनि स स [त] धनि
ध स गम म गम ग ग ग स म ग ग पम ग ग सम पप प
प निध नि ध ध स प म ग ग स गगस निध स ध स ग म
ग म। सं ग ममरी ग स स स प प पप नि धनि स ग स
----ध ध ग प म म गम सस सस नि ध स स स गम म
स सनि धनि धनि स स स ॥ इति **आलापकः** ॥

वर्णन **कल्लिनाथ** ने दिया है, जो निम्नप्रकार से है:—

"प–ध–मिश्रा तदन्तांशा मालवी टक्क–संभवा।
रि–हीना तार–गान्धार–षड्ज–मध्यम–कम्पिता॥" (पृ. १३५)

यह वर्णन अंशतः **नान्यदेव–कश्यपोक्त** वर्णन के समान है।

iv. कुम्भ द्वारा दिया हुआ टक्क–भाषा मालवी का वर्णन भी इसी के समान है:—

"षड्जांश–ग्रहण–न्यासा ऋषभेण विवर्जिता।
औडुवा षड्ज–गान्धार–पञ्चमैर्दीप्तिमागता।
----मालवादेः पञ्चमस्य टक्करागस्य मिश्रणात्" ॥ (पृ. ३६५)

अर्थात् कुम्भ के कथनानुसार मालवपञ्चम तथा टक्क के मिश्रण से मालवा उत्पन्न होती है।

नान्यदेव तथा **कुम्भ** के अनुसार मालवा में षड्ज, गान्धार तथा पञ्चम कम्पित हैं। **कल्लिनाथ** के कथनानुसार षड्ज, गान्धार तथा मध्यम कम्पित हैं। इस मतान्तर के लिये पाठ की अशुद्धि भी कारण हो सकता है।

कुम्भ के उपरोक्त श्लोक में 'औडुवा' शब्द प्रामादिक है और अन्य कयी स्थानों पर भी इसी प्रकार 'षाडव' के स्थान पर 'औडुव' मुद्रित है।

सनि पमध म म ग ग ग स ग निध ध स ध सस गग प प ग
प गग सस पप पप निध धनि सध ग सस निध निध ध ध
प रि म ग ग सस नि धनि स स॥ इति **मालवा-रूपकम्**
॥ १२१ ॥

१२. सौराष्ट्रिका

स-रि-ग-म(ध-) [1]निषादैस्तारभ्य (?) च प्रपन्नैः,
बलवति च निषादे [2]पञ्चमस्यापलापे ।
स्फुट-विरचित-[3]षड्जेऽप्यंशके मन्द्र-मध्यौ[4],
भवति [भुवति] भुवनरम्या हस्त (?) सौराष्ट्रिकाख्या ॥१२२॥

तथा च **कश्यपः**,

" [5]स-रिषभ-ध-नि-शब्दैर्मध्यतरा मन्द्र-मध्यम-रवा ।
[6]बलवन्निषादयुक्ता सौराष्ट्री भवति पञ्चमेन विना " ॥१२३॥

स स स स नि ध नि नि ध नि नि ध नि नि नि म नि ध नि
ध नि नि नि ध नि म नि ध नि स स ध नि ध स ध नि
ध नि ध ग स म म स स ग स नि ध नि नि ध नि ध
नि नि नि ध नि स स ध नि ध स ध नि ध नि ध स ध नि

(१२२, १२३) i. **नान्यदेव** तथा **कश्यप** ने निषाद बलवान् बताया है, किन्तु मुद्रित **संगीतराज** ग्रंथ में सम्पादक ने 'रि–भूयसी' कर दिया है (पृ. ३६२) तथा 'पलोपेनौडुवा' मुदित है। **मतंग** ने (पृ. ११०) 'सम्पूर्णा' कही है, परन्तु उसके उदाहरणरूप स्वर-प्रस्तार में पञ्चम का अभाव है।

ii. कश्यपोक्त श्लो. १२३ में आये हुये 'स–रिषभ' शब्दों के स्थान पर 'स–रि–ग–म' शब्द **नान्यदेव** के पाठ के अनुसार उचित प्रतीत होते हैं।

---

[1] निना [2] पञ्चमेप्राप्तालापे [3] षड्जा [4] ध्य [5] परिषभ [6] बलय

ध स ग स म ग म स स ग स नि ध नि स ध नि ध ध नि
ध ध नि ध नि नि म नि ध नि स नि ध नि स म म ॥ इति
आलापकः ॥

स नि ध नि नि ध नि स ध नि स नि स ध नि ध नि नि
ध नि ध नि स ध म स ध रि रि ध स ध मा मा म ग म
सा म ध म मा ग स रि स ग स ग ग स नि ध नि नी नि
नि ध नि म ध म स नि स ग नि ध नि ध स स ग ग म
म नि ध नि ध पम मम स स म ॥ इति **सौराष्ट्रिका-रूपकम्**
॥ १२४ ॥

१३. सैन्धवी

परि-हीना तार-मांशा मन्द्र-षड्ज-ध्वनिस्तथा ।
स्वर-लङ्घेन संयुक्ता सैन्धवी परिकीर्तिता ॥१२५॥

तथा च **कश्यपः**,

" पञ्चम-स्वरानुगमकैः स्वर-लङ्घन-योजितैस्तु[1] संयुक्ता ।
रि-प-हीना सैन्धविका भवति सदा [2]निबिडित-रवा वा " ॥१२६॥

सा सा सा म स स स गा गा म गा सा सा स स री गा नी
ध ध धा धा मा धा धा धा धा मा नी नी नी धा धा धा
धा मा नी नी नी नी धा धा धा धा मा नी नी नी धा नी
धा नी स [ती] स नी सा नी धा नी सा सा ॥ इति
आलापकः ॥

---

[1] तैः स्त्व [2] निबिडकर वा

मम [ध्य] सं सं [ज] स गा गा गा मा नी नि । नी स नि स स नि धा धा धा ध प स स ध म नि धा धा ध ध म ध म ध म ध मा नि नी नि नी स नि स नि ग नि सं ग ग ग म ध म ग म स म नि ध ध ध म म ध म ध नी नि नि ध नि ध नि ध नि नि ध नि स ग म धा ध म ध ग स स गा नि स नि ध नि नि स नि ध म म ध ध नि नि स स ग ग ग म ग नी नि [वि] नि स नि ध म म म ध ध नि नि ग स स स ॥ इति **सैन्धवी-रूपकम्** ॥ १२७ ॥

१४. मध्यमदेहा

मांशा[1] स्फुरित[2]-गमका स-ध-निर्बलवत्तारा ।
मापन्यासा प-रि-त्यक्ता मध्यदेहेति कीर्तिता ॥१२८॥

(१२८-१२९) i. **मतंग** की भाषादि-रागों की सूची में टक्कराग की १६ भाषाओं में भाषा 'मध्यमग्रामदेशा' निर्दिष्ट है (**बृ. दे.**, पृ. १०६), एवं ककुभ की ७ भाषाओं में 'मध्यमग्रामिका' भाषा अङ्कित है। आगे भाषाओं के वर्णन के श्लोक में टक्कभाषा का नाम "असम्पूर्णा स्मृता नित्यं मध्यमग्रामिका मता।" इस प्रकार 'मध्यमग्रामिका' बताया है (पृ. ११२), तथा इसके प्रस्तार के अन्तिम शब्द—"आलापकं मध्यमदेहा" इस तरह मुद्रित हैं (पृ. ११३)। आगे ककुभ ग्रामराग की भाषाओं के वर्णन के श्लोक में 'पूर्वमध्यमग्रामिका' (पृ. ११७) तथा प्रस्तार के अन्त में 'मध्यमग्रामिका' नाम बताया है। इससे निश्चित होता है कि इस भाषा का वास्तविक नाम 'मध्यमग्रामदेहा' है।

ii. **शाङ्र्गदेव** ने टक्क की इस भाषा का नाम 'मध्यमग्रामदेहा' (II पृ. ११) तथा ककुभ की एक भाषा का नाम 'मध्यमग्रामा' (II, पृ. १०) बतलाया है।

iii. **कल्लिनाथ** ने इसका वर्णन **बृ. दे.** के अनुसार ही किया है। और टक्कभाषा का नाम 'मध्यमग्रामदेहा' दिया है। ककुभ की भाषाएँ कल्लिनाथ ने पाँच बतलायी हैं, उनमें 'मध्यमग्रामी' है।

---

[1] शांसा [2] सरित

तथा च **कश्यपः**,

“ मध्यमदेहानुबले गापन्यासेन युता समाधेः ।
पञ्चम-रिषभ-विहीना स-स्फुरितैर्गमक-विन्यासैः[1] ” ॥१२९॥

सा सा सा स धा गा म नी मा स स स सं ध [उं] गा म ध नि नि ध नि । नि ध म ग ग स स स [व] । नि स नी धा मा म गा नी नी ध नी सा गा स नि ध गा ग सा सा म [क] । मा म सा सां ॥ इति **आलापकः** ॥

स स गध नि धा स स ध नि ध म म ग स नि ध नि नि ध म म म म नि ध मा धा मा स स सा स रि सा सा धा । नी धा नी ध मा मा गा धा नी नि ध मा ध नी सा सा स नि ध ग ग ग सा स ध मानि सा सा ॥ इति **मध्यमदेहा-रूपकम्** ॥१३०॥

१९. पञ्चमलक्षिता

गान्धार-पञ्चम-षड्[2]ज-मध्यम-नादैस्तारतरा सांशा च ।
मध्य-ग-लघुर्बहु-प[3]ञ्चमा त्यक्तर्षभा भवति ।
प[4]ञ्चमलक्षिता भाषा स्फुरित-नाम-गमकै[5] र्हृद्या ॥१३१॥

---

iv. उपरोक्त श्लोकों में **कश्यप** तथा **नान्यदेव** ने इसका नाम संक्षिप्त रूप से ‘मध्यमदेहा’ प्रयुक्त किया है, ऐसा प्रतीत होता है।

(१३१-१३२) **मतंग** ने टक्क की एक भाषा का नाम ‘पञ्चमाख्या’ बताकर उसका वर्णन भी किया है (पृ. १११)। वही वर्णन **कल्लिनाथ** ने दिया है, परन्तु नाम ‘पञ्चमी’ दिया है (पृ. १३५)। पञ्चमलक्षिता **मतंग** ने नहीं दी है, परंतु

---

1 सेः 2 सममध्यमानाददतारर सौंशा 3 पञ्चमात् त्येत्यचर्षभा 4 पंचमाख्या
5 गमैक

तथा च **कश्यपः**,

"स-ग-म-पं- जनैर्ध्वनिभिस्तारतरा पञ्चमोत्कटा मेलयः (?) ।
पञ्चमलक्षितां भाषा (रि-) विमुक्ता भवति रम्यतरा" ॥१३२॥

सा सा सा स ग म ग म ग प प म म ग म स स स ग ग
ध । नि नि स स स नी स नी नि ध नि ध प प प प म पा
मा प मा । स म नि ध प प प म प म प म गा नि म
ग सा सा सा स म सा ग स स ग म स ग म पा म प गा
पा पा गा गा । ग म म ग प म [ति] ध नि सा सा नी स ।
नी नी ध नी ध ध पा प मा प सा नी धा पा प म प मा ग
म प गा गा गा ग पा स स नि ध गा गा ध नी सा सा सा
॥ इति **आलापकः** ॥

सा ग ग स प पा प प म प म ग म म ग म प नि नि ध
नि सं [ज] स नि स स नि ध नि नि ध पा पा म प ग स
ग म प नि स नि नि ध म म ध ग म गा प म ग सा सा
स नि ध स नि ध सं [ज] स गा गा ध नी स स सा ॥
पंञ्चमलक्षिता-रूपकम् ॥१३३॥

शाङ्गर्देव तथा **कल्लिनाथ** ने टक्कभाषा 'पञ्चमलक्षिता' एवं 'पञ्चमी' दोनों अलग-अलग दी हैं। मतंगोक्त 'पञ्चमाख्या' के लक्षण नान्यदेवोक्त 'पञ्चमाख्या' के लक्षणों से भिन्न हैं तथा कल्लिनाथोक्त पञ्चमलक्षिता के कश्यप-नान्यदेवोक्त के समान हैं। **कल्लिनाथ** के द्वारा दिया हुआ 'पञ्चमलक्षिता' का वर्णन निम्नानुसार है:—

"स-ग्रहान्ता पञ्चमांशा तारा स-ग-म-पञ्चमैः ।
रि-हीना टक्कजा भाषा ज्ञेया पञ्चमलक्षिता ॥" (पृ. १३४)

तदुपरान्त, नान्यदेवोक्त रूपकालाप के अन्त में 'पञ्चरक्षिता' नाम आया है, जो अशुद्ध होकर भी पञ्चमलक्षिता का सूचक है।

---

1 पि 2 लंघित 3 पंचरक्षिता

स स ग सं [ज] स म ग स म ग गा गा ऽ ग ग ग म स
नि ध ध नि स ग म ग ग स नि ध ध नी नि स स नि ध
ध नी धा नी स स सा ॥ (इति) **त्रवणोद्भवा-रूपकम्**
॥ १३९ ॥

१८. ताना

गान्धार-मध्यमक-षड्ज-निषाद-रम्या–
ऽपन्यास-धैवतवती[2] करुणाश्रया च ।
अंश-ग्रह-स्फुरित-षड्ज-निषाद-मन्द्रा[3]
ताना भवेदृषभ-पञ्चम-वर्जिता च ॥१४०॥

तथा च **कश्यपः**,

"करुणे रसे च ताना धापन्यासेन भूषिता ध्वनिभिः ।
प्रकारि (?) [प] प-रि-हीना स-नि-गमकैः पसला (?) सदा
भवति" ॥१४१॥

सा सा सा स स स ध सा नी ध सां नि धा सा धा म ध स
स गा गा स नी नी स नि ध ध स स गा ग नी स स सा
म ध म ध म सा स नी स नि ध ध म म सा गा स स स
नी म म नि ध सा मा [च] । स गा ग [ती] नी सा सा ॥
इति **आलापकः** ॥

स स - - स स म ध नि स स [ज] सं स ग स नि ध नि
नि ध नि स ध नि ध नि ग मा ध नि ध नि नि ध नि नि

---

[1] क्रमाद्य [2] धती [3] सांद्र

स म स स ग स नि ध स स ध नि ध म म नि ध म ग म धा नि नि धा नि नि धा सा सा ध म ध ध ध ध नि ध स म स म स स ग स ध स स मा धा स स स ॥ (इति ताना-रूपकम्) ॥ १४२ ॥

१९. कोलाहला

चलन्मध्यम-रावा (च) षाडवा गमकान्विता ।
पञ्चमेन परित्यक्ता [1]भाषा [2]कोलाहला मता ॥१४३॥

[×तथा च कश्यपः]

सा सा सा म म स स री गा मा मा सा म री री सा री रि सा री धा मा म ग रि ध म ध म ग म म म नि ध स

× कश्यप का श्लोक लुप्त है ।

१४३. i. टक्क ग्रामराग की १६ भाषाओं में कोलाहली **बृ. दे.** में निम्नप्रकार से वर्णित है :—

" षड्जाद्यन्त—समायुक्ता पञ्चमेन विवर्जिता ।
विनिहिता सप्तमेन षड्जे मध्यमसङ्गता ॥" इत्यादी (पृ. ११२) ।

ii. सं. र. में टक्क-भाषा कोलाहला दी है, (II, पृ. १०७, श्लोक १४३—१४४) तथा ' अधुनाप्रसिद्ध ' तेरह रागाङ्गों में कोलाहल राग अंतर्भूत है । (पृ. १७, श्लोक १०) टक्काङ्ग कोलाहल का वर्णन शार्ङ्गदेव ने आधे श्लोक में (II, पृ. ८०, श्लोक ९३) किया है । टक्क—भाषा कोलाहला **सं. र.** II पृ. १०७ पर वर्णित है, वर्णन मतंगोक्त के समान ही है । कोलाहला का भाषाङ्ग--राग रामकृति, जिसका पर्याय बहुली है, कोलाहला के आगे वर्णित है, एवं इन दोनों में कारण—कार्यतः बहुत सी समानता है, ऐसा स्पष्टीकरण शार्ङ्गदेव ने **सं. र.** प्रकीर्णकाध्याय के रागकाकु प्रकरण के श्लोक १३५ में पृ. १७७ पर दिया है ।

iii. कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत राग—वर्णन के श्लोकों में कोलाहला भाषाराग चर्चित नहीं है । ' अधुनाप्रसिद्ध ' रागाङ्ग—रागों का वर्णन कल्लिनाथ ने दिया ही नहीं है ।

[1] सा सा [2] कालो

ध स ध स ग रि म ध गा म ग रि सा सा स स स रि ग स रि सा री गा मा मा मा म गा री स रि री रि म री रि ध स म रि ग रि ध म ध म ग म मा मा मा नि ध स ध स ध स ध स ग रि म ध ग म ग रि स ग मा मा ॥ इति आलापकः ॥

रि ग स ध स रि ग ध म म म ग म प नि स नि ध स रि गरि ग स ध ध ध स ध सं [ज] सं स म ग रि म म ध नि ध म ग रि स नि ध स रि म ग रि स नि ध स रि म ग रि स स रि ग म ध म रि ग म स नि ध नि ध स रि स ग ग म प रि ग स स ॥ (इति **कोलाहला-रूपकम्**) ॥ १४४ ॥

२०. वेगरञ्जिका

पञ्चमं धैवतं मुक्त्वा[1] स्वैरन्यैश्च[2] पञ्चभिः ।
[3]निषाद-रम्या विज्ञेया (भाषा च) वेगरञ्जिका ॥१४५॥

तथा च **कश्यपः**,

"स-रि-ग-म-नि- रैवैश्चित्रैर्मधुर-रवा[4] वेगरञ्जिका रुचिरा[5] ।
वेसर-निषाद-रुचिरा प-ध-हीना भवति गीतविन्महिता" ॥१४६॥

(१४५–४६) i. मतंग ने टक्क–भाषा वेरञ्जिका को 'अल्पपञ्चमा' कहा है (पृ. १०८)।

ii. **कल्लिनाथ** ने नाम 'वेरञ्जिका' देकर मतंग का अनुवाद किया है (पृष्ठ १३४)। भाषाङ्ग 'वेरञ्जी' अलग से दिया है (पृ. १४६)।

iii. **शांर्गदेव** ने 'वेगरञ्जी' में **नान्यदेव** का अनुवाद किया है (पृ. ९७)। भाषा का भाषाङ्ग हुआ, ऐसा **कुम्भ** का तर्क है (पृ. ४३०)।

---

1 मुत्तचा 2 त्यैष्व 3 ति 4 रन्धै 5 श्रतरा

स स स सा नी सा री गा नि गा रि गा स नी स री ग ग ध ग
स स नी स री ग ग ध ग स स नी स री ग ग ध ग स स
स नि नि स रि नि स रि [ति] स म म ग री रि सनि सनि
सरी मानी मामा गा री। रीस निसा नी सारी मा ध ग ग
सस नी सा स स ॥ **इत्यालापकः** ॥

सस गग रिस सनि निसस निसस नि म म [ज] ध स रि
गारिम गरिग ग ग ग रि स म ग रि स म ग रि स ग ग
नि स निनिनिनि सं [ज] स स रि ग [प] रि म म रि ग
रि स रि म स रि ग रि नि स म ग रि स नि नि ग ग स स ॥
(इति वेगरञ्जिका-रूपकम्) ॥१४७॥

२१. बाङ्गाली

जिता च (?) मध्यमर्षभक-स्वर-बहु तु स्वकैश्च (?) [1]दीर्घा।
बाङ्गालिका सकल-लोक-मनोहरा [2]स्यात् ॥१४८॥

तथा च **कश्यपः**,

"त्रवणा (च) पूर्वमुक्ता बाङ्गाली पूर्व-लक्षणा ध-रि-दीर्घा ॥
[3]गापन्यास-विचित्रा [4]स्वदेश-गण-लक्षिता भवत्यनवरतम्" ॥१४९॥

(१४८–१४९) i. **मतंग** ने मालवकैशिक की भाषा-सूची में केवल **माङ्गाली** का उल्लेख किया है (पृ. १०६)। तथा आगे उसका वर्णन निम्नानुसार दिया है :—

"मांशा, मध्यमोज्ज्वला, म-रि-संवादा, संपूर्णा" इ० (पृ. ११५)

1 दीर्घः 2 स्पते 3 पंगापत्यास्त्र 4 स्वादश

ध ध ध ध धा नि ग ध ग ग ग ग स म म म म प म ध
म म ग स स स रि ग मा प म ग रि स नि रि ग रि स
नि सा सा [वृ] ध नि । ध ध मा ध ध ध नि ग नी ध नि
ग ग ग स नि ध नि रि ग ध ध म ध रि ग स नि । ग
ग ग नि । स नि म ध ध नि ग ग ग ॥ इति **आलापकः** ॥

स [व] स ग म म ध ध ध स म ग ग सं [जय] स ध

---

ii. **शाङ्र्गदेव** ने मालवकैशिक की भाषा–सूची में बाङ्गाली तथा माङ्गाली दो भाषायें दी हैं (पृ. १२) । परन्तु इनका वर्णन नहीं दिया है ।

iii. **कल्लिनाथ** ने मालवकैशिक की दो भाषायें बाङ्गाली तथा माङ्गाली का वर्णन दिया है (पृ. १३८) । उसका बाङ्गाली का वर्णन अधिकांश मतंगोक्त माङ्गाली के वर्णन के समान है :—

" सान्ता मांश–ग्रहा पूर्णा बाङ्गाली मध्यमोज्ज्वला ।
री-म-संवादिनी भाषा भवेन्मालवकैशिके " ॥

iv. **मतंग** ने माङ्गाली चार प्रकार की दी है :—

(१) मालवकैशिक की भाषा (पृ. १०६, ११५)
(२) पञ्चम की भाषा (१०७, १२२)
(३) भिन्नषड्ज की भाषा (पृ. १०७, १२६–१२७)
(४) बोट्ट की भाषा (पृ. १०७, १३०)

भिन्नषड्ज की भाषा के वर्णन–श्लोक में ' वङ्काली ' नाम मुद्रित है । **शाङ्र्गदेव** ने इसी भाषा का नाम बाङ्गाली देकर वर्णन किया है (पृ. ९६–९७), जो **मतंग** के वर्णन से भिन्न है ।

v. **कल्लिनाथ** ने भिन्नषड्ज की भाषा में बाङ्गाली अथवा माङ्गाली का निर्देश नहीं किया है ।

vi. **नान्यदेव** ने अन्य दो बाङ्गालिओं का वर्णन आगे किया है, परन्तु उसने माङ्गाली नाम कहीं भी प्रयुक्त नहीं किया है ।

vii. वङ्गाल नामक राग उपरोक्त भाषा–रागों से भिन्न है । इस ग्रन्थ में उसका क्रमांक ३८ वाँ है ।

[व] नि स नि स म म ध ध धं नि नि ग ध ग ग ग ग सं म
म म प म ध म ग ग म म रि रि म रि रि ग म सं मं ग
म सं [ज] स म नि म स नि स स नि स ग म स नि ध ध
ध नि स नि स मं मं ध स ध ध स नि नि स ध ध ध ॥
(इति) बाङ्गाली-रूपकम् ॥१५०॥

२२. श्रीकण्ठी

अपन्यस्तर्षभा धांशे[1]-ग्रहा रि-[व] बहुला तथा ।
श्रीकण्ठी[2] पञ्चमत्यक्ता[3] तार-ध्वनिरुदीरिता ॥१५१॥

तथा च **कश्यपः**,
"आढ्यर्षभा[4] तु धैवतांशा[5] पञ्चम-रहिता तार-ग-युता[6] ।
[7]ऋषभापन्यास-युता श्रीकण्ठी [8]ऋषभ-बहुला भवत्यनवरतम्"
॥१५२॥

ध ध धा नि रि नि रि रि रि म ग म री मा धा मा धा री
नि ध ध रि नि स रि गा मा गा री मा री नी धा म धा ध
धा धा नी धा नी री मा म म ग री मा धा मा मा ध नि नी

(१५१–१५२) **मतंग** ने श्रीकण्ठी को भिन्नषड्ज की भाषाओं में (पृ. १०७) गिनाई है तथा उसका लक्षण पृ. १२६ पर दिया है, जो **नान्यदेव–कश्यप**–कृत वर्णन के समान ही है। **कल्लिनाथोक्त** भाषावर्णन में श्रीकण्ठी दो बार आई है, एक भिन्नषड्ज की भाषा है (II पृ. १४१), जो मतंग तथा नान्यदेव के वर्णन के समान है। अन्य श्रीकण्ठी वेसरषाडव की विभाषा है (II पृ. १४२), जिसका वर्णित स्वरूप भिन्न है।

1 शा 2 ण्ठा 3 आद्यं 4 पञ्चमीत्युक्त्वा 5 धैवतायां 6 तारतायुता 7 रुषभा
8 रुषभा पसल

स नि नि सनि गनि गिरि मरि नि ध ध ध ध म ध ध ध
रि धा नी री ध नि री मा म ग मा स ध धनि नि स नि
सनि ग नी गरी मा नि नी धा धा ध [व] मा धा धा धा
॥ इति **आलापकः** ॥

ध ध स ग म ग गा गा नि स स नि ध प प ग मा स म ध
म ध नि नी नि स ध नि नि ध प नि ध नि स नि प प मा।
म ग सा स ग म ध नि ध प म ग मा म ग म ध नि स ग
म ध म ग स ग स नि ध नी नि स ग रि रि नि म ग म
ग ग स ध नि नि प प म म धा स स म ध म ग म स म
म ध नि नि म म ध स ध ध ध ध ॥ इति **श्रीकण्ठी-रूपकम्**
॥ १५३ ॥

२३. ललिता

गान्धारर्षभ-निस्वनेन बहुलांशो[1] [ग्रहै]-ग्रहो[2] धैवतो[3]
मध्ये मध्यम(क)ध्वनिर्मृदु[4](तरा) मन्द्रापि तारापि च ।
सम्पूर्णां स्फुरिताभिधेन गमकेनालङ्कृतां[5] पञ्चम-
[6]स्वल्पान्तां ललितां वदन्ति नियतं गान्धर्व-विद्या-विदः ॥१५४॥

तथा च **कश्यपः**,

" सप्त-स्वरानुललिता गमक-[7]स्वर-पेशला तद्विचित्रैः ।
[8]स्फुरणैर्भवति समेता [9]मन्द्रैस्तारैश्च गीति-विन्यासैः " ॥१५५॥

(१५४-१५५) **i. मतंग** ने टक्क-भाषा ललिता को सूची में दी है (पृ० १०६) तथा आगे उसका वर्णन भी दिया है (पृ० ११२)। वर्णनात्मक श्लोक अशुद्ध है, ऋषभ वर्ज तथा 'औडुविता' कहा है ।

[1] शो [2] हौ [3] तं [4] द्व [5] कृता [6] स्वल्पतां [7] सर पेसला [8] स्यु [9] मन्दै

धा धा धा सनि धा धा ध ध नि री गा सनी स नीनी ध
धा धा ध निरिगा धगम । गरि । मममगरि रि रि मं रि म
ध ध प ध नि धा पा मगरि । गरिगमग रि म म म ग म
म रि ग म म रि ध नि रिग स नि ध म ध धा मा धा धा
धा धा नी नी धा नी नी धा धा ॥ इति **आलापकः** ॥

धा धा नि ध स ध नि स ध नि धा ध ध नि नि ग रि ग
नि म स स नधम ध मम धमध नि सनि ध ध स गा रि ग
स नि ध नि ध प मप म गमा धा निनि मंधधा मगरिस नि
ध म म ग म ध ध ग नि [व] धा ॥ इति **ललिता-रूपकम्**
॥ १५६ ॥

२४. त्रवणा

धांशा षड्जेन बहुला (स्फु) रि [1]तैर्गमकैर्युता[2] ।
प-रि-हीना भिन्नषड्जे विभाषा त्रवणा मता ॥१५७॥

---

ii. **शार्ङ्गदेव** ने एक टक्क-भाषा ललिता तथा द्वितीय भिन्नषड्ज-भाषा ललिता दी है (पृ० ११, १२), एवं दोनों का बर्णन पृथक् किया है (पृ० १२०, १२१)। टक्क-भाषा ललिता में ऋषभ तथा पञ्चम वर्ज्य कहे हैं।

iii. **कल्लिनाथ** के भाषादि-राग-वर्णन-प्रकरण में ललिता का नाम-निर्देश नहीं है।

iv. **नान्यदेवोक्त** वर्णन के अनुसार ललिता के संपूर्ण होने पर भी उसमें पञ्चम अल्प है।

v. **कश्यप** के श्लोक के अनुसार ललिता सप्त-स्वरा है।

(१५७) i. त्रवणा अथवा त्रपणा इस के पूर्व (क्र० १६) वर्णित है, वह टक्क–भाषा होकर रि–प–वर्ज है।

---

1 तोद्र 2 क्ता

तथा च **कश्यपः**,

[" त्रवणा तु पूर्वमुक्ता बाङ्गाली पूर्व-लक्षणा ध-रि -ग-दीर्घा ।
गापन्यास[1]-विचित्रा स्वदेश-लक्षिता भवत्यनवरतम् " ॥१५८॥]

ध ध ध नि स नीससनी सासा सनि धध सासा सनिधनि निधनिनिधा नि धा सासनि धाधा मगम नि निधम म गाग सगासनि । धनिनिध निनिनि धनिध गग सा स मा नीनि ध नी सनिधध [व] म धाधा सनिधा गसा ध ध धा ॥ इति **आलापकः** ॥

धनिधगमा सनीनी निनि सनिध निनि धसमनी धधध सगममा गग ममम नीनि गग सनिध धनि धा [व] नि सनिनिध

ii. **मतंग** ने त्रवणा को केवल टक्क की भाषा बतलाई है। भिन्नषड्ज की भाषाओं में उसने त्रवणा का निर्देश नहीं किया है।

iii. **शाङ्गदेव** की सूची में त्रवणा टक्कभाषाओं तथा भिन्न–षड्ज की भाषाओं में अन्तर्भूत है। उपरान्त, पञ्चम की भाषा त्रावणी त्रवणा से भिन्न है।

iv. **कल्लिनाथ** ने टक्क की भाषा त्रवणा का वर्णन किया है। उसने अन्य त्रवणा को नहीं दिया है। उपरान्त, उसके द्वारा दी गई भाषाओं में त्रावणी निर्दिष्ट नहीं है।

v. भिन्नषड्ज–भाषा त्रावणी का वर्णन **शाङ्गदेव** ने किया है, वह नान्यदेवोक्त वर्णन के समान ही है :—

" त्रवणा भिन्नषड्जस्य भाषा ध-नि-स-भूयसी ॥१०६॥
ध-नि-सैर्वलिता धांश-ग्रह-न्यासा रि-पोज्झिता ।
ग-म-द्विगुणिता मन्द्र–धैवता विजये मता " ॥१०७॥

(१५८) **कश्यप** का यह उद्धृत श्लोक बाङ्गाली के विषय में इसके पूर्व आया है (श्लो० १४९), अर्थात् इस स्थान पर पुनरुक्त तथा असम्बद्ध है।

[1] से

सगसनिध निधग समस निधनि गमध निधासनि धध सधनि ग ग स नि ध स निधा ॥ इति त्रवणा-रूपकम् ॥१५९॥

इति भिन्नषड्जस्य भाषा-सप्तकमत्र (समाप्तम्) ॥

२९. गौडः

न्यासांश-षड्जः[1] पञ्चम-हीनस्तु (ऋ)षभ-ग्रहणः[2] ।
स्फुरिताख्य-गमक-निबिडो गौडः स्याट्टक्कराग-रव-सदृशः॥१६०॥

तथा च बृहद्देश्याम्—

"टक्करागेण सदृशः पञ्चमेन विवर्जितः ।
षड्जांश-न्यास-सम्पन्नो गौडः स्याद्[3]ऋषभ-ग्रहः" ॥१६१॥

(१५९) i. समाप्ति–वाक्य के अनुसार यहां भिन्नषड्ज की सात भाषाएँ संपूर्ण होती हैं। परन्तु इस ग्रंथ में किसी भी राग की भाषाएँ क्रमशः तथा संपूर्ण उपलब्ध नहीं होती हैं।

ii. भिन्नषड्ज की भाषाएँ **मतंग** ने ९ दी हैं। **शाङ्र्गदेव** ने १७ भाषा एवं ४ विभाषाएँ कही हैं। **कल्लिनाथ** ने भाषाएँ तथा विभाषाएँ १३ तथा ४ दी हैं (पृ. १४०-१४१)।

(१६०–१६१) i. गौड–राग टक्क ग्रामराग का अङ्ग है।

ii. **शाङ्र्गदेव** ने 'अधुना–प्रसिद्ध' रागाङ्ग–रागों में गौड का निर्देश सूची में किया है (II, पृ० १७) एवं आगे उसका वर्णन निम्नानुसार किया है :—

"गौडस्तदङ्गं नि–न्यास–ग्रहांशः पञ्चमोज्झितः ॥९२॥

iii. **नान्यदेव** ने षड्ज को अंश–न्यास तथा ऋषभ को ग्रह कहा है। **कश्यप** ने न्यासांश स्वर षड्ज को बतलाया है। दोनों ने पञ्चम वर्ज्य कहा है।

1 षड्ज 2 णम् 3 स्यादृषभक पहणः

रीरी सस मपध ससस समनि धध निगसरीरीम गमप सस रीमम। सरीगसध सनिनी गम मनीध ममरीरी रिगसस धध मसा रिमानी सस म गग री मम संस धध सम धधम स स रि समरि सासा रीरीरी संसंसं रिरि गमरिसा मम ससस गसधस रि ग ध ध म धा धा नी धा मा सा॥ इति **आलापकः**॥

री ससस म स—ममम ध म [क] मग स स म धनि स संधंनिं धं धं स ध स रि मस म निस म संगंगं म संसंधं ध मंमं स ग म धं ममा धा ध धमगस संसंरिरि ग सस रीरीरीरि गरि समग ममम धध निनीस निगम नीसरी रिग सासा सा॥ इति **गौड–रूपकम्**॥१६२॥

२६. गौडकैशिकमध्यमः

लघु-पञ्चमक-निषादौ[1] पूर्णः षड्जांश-मध्यम-न्यासः।
गौडादिः किल कैशिकमध्यमः स्यात्षड्जमध्यमा-जातः[2]॥१६३॥

तथा (च) **कश्यपः**,

"षड्जांशो मध्यमन्यासः षड्जमध्यमयोद्भृतः।
संपूर्णस्वरकः प्रोक्तो[3] गौडकैशिकमध्यमः" ॥१६४॥

मतङ्गो[4]ऽप्याह,

"षड्जांशो मध्यमन्यासः स्वल्प-सप्तम-पञ्चमः।
षड्जमध्या-समुद्भूतो गौडकैशिकमध्यमः" ॥१६५॥

---

(१६५) **बृ. दे.** में इस श्लोक का पाठ थोड़ा भिन्न है। 'परिपूर्णस्वरः' कहा है (पृ० ९३)।

---

1 द 2 मध्यमजातो 3 प्रोक्ता 4 मंतगो

सा सा स स स स [क्त] सं स री म म प ध स ध स सा सा
स स स ध ध म म ग म गा ग म ध म ध म प सा म ध
स ध स ध स सं [ज] स ध नि ध म म ध ध नि नी ध स
स ध नि रि ग म म ध म री स स ग स स स ध म प प
ध नि ध म म ॥ इति **आलापकः** ॥

मसं [ज] स ध स सा धा मा मा ध म ध म म ग नि ध ध
ध [व] ध रि ध ध नि स री नी ध ध स स सा स स ध ध
सा ध स री म री री सा स स ध स स [ज] स स म म मा।
मा ध ध नि सा सा स ग धा ध ध म प प ध मा गा ग ग
ग धा धा म ध री री री रि स धा ध स स स ध म ध स
मा ॥ इति **गौडकैशिकमध्यमस्य रूपकम्** ॥१६६॥

२७. गौडपञ्चमः

[1]बीभत्सश्च भयानको यदि रसः [2]स्यादंशको धैवतः,
स्वल्पौ[3] सप्तम-पञ्चमौ यदि पुन [4]श्चान्त-स्थितो मध्यमः ।
गान्धारो यदि जायते[5] च बलवान् [6]यः षड्जमध्याभिधा-
[7]धैवत्योरिह गौडपञ्चम इति ख्यातः स रागो भवेत् ॥१६७॥

तथा च **कश्यपः**,

"गौडपञ्चम-निष्पत्तिर्धैवती[8]- षड्जमध्य[म]योः ।
धैवतांशो मध्यमान्तो[9] हीन-पञ्चम-सप्तमः" ॥१६८॥

---

1 बीभत्सोच 2 स्यंद 3 ल्पो 4 श्या 5 जायतो 6 तत् 7 वैविड्यो
8 द्वैवती 9 शो

सा सा स स स स [क्त] सं स री म म प ध स ध स सा सा
स स स ध ध म म ग म गा ग म धम धम प सा म ध
स ध स ध स सं [ज] स ध नि ध म म धध नि नी ध स
स ध नि रि ग म म ध म री स स ग स स स ध म प प
ध नि ध म म ॥ इति **आलापकः** ॥

मसं [ज] स ध स सा धा मा मा ध म ध म म ग नि ध ध
ध [व] ध रि ध ध नि स री नी ध ध स स सा स स ध ध
सा ध स री म री री सा स स ध स स [ज] स स म म मा।
मा ध ध नि सा सा स ग धा ध ध म प प ध मा गा ग ग
ग धा धा म ध री री री रि स धा ध स स स ध म ध स
मा ॥ इति **गौडकैशिकमध्यमस्य रूपकम्** ॥१६६॥

२७. गौडपञ्चमः

[1]बीभत्सश्च भयानको यदि रसः [2]स्यादंशको धैवतः,
स्वल्पौ[3] सप्तम-पञ्चमौ यदि पुन [4]श्चान्त-स्थितो मध्यमः।
गान्धारो यदि जायते[5] च बलवान् [6]यः षड्जमध्याभिधा—
[7]धैवत्योरिह गौडपञ्चम इति ख्यातः स रागो भवेत् ॥१६७॥

तथा च **कश्यपः**,

"गौडपञ्चम-निष्पत्तिर्धैवती[8]- षड्जमध्य[म]योः।
धैवतांशो मध्यमान्तो[9] हीन-पञ्चम-सप्तमः" ॥१६८॥

---

1 बीभत्सोच 2 स्यंद 3 ल्पो 4 श्या 5 जायतो 6 तत् 7 वैविडयो
8 द्वैवती 9 शो

मतङ्गोऽप्याह,

"धैवती-षड्जमध्याभूः[1] स्वल्प-पञ्चम-सप्तमः ।
धैवतांशो मध्यमान्तो विज्ञेयो गौडपञ्चमः" ॥१६९॥

धा धा म ध धा धा म ध ध नि मा मा नि ध निसा सरिग धा धा सामा गामा मा ध मा धा प म धा ध म म धा ध मा म ध म स सा म ध गा मा म ध ध । स प रि ग म म ध नि म ध प ध ध ध स स नि ध ध नि नि ध नि म ग री ग म धा धा मा मा मा ॥ इति **आलापकः** ॥

धा ध म ध धा [व] नि ध नि ध ध स रि ग प [ति] धा धा नि ग मा मा ध स म स स ध म म म नि ध प रि ध ध स म स ध म ध धा ध नि धा म म म धा ध स ध नि धा ध ध ध स ध नी ध स - - ग ध नि ध म ध रि स म प [क]। ध ध ध नि सं स ध नि ग म मा मा ॥ इति **गौडपञ्चम-रूपकम्** ॥ १७० ॥

२८. रेवगुप्तः

[2]वीर-रौद्राद्भुतरसे ताने जीवन-संज्ञके ।
[3]अभिरुद्गतायां मूर्छनायां[4] मध्यमा-श्रुतौ (?) ॥१७१॥

आर्षभ्यामृषभे चांशन्यासयोः[5] षड्जवर्जितः (?) ।
जित-संग्राम-गुप्तेन रेवगुप्तः प्रकीर्तितः ॥१७२॥

---

1 ध्योनुः 2 वीराराद्वा 3 अभिषड्जतायां 4 ग्रायां 5 अंश

तथा च **कश्यपः**,

"आर्षभी-जाति-संभूतं ऋषभांशस्तदन्तकः[2] ।

संपूर्णो[1] रेवगुप्तस्तु विद्वद्भिः षड्जषाडवः (?)" ॥१७३॥

री री री ग मा म ग रि रिं रिं रिं ग नि प प नि नि री [पंचम] प प री रि [षभ] मम [मध्यम] ग प ग म म गग ग रि रि ग म म म री री री ग ग ध री नि नि प प प प म नि री म गा ग री ॥ इति **आलापकः** ॥

री री री ग म स नि पा पा ध ध ध म म धरी धरी री री री म ग री ध ध ग म री ग प नि म धा म म ग रि ग रि रि ध ग मा मा मा सा नी नी धप धम पग ग री रिग गनि ग म मा सा सरी रि ग गा नी नी म री री री ध धा री ग म ग ग नी । नि नि ग म ग नि धा धा म ध रि रि ॥ इति **रेवगुप्त–रूपकम्** ॥१७४॥

(१७१–१७३) i. **मतंग** ने वेसरगीति के ग्रामरागों के वर्णन में गान्धारपञ्चम के पश्चात् पञ्चमषाडव, रेवगुप्त तथा टक्कसैन्धव रागों का वर्णन किया है। परन्तु ग्रामरागों की सूची में उसने इन रागों का अन्तर्भाव नहीं किया है (पृ. ८४)।

ii. **शाङ्‌र्गदेव** ने उपरोक्त तीनों रागों का अन्तर्भाव उपराग–वर्ग में किया है (II, पृ. ९)।

iii. 'याष्टिक उवाच' कहकर **मतंग** ने भाषा–जनक रागों की संख्या १५ बतलायी है। इस सूची में टक्क से पञ्चमषाडव तक के राग दिये है, अर्थात् इसमें रेवगुप्त अन्तर्भूत नहीं है।

iv. परंतु **मतंग** ने विभिन्न ग्रामरागों की भाषाओं की नाम–सूची दी है, उसके अन्त में रेवगुप्त–राग तथा उसकी भाषा शका को समाविष्ट किया है (पृ. १०७)। इसी का अनुसरण शाङ्‌र्गदेव ने भाषा–राग सूची में किया है (पृ. १२)।

---

[1] तो [2] रु

२९. शाक

षाड्जी-धैवतिकाभ्यां जातः षड्जांश-षड्जकन्यासः ।
पूर्णः पञ्च(म) काल्पः सवीर-हास्ये शकाख्यः स्यात् ॥१७५॥

तथा च **कश्यपः**,

"षाड्जी (च) धैवती जातिस्ताभ्यां जातः शकः स्मृतः ।
षड्जांश-न्यासमापन्नो वीर-हास्य-प्रयोगवान्" ॥१७६॥

सा स स नि नि ध नि स स प प नि स धा धा ध नि [व] रि रि म मा ध ध ग म स ध नि स ग री ग म स स मा मा । पा पा म प प म प ध प ध ध ग स म स म स ध स री स प स सा ग मा गा नी नि ग म नि ग नि । स नि ग स री रि प ध प म स म म स म नि स स स ॥ इति **आलापकः** ॥

रि स रि स स ग स मा मा सं [ज] स री ग री ध ध ध प म म म स गा स मं सं निं रिं री ध ध म नि म म स स स री री रि स प प पा मा प नी । री म ग ध ध नि ध प म स म नि ध ध ध नी नी नी ग ग रि ग स म म सा मा ध नि पा नी ध ध म म ग स ग सा सा ॥ इति **शक-रूपकम्** ॥
॥१७७॥

३०. भम्माणपञ्चमः

षड्ज-न्यासः पञ्चमांशो (?) धैवतांशोद्भवः (?) पुनः ।
गान्धार-सप्तमाल्पश्च षड्जमध्या-समुद्भवः ॥१७८॥

---

1 षड्ज 2 पन्नगलीस्ये 3 सकाख्ये 4 ततः 5 न्न 6 गेरलास्या 7 सप्तमांशश्च

षड्जांशो मध्यम-न्यासः शृङ्गारिक-रसाश्रयः ।
मिथिला-खण्डे (शे) नोक्तः पुनर्भम्माणपञ्चमः ॥१७९॥

तथा च **कश्यपः**,
"भम्माणपञ्चमः पान्तः स्वल्प-द्विश्रुतिक-स्वरः" ॥१८०॥

मतङ्गोऽप्याह,
"पूर्णश्चे पान्तो मान्तो[2] वा सांशो[3] भम्माणपञ्चमः" ॥१८१॥

स स ध मा ध पा ध ध प पं मं गं री री ध प ध म म ग री मा पा धा सा स री स री स री रि ग रि म नि प नि ध स स म ध [व] प ग रि ध ग मा प प म म स सा प प पा ॥ इति **आलापकः** ॥

स स री म स गा म प प ध म नि रि ध स स स धा धा धा नी नी नी री री ग म म स स स री गा रि ग म म नि प नि ध ध ध ध म मा म नि नि । नी नि ग ग मा नी स स री ध ध म म प प नी स प ध सं ध ग म म ॥ इति **भम्माणपञ्चम-रूपकम्** ॥१८२॥

(१८०–१८१) i. बृ० दे० में इस राग के वर्णन का श्लोक निम्नानुसार है :—
"षड्जांशो मध्यम-न्यासः स्वल्प-द्विश्रुतिक-स्वरः ।
शुद्धमध्यमिका-जातेर्भवेद् भम्माणपञ्चमः" ॥३५५॥ (पृ. १००)

ii. **शाङ्गदेवोक्त** विशेष लक्षण—"गाल्पः, म-न्यासः, काकली-युतः" हैं (पृ. ५७, श्लो. ६०–६१)।

---

1 स्व 2 धांनो 3 सान्तो

३१. रूपसाधारितः

- - - -म-[प-] न्यासस्तु[1] धैवत-मं[2]ः (?) ।
षड्जमध्या-निषादिन्योः (जा) तो[3]ऽथ बलवन्नि-गं[4]ः ॥१८३॥

शृङ्गाराद्भुत-सम्बद्धो[5] निषादान्तः कदाचन ।
जातकः (?) कंदपरेत्यण (?) रू[6]पसाधारितः स्मृतः ॥१८४॥

तथा च **कश्यपः**,

"षड्जमध्या-निषादिन्योः रूपसाधारितं विदुः ।
षड्जांशो मध्यम-न्यासो निषादान्तः क्वचिद्भवेत्" ॥१८५॥

स स री म धा धा स सा नि ध प ध ध स म म म नि ध
स म ग म म स री म ध ध स ग स नि ध प स रि मं ग
मां मां नि धं पं मां ग मं मं स ग ध नि प म री रि ग ग
म ध [त] स स री ग स धा धा मा मा स नि सं [ज] स
सं रि गा गा गा मा ॥ इति **आलापकः** ॥

स स री म धा धा नि ध री ध स ध म ध म म स सा गा
गा पा पा ध ध ध ध नि री री गं ध स स प म म स धा
धा नी नी ग म ग ग नि स नि स नि ध प म ध रि ध नी
नी नी नी ॥ (इति) **रूपसाधारितस्य रूपकम्** ॥१८६॥

३२. मध्यमषाडवः

[7]वीरे रौद्रेऽद्भुत-रस ऋषभांश-परिग्रहात् ।
पञ्चम-न्यास-संयोगादपन्यासस्तु धैवतः ॥
स्वल्प-पञ्चमकः प्रोक्तः रागो मध्यमषाडवः ॥१८७॥

---

1 सु 2 तं 3 तं 4 गं 5 द्धे 6 भग 7 वीररौद्राद्भुतरसे

रि रि रि प ध पा पा प स प रि स म म म म मा गा गा मा।
पा पा मा पा स गा मा पा मा - - - री री म नि रि ग स स
ग स नि रि स नि रि स ग मा मा मा गा। प म ग ग रि
रि धा धा ग रि मा मा मा धा पा प। नि स नि रि स नि
नि स स स स म म प प प॥ इति **आलापकः**॥

रि रि प ध स ग रि नि ध स रि ध म प नि स स रि ध
म ध म प नि स स रि रि स स म म म म गा री। री प
स स प स [ल] स ग [ल] प प ध ध रि स स म प प ध
प ग स रि री रि ग म म प ध नि स ग नि प ध नि प म
स स सा नी धा गा पा गा म नी नी सा सा प पा। इति
मध्यमषाडव-रूपकम् ॥१८८॥

३३. मध्यमकैशिकः

धैवती-षड्जमध्या-[मा] ख्या-जाति-द्वय-समुद्भवः।
मध्यमन्यासवानंशः षड्जोऽल्प-द्विश्रुति-स्वरः ॥१८९॥

ऋषभो धैवतो वापि चेदपन्यास-संश्रयः।
तदा सञ्जायते रागो नाम्ना मध्यमकैशिकः ॥१९०॥

तथा च **कश्यपः**,

"षड्जांशो मध्यम-न्यासो धैवती-षड्जमध्ययोः।
मध्यमकैशिको ज्ञेयः स्वल्प-द्विश्रुतिकः स्वरः" ॥१९१॥

सा स री म सं सा री मा मा धा धा स धा मा स रि ध ग
रि ध मा मा मा म रि ध सा स स ग स ग म स स ध म

---

[1] नस्यः

प ध म री म म ग री ध स स स नि स स नि स रि ध मा मा सा सा री गा गा मा नी धा पा पा धा नी ग म म स ग म ध ध म म ॥ इति **आलापकः** ॥

सा स ध म म रि स ध म ध मा मा ध ध ध ध री ध ध ध ध स [धैवत] ध ध ग ग स स स स स ध ग ध [स्र] प ध प ध म म म ग री ग मा मा स [ज] प ध मा मा म ध धा [धैवत] री री ध री धा स [ज] सं [ज] स ध स पा सा मा गा गा म ग ॥ इति **मध्यमकैशिक-रूपकम्** ॥१९२॥

३४. नट्टः

पञ्चम-गान्धारावधिस्तारो मन्द्रश्च शेष-सम-नादः ।
न्यासांश-ग्रह-धैवत-युक्तो नट्टश्च[1] धैवती-जातः ॥१९३॥

तथा च **बृहद्देश्याम्ः**,

" सम्पूर्णो धैवत-न्यास-ग्रहांशः सदृशः स्वरः ।
नट्टस्तारश्च[2] मन्द्रश्च स्यादागान्धार-पञ्चमः[3] " ॥१९४॥

(१९३–१९४) i. **शाङ्गर्देव ने**—" लक्ष्माधुना-प्रसिद्धानां सहेतूनां ब्रुवेऽधुना " ॥२।२।६७॥ इस प्रकार की सूचना मध्यमग्राम-राग के वर्णन के प्रारंभ में देकर स्व-काल-प्रचलित अर्थात् ' देशी ' रागों का उद्भव तथा लक्षण बतलाये हैं । इन्हीं में ग्रामराग हिंदोल से राग नट्टा का उद्भव बतलाया है :—

" तज्जा सम-स्वरा नट्टा तार-गन्धार-पञ्चमा ।
सन्यासांश-ग्रहा मन्द्र-निषादा तार-धैवता " ॥१२५॥

इन लक्षणों में से प्रथम पङ्क्ति में कहे हुए लक्षण नान्यदेवोक्त नट्ट–राग के लक्षणों के समान प्रतीत होते हैं । शेष लक्षण भिन्न हैं । ii शाङ्गर्देव ने छायानट्टा को ' नट्टोपाङ्ग ' कहा है (पृ. १०७, श्लो. १४२) ।

[1] शा [2] नद [3] स्यात् गान्धार

धा धा धा धा ध धा नी गा ध गा गा ग सा मा मा मा मा
मा मा मा म मा धा मा म गा सा स सा री गा मा प म रि ग
स नि री ग री स नि सा सा । स ध री नि धा [व] मा धा
धा [व] धा । गा गा री धा नी गा गा ॥ इति **आलापकः** ॥

धा ध स ग म म धा ध स सा म गा म स [ज] स म धा
ध नि स नि स म म ध म ध धा ध ध नि नि गा ध गा
म म रि रि ग ग स म प प म म । ग ग रि ग रि म म ग
रि म म सं [ज] स स स नि स नि सा सा नि स ग म म नि
धा धा धा नि स म म धा धा ॥ इति **नट्ट-रूपकम्** ॥१९५॥

३८. भैरवः

न्यास-ग्रहांश-स्थित-धैवताख्यो
गान्धार-षड्[1]जावधि-तार[2]-युक्तो ।
मन्द्रश्च पूर्ण-ध्वनि-[3]धैवतीयः ।
[4]शेषाः समा, भैरव एष उक्तः ॥१९६॥

---

ii. **मतंग** ने मुख्यतः ग्रामरागोत्पन्न भाषा-रागों का वर्णन किया है, उनमें नट्ट, भैरव आदि राग समाविष्ट नही हैं। भाषा-रागों के प्रकरण के पश्चात् **मतंग** ने :—

'अतः परं प्रवक्ष्यामि देशी-राग-कदम्बकम् ।'

कहकर 'कच्छेली,' 'माङ्गाली,' 'हम्माणिका' आदि केवल पाँच रागों का वर्णन किया है। बृहद्देशी का यह प्रकरण खण्डित अतएव अपूर्ण है। इस प्रकरण के अन्त में 'भाषा-लक्षणाध्याय' की समाप्ति का वाक्य दिया गया है।

iii. **कुम्भ** ने नट्टनारायण के लक्षण बताये हैं (पृ. ४०९) जो नान्यदेवोक्त लक्षणों के समान हैं।

---

1 षड्जाविधि 2 सार 3 धैं 4 शेष

तथा (च) बृहद्देश्याम्,

"धैवतांश-ग्रहन्यासैः संपूर्णोऽथ स(-म)-स्वरः ।
आगान्धारमथो षड्जं तारो मन्द्रश्च धैवतः" ॥१९७॥

---

iv. कल्लिनाथ ने निरुपदद-रागों में नट्ट का वर्णन किया है :—

"मध्यमोदीच्यवा-जातेर्नट्टस्तारस्थ-षड्जकः ।" इ०, जो उपरोक्त से बहुत ही भिन्न है (II पृ. १२६-१२७) ।

(१९६-१९७) **i.** ग्रामरागों के पश्चात् शकतिलक आदि प्राचीन आठ उपरागों तथा उसके पश्चात् श्रीराग से नट्टनारायण तक प्राचीन बीस रागों को **शार्ङ्गदेव** ने गिनाया है (२।१५-१८) । उपराग और राग इन दोनों के लक्षणों को **कल्लिनाथ** ने निम्न प्रकार से दिया है :—

१. 'जातिभ्यो जातानाम् अपि ग्रामराग-समीप-भावित्वाद् अष्टानाम् उपरागत्वम् ।'

२. 'उपरागेभ्योऽनन्तरं जातिभ्य एव जाताः श्रीरागादयो विंशतिः ।' (II, पृ. ९, १०) ।

ii. इन प्राचीन बीस रागों में भैरव का नाम सम्मिलित है । भिन्नषड्ज से उत्पन्न प्राचीन भैरव राग का लक्षण **संगीत-रत्नाकर** में "धांशो मान्तो रि-प-त्यक्तः प्रार्थनायां समस्वरः ।" (२-८२) इत्यादि दिया गया है । इन लक्षणों से प्रतीत होता है कि भैरव-राग का यह स्वरूप प्राचीन है तथा प्रचलित स्वरूप से सर्वथा भिन्न है ।

iii. इसके पश्चात् **शार्ङ्गदेव** ने अपने समय के प्रचलित ५२ रागों को 'अधुना-प्रसिद्ध' नाम से (२।९-१८) दिया है तथा क्र. १७ मध्यमग्रामराग से प्रारम्भ करके प्रत्येक ग्रामराग से उत्पन्न होनेवाले 'अधुनाप्रसिद्ध' राग ग्रामरागों के साथ-साथ वर्णित हैं, जिनमें मध्यमादि, मालवकैशिक, मालवश्री, तोड़ी, बंगाल, भैरव आदि सम्मिलित हैं ।

iv. सं. रत्नाकर अ. २ में श्लोक ५७ के आगे श्रीराग, बङ्गाल, मध्यमषाडव आदि कुछ रागों का वर्णन उपलब्ध है ।

श्रीराग की टीका में **कल्लिनाथ** ने—'अधुना-प्रसिद्ध-देशी-राग-लक्षणम्' इस प्रकार प्रस्तावना की है और 'देशी' रागों के स्वरों तथा स्वर-सप्तकों में जो परिवर्तन हुआ है, उसकी चर्चा की है । इन रागों में 'श्रीराग' आदि दो चार रागों को प्राचीन २० रागों में शाड्र्गदेव ने गिनाया है, परन्तु कतिपय ग्रामराग तथा

---

1 न्यासे

प्राचीन राग भी परम्परा से 'देशी' संगीत में चालू थे, जैसा कि **शार्ङ्गदेव** ने इस विषय में पहले ही सूचित किया है :—

"प्रसिद्धा ग्रामरागाद्याः केचिद्देशीत्यपीरिताः" ॥२।३॥

ऊपर जिसकी चर्चा हमने की है, वह भैरव प्राचीन बीस रागों में से है। स्व-कालीन भैरव राग का वर्णन "शुद्धभैरव" नाम देकर शार्ङ्गदेव ने 'अधुना-प्रसिद्ध' रागों में निम्नानुसार किया है :—

"धैवतांश-ग्रह-न्यास-संयुतः स्यात्सम-स्वरः।
तार-मन्द्रोऽयमाषड्ज-गान्धारं शुद्धभैरवः" ॥ (२।१६३)

नान्यदेव के श्लोक तथा मतंग के उद्धृत श्लोक में वर्णित लक्षण एवं **शार्ङ्गदेव** के उपरोक्त श्लोक में बताये गये लक्षण, दोनों में अधिकांशतः समानता है, अतः प्रतीत होता है कि **नान्यदेव** द्वारा वर्णित भैरव **शार्ङ्गदेवोक्त** शुद्धभैरव ही है।

v. मुद्रित **बृहद्देशी** में भैरव का नाम अथवा वर्णन उपलब्ध नहीं है।

vi. राणा **कुम्भ** द्वारा वर्णित भैरव (पृ. ४०६) रत्नाकरोक्त शुद्धभैरव प्रतीत होता है।

vii. अधिकतर ग्रामरागों तथा प्राचीन रागों के अंश तथा न्यास भिन्न हैं, परन्तु अधिकतर एक ही स्वर को 'देशी' रागों का न्यास-ग्रहांशादि कहा है। प्राचीन जाति-ग्रामराग-राग तथा देशीराग इन दो वर्गों में यही एक विशिष्ट भिन्नता दिखायी देती है।

viii. सं० र०, अ. २, श्लोक १४० में भैरवी राग वर्णित है, जिसको प्राचीन भैरव का उपाङ्ग कहा है, परन्तु उसमें बताये गये लक्षण देशी शुद्ध भैरव के लक्षणों के समान हैं :—

"धांश-न्यास-ग्रहा तार-मन्द्र-गान्धार-शोभिता।
भैरवी भैरवोपाङ्गं सम-शेष-स्वरा भवेत्" ॥२।१४०॥

शुद्धभैरव का न्यासांश-ग्रह स्वर एक ही है और वह धैवत है, इसी प्रकार भैरवी का न्यासांश स्वर भी धैवत है। न्यास तथा अंश दोनों एक धैवत होने से वह स्वर स्थायी बन जाता है, जिसके आधार से मूल ठाठ में से अन्य ठाठ (mode) पैदा होता है। **शार्ङ्गदेव** ने वीणा-वादन प्रकरण में ठाठ-जनक स्वर के लिए 'न्यास' अथवा 'स्थायी' शब्द का ही अधिकतर प्रयोग किया है।

ix. यदि प्राचीन षड्जग्राम-सप्तक प्रचलित **काफी** के समान मानेंगे तथा षड्जग्राम में अन्तर-गान्धार रखकर धैवत स्थायी से नया ठाठ बनायेंगे, तो प्रचलित भैरवी का ठाठ प्राप्त होगा। अन्यथा धैवत स्थायी करने से पञ्चम-वर्जित द्वि-मध्यम-युक्त 'भैरवी' ठाठ उत्पन्न होगा, जो एक विचित्र स्वरूप का ठाठ होगा।

धा धा धा रि म नि स ग ग मा मा मा मा मा म पा पा प
प धा धा प मा पा पा प मा म मं मा स धा नी नि धा सा
ध मा प मा पा पा मा सा मा री म धा ध प म नी नी धा
प म [व] ध प म ध धा धा धा ॥ इति **आलापकः** ॥

धा धा स नि स नि नि ध नि प ध प म ग म नि ध प प
ध प म म नि ध नि ध नि ध प धा धा रि रि प म नि म
मा मा गा ग मनि ध ध [व] धा धा [मध्यम ऋषभ यंज]
स स नि नि धा ध नि प ध मा ध नि स नि स नि मा म
म ध नि स नि ध प धा धा ॥ (इति) **भैरव–रूपकम्**
॥ १९८ ॥

३६. श्रीरागः

न्यासांश (-क)-ग्रह-पद-स्थित-षड्ज-नादैः[1]
षाड्जीभवश्च[2] लघु-पञ्चमकश्च पूर्णः[3] ।
गान्धार-तार-धृत-मध्यम-मन्द्र-भावः
श्रीराग इत्यभिहितः सम-शेष-नादः ॥१९९॥

द्विधा पूर्ण औडुवितः षैड्जांश-ग्रह-न्यासवान्[4] ।
टँक्क-राग[5] [म]-समुद्भूतः - - - - - ॥२००॥

म-तारो मन्द्र-गान्धारः श्रीरागो रि-प-वर्जितः ।
सम-शेष-स्वरो ज्ञेयः रसे वीरे नियोजयेत् ॥२०१॥

सानी सनि धा सा गा ग माग सनि धा म ध मा सानि धा
माग सनी नि धागं मा । ध नि स ग म [ज] स सा ग सा

---

1 ताद 2 षड्जी भवतः स्व 3 र्णा 4 षड्जां ग्रहनिन्यास 5 टक

ग मा धा नी स स नि प म नि नि स स प प म प ग गम
मा नी नी स स स पप मम री री म ध स सा स ग ग रिग
प मं नि मं मंम म री री गं म सा सा म स ध स म ध प
स स ध मं सं सा पा पा सा ग म [ति] स प पा म म म नि
सस री ग प प म स स ॥ **इत्यालापकः** ॥

स स म सा म सा ध नी ध म स नी स मा मा री री म ग
म स ग स नि रि स नी नी ग ग ध धा ध स स ध ध म
म ध रि धरि सरि ग ध प म स ध गा री री सा सा सा प
प सा पा री ग ग म म सा सा सा सा ॥ इति **श्रीराग-रूपकम्** ॥२०२॥

३७. सोमरागः

अंश-न्यास-ग्रह-धृत-षड्जः पूर्णश्च[1] षड्जिका-जातः ।
यस्तार-मन्द्र-मध्यो ग[2]-नि-बहुलः [3]सोमरागः स्यात्[4] ॥२०३॥

तथा च **बृहद्देश्याम्**,

[5]अंशे न्यासे ग्रहे षड्जो मध्यमस्तार-मन्द्रयोः ।
भवेत्पञ्चस (?) संपूर्णः सोमरागो नि-गोत्कटः ॥२०४॥

स सा स स म स नि नि नि म स म ग स स गा । नी ग
म प ग प स सा री री ग गा पा गा धा धा धा नी ग री म प
ध धा ध नी सा सा स री ग ध म धा नि ध प ध नि स स
नि स री ग ग प ग सा सा म म ग नि नि स स सा ॥
इत्यालापकः॥

---

1 स्य 2 गनिषड्जन्या 3 सोनरागो 4 सा 5 अंशो

स स़ री स़ स प स म [जि] म़ [ज] स नि ध धा गा गा नी नी प प म म स सा री ग स नी नि ध नी नि ध नि री म स री सं सं सं सं ग ग ध नि नि ग ध नि ध नि प प स सा ग स सा धा मा धा री म । स म म म म सा सा ॥ इति **सोमराग–रूपकम्** ॥२०५॥

३८. बङ्गालः

षड्जांश-न्यास-ग्रहो[1] मन्द्र-त्यक्तश्च षड्जमध्याजः ।
सद्व (श-) स्वरश्च [सं] पूर्णो बङ्गालो वृद्ध-रञ्जको न्यासः (?)
॥ २०६ ॥

तथा च **बृहद्देश्याम्,**

मन्द्रे(ण) रहितः पूर्णः षड्ज-न्यासांश-संयुतः ।
सम-सप्त-स्वरो नित्यं बङ्गालो नाम गीयते ॥२०७॥

स स री स स म स नी नि रि म ग स म [त्रि] प म प स नि स री ग धम धस स निस़ म म मा - - स स नि स रि ग स स स म म ध ध नि स म़ स स रि म़ [त] साध धानी सारी गम स नी मम ग ग नि गं रि नि नि स स सा सा ॥ **इत्यालापकः** ॥

स स ध स म़ ग री ग ग़ म स स ध ध म म नि स स स ध नि धम गम सनि सरि ग म ध नि म स मरि स नि सं [ज] स स म रि ग नि स स म म म प रि ग म म नि ग धा नि ध ध ग म ग स स सां ॥ इति **बङ्गाल-रूपकम्**[2] ॥ २०८ ॥

---

[1] ग्रह [2] वम्लातक

३९. रक्तहंसकः

न्यास-ग्रहांश-स्थित-धैवतस्तु
स्याद्धैवतीजः स्[1]फुट-मन्द्र-म[2]ध्यः ।
गान्धार-तारः [तार] स रि ग स्वकाख्यां (?)
हीनो निषादेन च रक्तहंसकः ॥२०९॥

तथा च बृहद्देश्याम्,
"धैवतांश-ग्रह-न्[3]यासं म-तारं मन्द्र-मध्यमम्" ॥२१०॥

स स [ति] री [क्त] [हंस मुनि हीनं] स री गा ध [कं]
धा धा धा ध ग म ध म ध स री री ग स स म म ग प प
री री ग स स ग ग रि ग म री रि ग म म सं [ज] सं सा
री रि गम ध ग प री सा स म प प स स रि रि ग म स नि
स स ध ध रिग ध म स री [त] री रिम स रि स रि रि स
ध रि ध रि रि स म रि स रि स रि धा धा ॥**इत्यालापकः**॥

ध ध ग ग स री स री रि ग धाम रिप स री री स री ध स

(२०९–२१०) i. पूर्व-प्रसिद्ध रागाङ्ग-रागों में राग हंसक ("हंसक–दीपकौ २।२।४) का नाम **सं० र०** में उपलब्ध है। **कल्लिनाथ** ने 'निरुपपद रागों' में रक्तहंस का वर्णन किया है :—

"रक्तगान्धारिका-जातो रक्तहंसो रि-वर्जितः ।
धैवतांश-ग्रह-न्यासस्तार-गान्धार-मेदुरः ॥" (II, पृ. १४४)

ii. **कुम्भ** ने रागाङ्गराग ३४ दिये हैं। उसने रक्तहंस का वर्णन किया है (I, पृ. ४०९), जो कल्लिनाथोक्त वर्णन के समान है। **नान्यदेव** ने इस राग में निषाद वर्ज कहा है। किन्तु **कल्लिनाथ** तथा **कुम्भ** ने वर्ज स्वर ऋषभ बताया है।

---

1 स्फ 2 मन्यः 3 -स

नी रि प स रिं स ध ध सा री म म प प ध प प स री ग
म म प प ध री ग म प प ध री रि ग म स रि म प रि
रि ग स रि ग ग ग री धा धा मा मा म म सा सा री रि
गा गा म म म धा धा धा ॥ (इति) **रक्तहंस-रूपकम्**
॥ २११ ॥

४०. कामोदः

[1]सद्दश-रचित-शेषस्तार-गान्धार-मन्द्रः
स्वर-र क (?) पूर्णो[2] धैवती योममन्द्रः (?) ।
धरवरिरवितीशो (?) ध-ग्रह-न्यासकांशः
कथित इह (तु) कामोदो विधत्ते[3] प्रमोदम्[4] ॥२१२॥

तथा च **बृहद्देश्याम्,**

गान्धार-तार-संपूर्णः साल्पमन्द्रः (?) सम-स्वरः ।
कामोदो [5]धैवत-न्यास-ग्रहांशः किल गीयते ॥२१३॥

धधनिध धपपम ममामा धा धानि धनिस सासा सासस धपा मध धम धससरि गसां सांध ध ध निप पध पध धामा मा धाधा । पामध नि धनि ध नि धा धा धा धा धा ध नि स निध पधनि धससस नि नीनीनी रिगरि सा नी सा धा धा रिग रिग गामम ममा नी नी धध पारि गसा रिग माधा मासामाधा । नी धा धा ॥ **इत्यालापकः** ॥

धधमध पधपप ममा धाधाग धसमसनि - - - [वि] निसम

---

1 सद्दिश रच्चि । त रचिता शेष्र तार गेंधारसारः 2 काम्यः 3 त्त 4 प्रमोदः
5 धैवतस्याशो

धगनिम निपनि पापा ममरि सरि मपध मरिस गनि मनि गस
गस पधग पम निसम निपप धगम गरी गसध [य] मरि गग
संग मं सं सा [ज] सधध धाप मा मासा [व] धा धा ॥
इति **कामोद-रूपकम्** ॥ २१४ ॥

४१. कामोदः (द्वितीयो 'लघुः')

ग्रह-तार-षड्ज-युक्तः षड्ज-न्यासः सम-स्वरो धांशः ।
पूर्ण-गं-तार-मन्द्रो भवति कामोदश्च षड्जमध्योत्थः ॥२१५॥

तथा च **बृहद्देश्याम्,**

तार-षड्ज-ग्रहः षड्ज-न्यासो धांशः सम-स्वरः ।
ग-तार-मन्द्रः संपूर्णः कामोदो लघुरुच्यते ॥२१६॥

ध मा स सा ध प मनि धम नि सारि स स म नि ध प प
धा धा सा सा म म ग म नि नि ध प ध प धा धा री स
स मा मा सा सा सं ध स स स मा नि ध प म स म ग धा
ध प सा सा रि ग ग ग रि ग ध स मा सा नि ध सा सा
स गा गा म मा म म धा धा ध ग स म ध ग ध प प म
म म स सा सा ॥ **इत्यालापकः** ॥

धा धा स री सा रि ग धा ध प स सरी नि मा मा पा
पा ध म ध प म ध प प ध ध ग म ग म ध स प ध पम
ग म गा स गं धा धा स स री री स म प ध म ग म म स
ध सा स मा स ग म स म स स री रि म स म स ध स नी
सा सा ॥ इति **लघु-कामोद-रूपकम्** ॥२१७॥

---

1 म 2 ष्टः

४२. कामोदः (तृतीयः)

अंश-ग्रह-न्यास-निवासि-षड्जो
गान्धार-मन्द्रः सम-शेष-नादः ।
सप्त-स्वरैः[1] पूर्वस्वरा (?) गा प व (?) षाड्जिकायां
जातः कामोदस्तु[2] भवे (त्) तृतीयः ॥२१८॥

तथा च **बृहद्देश्याम्,**

गान्धार-मन्द्रः पूर्णः (स्यात्) षड्ज-न्यास-ग्रहांशकः ।
सप्तभिश्च स्वरैस्तुल्यः कामोदस्त्वपरो भवेत्[3] ॥२१९॥

स सा सा स ग म स ग म स ध स री स नि स म ग म ग ध म
ध प स प स नि ग म स नि ग री म री रि [ति] रिध स ध प
म ध ध स म री स ग म नि म म मं स ध सं [ज्ञ] स स म री
पा पा ध ध ध सा सा ॥ **इत्यालापकः** ॥

स ग स स म स म म ध री स नी ग ग मा प प ध स स री म
स स ग स ध री म स ग स ध रि स प म नि स ध रि प ग म

(२१२–२१९) i. **शाङ्र्गदेव** ने प्राचीन 'रागों' में दो कामोदों ('कामोदौ') का उल्लेख किया है (पृ० ९, श्लो० १७)। आगे दोनों कामोदों का वर्णन 'अधुना-प्रसिद्ध-देशी-रागों' के प्रकरण में १ श्रीराग, २–३ दो प्रकार के बङ्गाल, ४ मध्यमषाडव, ५ शुद्धभैरव, ६ मेघ तथा ७ सोमराग के पश्चात् श्लोक १६६–१६८ में किया है। इसके पूर्व श्लो० १४१–१४२ में सिंहलीकामोदा उपाङ्ग–राग का वर्णन शाङ्र्गदेव ने किया है तथा उसके लक्षण कामोद के लक्षणों जैसे हैं, ऐसा कहा है।

ii. **कल्लिनाथ** ने कामोद का वर्णन नहीं दिया है, परन्तु बङ्गाल के उपाङ्ग राग देवाल के लक्षण कामोद के समान हैं, ऐसा कहा है (पृ० १४७)।

---

[1] सर्वै [2] सु [3] भवोत

नि स म ध ध ध प म म नि स ध म नि स प म ध म ध म रि ग म मं स स रि ग स री ध स म म स सा सा ॥ इति तृतीय-कामोद-रूपकम् ॥२२०॥

४३. मेघरागः

प्रजातो[1] धैवत्याः स्वर-परिकरैः पूरित-वपुः
परित्यक्तो[2] मन्द्र-ध्वनिभिरपि शेष-स्वर-समः ।
सदा धांश-न्यास-ग्रहण-संहितस्तार-पदवीं[3]
स्फुरत्षड्जो[4] मेघादि[5] रिह - - रागो निगदितः ॥२२१॥

तथा च बृहद्देश्याम्,
पूर्णो मन्द्रेण रहितो न्यासांशा-ग्रह-धैवतः ॥
षड्जस्तारः[6] स्वर-समो मेघरागो निगद्यते ॥२२२॥

धा धा रिध सम गस स धाधा पा निम निस धरि धरी सधप मगनि पप सध सध सध धा पारी गास मध धनि मपरी रि गमम गरि गस सध धानी रीरी गग मनि पप मम सरी सग मम धनि सस सध ध सरि रि सनि म धध प ममग सध नि धा धा स धा धा धा धा ॥ इत्यालापकः॥

ध ध मग सरी गस मध पप सम गम सरि निध मध प ससस म ग [व] सध - - स स धनि मम पमंरी गमंम सध धस धम पम सरी सग पा पा धा पा पस निप गम ध धा धा धा मम पस मरीध सनि धा धा धा धा ॥ इति मेघराग-रूपकम् ॥२२३॥

---

1 प्रस्ततो 2 क्त 3 सहिताः 4 स्यु 5 दे 6 षड्जतारस्वरसमो

४४. देशी

[ध ध] ग्रहांशक-न्यासतयैक-धैवताम्[1]
अपञ्चमाल्पर्षभ-नाद-सुन्दराम्[2] ।
ग-नाद-पर्यन्त-ग [त ता मद्र]-तार-मन्द्रां
दिशन्ति देशीमिह धैवतांशाम् ॥२२४॥

तथा च **बृहद्देश्याम्,**

[3]देश्यामंशे ग्रहे न्यासे धैवतो, नास्ति पञ्चमः ।
[4]ऋषभोऽल्पस्तार-मन्द्रो [ना] [5]गान्धारश्च ह्युदाहृतः ॥२२५॥

धा धारीध सम गस ध धा धा मा निम गगरीस मस स धनि [व] धा धा धा म म नि नि नि मस मस सग ग म ग सं री ध ध री री स सासा सनि पनि धम पस ध स धग पस सध धा धा सनि मध गम स निग मं मध समस धम स गग सरी म मसं [ज] सग धा धा ॥ **इत्यालापकः** ॥

धा धा रीध सम सग सम पध सस मसा धा धा मा मा मा गमनि सस रीस ध [क] पध मस धस धनि धग धा धा नी [य] सनी नी गा गागा सासा मामा धा धा ॥ इति **देशी—रूपकम्** ॥२२६॥

४५. मल्लारः

यस्मिन् पञ्चम-षड्ज-निःस्वन-कथनो (?) च [6]मन्द्र-ध्वनिः
गान्धारः, स च सप्तमस्तु परितो यत्रास्ति तार-ध्वनिः ।

---

1 न्यास - - - - तैक   2 चिपंचमल्पे   3 देशा मंशे ग्रहे न्यासे   4 भ
5 गांधारु मुदाहृतौ   6 मंत्र ध्वनि

न्यासांश-ग्रह-धैवत-ध्वनि-धरं[1] तं धैवती-संभवं
मल्लारं नृप-मल्ल-मोदन-पुरारातिर्वदत्युत्कटः[2] ॥२२७॥

तथा च **बृहद्देश्याम्,**

" धैवतांश-ग्रहन्यासः षड्ज-पञ्चम-वर्जितः ।
निषाद-तारो गान्धार-मन्द्रो मल्लारकः स्मृतः" ॥२२८॥

धाधानिध मामामामा धाधानिध नि म मम म म धा धा मध मांमां रिग रिग मामा धाधा नी नी धा धा धा मामा धा धा धा मप धनि ध ध धा ध धनि ध धनि धा धानि धनि धसा मारि गधा धा धा नि नि मध मां मां रिग रिग मा मा धा धा नीनी धा धा नि धनि सा मारि ग धा धा धा नि नि नी धारि गरिग धानि धा धारि गारिम गामाधा धनि नि गनि धा धानि ध ध धा धा ॥ **इत्यालापकः** ॥

धा धा धानि धनि नि मा मामा मा गाधा धा धा नि धनि म धाधा नि धनि - - धा धा धा धा [त] ध धा ध धा ध धा

(२२७–२२८) **i. शाङ्र्गदेवोक्त** 'अधुना–प्रसिद्ध–रागाङ्गादि' की सूची में 'मल्हार' तथा 'मल्हारी' राग निर्दिष्ट हैं (पृ. १८)। ये दोनों राग पञ्चम ग्रामराग की विभाषा 'आन्धाली' के उपाङ्ग हैं। **शाङ्र्गदेव** ने इन दोनों रागों का बर्णन किया है। (पृ. ११३) **शाङ्र्गदेव** द्वारा दिये गये मल्हार के लक्षण :—

" आन्धाल्युपाङ्गं मल्हारः षड्ज–पञ्चम–वर्जितः ।
ध–न्यासांश–ग्रहो मन्द्र–गान्धारस्तार–सप्तमः" ॥१५५॥

नान्यदेव–कश्यपोक्त लक्षणों के समान ही हैं।

ii. " इस राग में षड्ज तथा पञ्चम स्वर वर्जित हैं" यही श्लोक २२७ के अपपठित प्रथम चरण का अभिप्राय है।

1 ध्वरं 2 वंदत्यु-कः

ध धा ध [क] ध ध मामा । नि धनि ध ध [1]नि रिग गग [व] धारि गरिप मा माधा धा नी मामा धा मामनि धम धा धा नि ध नि ध ध नि नि धा धा ॥ इति **मल्लार-रूपकम** ॥ २२९ ॥

अथैताः (षड्जग्रा-) म-विभाषाः ।

४६. भम्माणी

न्यासांश-ग्रह-पञ्चम-षड्जक-[2]तारा (म-) [3]मन्द्र-मध्या च ।
गान्धार-धैवताल्पा ऋषभ-विहीना तु भम्माणी ॥२३०॥

तथा च **बृहद्देश्याम्**,

,' म-मन्द्रा षड्ज-तारा च ग्रह-न्यासांश-पञ्चमा ।
स्वल्प-धैवत-गान्धारा भम्माणी ऋषभेऽक्रियाँ[4] " ॥२३१॥

पा पा नि पा सा म धनी पापागगस संसंमंमं पप पंपं धधनिनिगामासापा धानीनिध पापापापा धंधंधं धानीनीम गरिरिग ससाधनी नींनीं ससगस पपपपधध पपममनीगगस पमधनिनिध पपपसासागमगपपाम ससंसंगप धपमपापापा ॥ (इति) **आलापकः** ॥

(२३०–२३१) **i. मतंग** ने पञ्चम की केवल १० भाषाएँ दी हैं, उनमें भम्माणी अन्तर्भूत नहीं है ।

ii. शाङ्गदेव ने भाषा-सूची में पञ्चम की विभाषाएँ भम्माणी तथा आन्धालिका इस प्रकार दो बतलायी हैं एवं आगे उनका वर्णन दिया है । भम्माणी के **शाङ्गदेवोक्त** लक्षण (पृ० १२८) कश्यप-**नान्यदेवोक्त** लक्षणों के अंशतः समान हैं ।

---

1 ति 2 तारव 3 मंत्र 4 क्रिया

पपनिप सधमनि सगमम सधमध सप पम प म म प गा गा प स म प गा गा मम म प स पसप पामामाध संगंसंध स म म प नि निप प धध प स धपधनि पपनिगगममम पधगमं । म संसंसंसं प प पा ॥ इति **भम्माणी रूपकम्** ॥२३२॥

४७. भैरवी

न्यासांश-ग्रह-धैव (त-) युक्ता गान्धार-तार-मन्द्रा च।
सम-शेष-स्वर-भासा[1] परिपूर्णा[2] भवति भैरवी नियतम्[3] ॥२३३॥

तथा च **बृहद्देश्याम्**,

"गान्धार-तार-मन्द्रा च न्यासांश-ग्रह-धैवता ।
समाखिल-स्वरा पूर्णा धन्या[4] भवति भैरवी" ॥२३४॥

धाधा गध निग रि गस निधामारिगस निमनिध निधससमध रिध धाधनिध धधधध निमनिप निधमम धनिधध धानि धामधगागाधा नीपपम धस धनि नि रि नि स निनिपनिधनि मामा मा धाधाधा धनिनिध धाधाधाधाधामा ॥ (इति) **आलापकः** ॥

धाधाधाग निसनिनि निनिसनिधनी मा सा मा स नि धा धा म ध स धा म नी स नि नि स म पमधनिनिरिरिनिध निरिनिसनि निसनिधध नीमा गागाधाधाधाधा ॥ इति [पूण] **भैरवी-रूपकम्** ॥२३५॥

(२३३–३४) **शाङ्गर्देव** ने 'अधुना–प्रसिद्ध–रागाङ्गादि' वर्ग में भैरवी का समावेश किया है। उसका शार्ङ्गदेवोक्त वर्णन उपरोक्त वर्णन के समान ही है, जिसमें भैरवी को **भैरव का उपाङ्ग** कहा है (पृ. १०७)।

---

1 सं 2 प्रपूर्णा 3 भियंतं 4 भ

४८. गोल्ली

धैवत-रव-रमणीयैरंश-न्यास-ग्रहैश्च संयुक्ता ।
तार-रि-षड्ज-बहुला[1] गोल्ली गान्धार-सप्तमापेतां[2] ॥२३६॥

तथा च **बृहद्देश्याम्**,

" ॠद्[3]-षड्ज-बहुला[4] तार-तरा[5]ऽथ ग-नि-वर्जिता ।
मन्द्रेण रहिता गोल्ली न्यासांश-ग्रह-धैवतां[6] " ॥२३७॥

धा धा सध सस संसंमंमं पध सध स म धा धा पम पपपप मा स ध सं धं धं धं रि स सानिध स मध रि म मरि म स स स स रि रिम सं [जं] स स ध रि मरि रिरि मध सरी मधरीस सस रिरी रि म रि ध ध धा ॥ (इति) **आलापकः** ॥

धा धा स ध मम पध रीरि मस सारी रिप म सा सा सासरी मसामम पपससासरिसरि धसरिमा समपरी रिरिमपध सस पध रीरी मप धाधा ॥ इति **गोल्ली-रूपकम्** ॥२३८॥

४९. सावरी

स्वल्पतर-षड्ज-मन्द्रा [षड्ज] पञ्चम-रहिता च तार-गान्धारा ।
न्यासांश-ग्रह-धैवता सावरी[7] सदा[8] भवति ॥२३९॥

(२३६-२३७) **i.** बृ० दे० में गोल्ली का नामोल्लेख नहीं है ।

ii. सं० र० में पूर्व-प्रसिद्ध भाषाङ्ग-रागों में 'गोली' का उल्लेख आया है (पृ. १६) ।

iii. कल्लिनाथ ने प्राक्-प्रसिद्ध भाषाङ्गों में गोली का वर्णन दिया है । कल्लिनाथोक्त लक्षण नान्यदेवोक्त के समान ही हैं:—

" धैवतांश-ग्रह-न्यासा ग-नि-हीना रि-तारजा ।
ध-रि-सैर्बहुला गोली गातव्या गीत-वेदिभिः " ॥ (पृ. १४६)

---

1 बकुल 2 मोपेता 3 रु 4 बकुला 5 तराथा 6 धैवतां 7 साररवा 8 सखी

तथा च बृहद्देश्याम्,

"षड्जाल्पा तार-गान्धारा पञ्चमेन च वर्जिता ।
सावरी[1] सहिता न्यास-ग्रहांशै धैवतात्मकैः[2]" ॥२४०॥

(२३९-२४०) **i.** पाण्डुलिपि में दोनों श्लोकों में 'सारवी' नाम दिया है, जो वास्तव में सावरी होना चाहिये। सावरी रगन्ती से पैदा हुई है एवं रगन्ती ककुभ ग्रामराग की भाषा है।

ii. शाङ्र्गदेव ने सावरी का वर्णन दिया है, वह नान्यदेवोक्त वर्णन से मिलता-जुलता है:—

"तद्भवा सावरी धान्ता ग-तारा मन्द्र-मध्यमा ॥१११॥
म-ग्रहांशा स्वल्प-षड्जा करुणे पञ्चमोज्झिता"। (पृ. ९५)

उपरोक्त श्लोक में 'तद्भवा' का अर्थ है—'रगन्ती-भवा'।

iii. किसी ग्रंथ में एक राग का नाम अपपठित या अशुद्ध दिया गया हो, तो पश्चात् का ग्रंथकार ऐसे अशुद्ध नाम को लेकर एक राग के दो राग बना सकता है। **उदाहरणार्थ—संगीतरत्नाकर** के सावरी राग का नाम राणा **कुम्भ** ने 'सावेरी' दिया है। इस 'सावेरी' के लक्षण-'धांशा ग-तारा, विपञ्चमा' आदि सावरी के लक्षणों के समान ही दिये हैं (**सं० रा०**, I, पृ० ४३२)। **कुम्भ** ने अपनी 'सावेरी' को ककुभजन्य रगन्ती का अङ्ग भी कहा है। परन्तु आगे उसने एक अन्य 'शाम्बरी' राग का वर्णन दिया है, जो सावरी या सावेरी के समान ही है:—

"रगन्ती काकुभी तज्जा शाम्बरी मन्द्र-मध्यमा।
मध्यमांश-ग्रहा न्यास-धैवता स्वल्प-षड्जका ॥
तार-गा करुणे गेया प-हीना शरदागमे"॥ ११८॥ (I, पृ० ४३५)

iv. दाक्षिणात्य संगीत में **सावेरी** राग अधुना प्रसिद्ध है, जो हिंदुस्तानी जोगिया राग के समान गाया जाता है। उसमें मध्यम प्रबल है, पञ्चम वर्ज नहीं है, परन्तु अल्प हो सकता है।

v. हिंदुस्तानी **आसावरी** राग में रि-ग-ध-नि कोमल हैं, परन्तु उसका आरोह जोगिया राग के सदृश ही है, रस भी करुण है। **भातखण्डे-पद्धति** में जौनपुरी राग का नामाभिधान 'आसावरी' रख दिये जाने के कारण गायक-वादकों की परम्परागत आसावरी को आजकाल 'कोमल आसावरी' कहने की रूढि प्रचलित हो रही है।

सारांश, कालान्तर से कुछ रागों के नाम वही रहे, परन्तु स्वरूप में अल्पाधिक परिवर्तन हो गया है।

---

[1] सारवी [2] दैवता

धा धा सधगसनिरि ग म सरी [वि] म धप निस रिग म सं सं मंमं पपनि मपसनि गंग सरि गाममप धनिधध पस रिम गधध रिरिरि धम ममसप मसगमसनि रिगसम निध ध धस नि स स धाधा ॥ (इति) **आलापकः** ॥

धा धा धनि गगरिग धनिनिस निमधग धगागागं मसनिधा गानी री गा ध ध निग निमरीगा गगरिम धधमम सरिरि धनिध ग नि म स् ध ग म गगाधा धानि गरि गसधधा धाध निनि नि धा धा ॥ इति **सावरी-रूपकम्**[1] ॥२४१॥

५०. कर्णाटवराटिका

धांशा धैवत-तारा[2] षड्ज-न्यास-ग्रहा च संपूर्णा ।
मध्य (-म)-मन्द्रा कविभिः[3] कर्णाटवराटिकाऽभिहिता[4] ॥२४२॥

तथा च **बृहद्देश्याम्**,

" षड्ज-न्यास-ग्रहा धांशा ध-(ता) रा मन्द्र-मध्यमा[5] ।
सम-स्वराऽथ संपूर्णा[6] (सा) कर्णाटवराटिका " ॥२४३॥

सा धा ध ध ससगध पसमम सध गध पध म ध । धनि ग गनि । नीरिरिमिध सधरीरिगधपधरी रीम निगधप पपधध निमंध सं सं [ज] स री स नि ध ध म ग म प म ध प म नि सा सा सा ॥ (इति) **आलापकः** ॥

(२४२–२४३) i. **मतंग** ने **भिन्नपञ्चम–भाषा वराटी** का वर्णन निम्नानुसार किया है:—

" मध्यमांशा धैवतान्ता ऋषभेण तु दुर्बला ।
षड्ज–धैवत–संवादो द्वि–श्रुतीनां स–धैवतम् ॥
भाषा तु षाडवा ह्येषा बहु–धैवत–मध्यमा " । (पृ० १२९)

---

1 सारवी 2 तार 3 कविति 4 काष्लाट 5 मंध्र 6 र्णो

साधम सधाम गध रि नि । ग मसस मनिसप मगमम गनिस गमपप सध संरिंरिं संरीरी नीनीनि निसनी गमप सासा धा धागधपध धाधा निमधमग धमप ध मधगस रिसरिस धध ध

---

ii. शाङ्र्गदेव ने भाषा–सूची में भिन्नपञ्चम–भाषा वराटी का उल्लेख किया है। उपरान्त, 'अधुना–प्रसिद्ध–रागाङ्ग' रागों की सूची में द्वितीय वराटी दी है (पृ. १७)।

iii. शाङ्र्गदेव द्वारा दिये गए भिन्नपञ्चम–भाषा वराटी के लक्षण का श्लोक **नान्यदेवोक्त** श्लोक का ही रूपान्तर हैं :—

"धांशा षड्ज–ग्रह–न्यासा म–मन्द्रा तार–धैवता ॥८५॥
समेतर–स्वरा गेया शृङ्गारे शार्ङ्गि–संमता।"

iv. षाड्जी जाति से वराटी राग उत्पन्न होता है, ऐसा **शाङ्र्गदेव** ने सूचित किया है :—"वराटी दृश्यते।" (I, पृ. १९९)

v. "विकृत षाड्जी जाति में काकली निषाद का प्रयोग करने पर वराटी उत्पन्न होती है। अन्यथा षाड्जी जाति को गाने–बजाने से वराटी राग की प्रतीति अंशतः होती है" ऐसा स्पष्टीकरण इस विषय में **कल्लिनाथ** ने किया है :—

"यदा विकृतावस्थायाम् अपि काकली–प्रयोगः तदा वराटी प्रतीयते।
अन्यदा वराट्येकदेश– प्रतीतिः एव।" (पृ. २०१)

vi. दाक्षिणात्य संगीत में **सामवराळी** तथा **शुद्धवराळी** राग प्रचलित हैं। इन रागों का ग्रंथकारों द्वारा वर्णित ठाठ :—

'सा रि॒ रि म प ध॒ नि' अथवा सा रि॒ ग मं प ध॒ नि
(= हिन्दुस्तानी तोडी) है।

vii. हिंदुस्तानी रागों के अप्रसिद्ध रागों में **बरारी** राग है। **पं. भातखंडेजी** के मतानुसार हिंदुस्तानी वराटी या बरारी मारवा अथवा पूर्वी ठाठ का राग है।

viii. तात्पर्य यह कि, वराटी राग के द्वारा षाड्जी जाति का स्वरूप ज्ञात करना अथवा वराळी या बरारी के स्वरूप के आधार पर प्राचीन वराटी का स्वरूप निश्चित करना अशक्य है।

ix. शाङ्र्गदेव ने वराटी के और छः प्रकारों का वर्णन दिया है :—**कौन्तली,** द्राविडी, सैन्धवी, अपस्थान, हतस्वर, तथा प्रतापवराटी। इन प्रकारों को उसने उपाङ्ग कहा है।

म परीगधध मपरी ग ध सासा ॥ इति **कर्णाटवराटिका-रूपकम्** ॥२४४॥

८१. लाटवराटी

धांश-ग्रह-न्यासवती प-हीना,
गान्धार-[1]तार-मन्द्र-मध्यमा सा ।
दोलिता - - - - - - गमकैश्च युक्ता,
- - - - - [2]पुनर्लाटवराटिका ॥२४५॥
धैवतांशो[3]-(ग्र) ह-न्यासा रहिता पञ्चमेन सा ।
वेगा तार[4]-मन्द्र-हीना [च] वराटी लाट-देशजा ॥२४६॥
रूपकालापकौ[5] [6]चैव विद्यात्तु पूर्ववत्स्थितौ ।
अंश-साम्येन विज्ञेयौ हीनत्वादि-प्रभेदितौ ॥२४७॥

प प म रि पा म नी पां पा गागा सां सां मा पापा । पापानीनी गा गा पा पा — नीपापा पप रीरीरी मरिगस नीं[मीं]नीं नीं सासागा गापापाध मा धा नी पा पा पा पा ॥ (इति) **आलापकः**॥

पम मप रिधानी पा पा गागापानिरिपस निपापा नीनी धाधा गापापाध नि पापा पा निपनिनि पसनिप सनिधापा परिरिध नि री री री मापा मागा रिसनिनि धनी निपा पागागा धनि धमग धनिध पा पा ॥ इति **लाटवराटी-रूपकम्** ॥२४८॥

(२४५–२४७) i. **शार्ङ्गदेव** द्वारा वर्णित वराटी–प्रकारों में किसी के भी साथ लाटवराटी का साम्य प्रतीत नहीं होता है ।

ii. इस राग में आन्दोलित गमक का प्रयोग होता है । नान्यदेव ने सात गमक कहे हैं (**भ. भा.** I, पृ० १३९) । श्लो० २४५ का छन्द विकृत है ।

iii. लाटवराटी के आलाप तथा रूपक पूर्ववत् अर्थात् कर्णाटवराटी के सदृश हैं, ऐसा श्लो. २४७ में ग्रन्थकार का कथन है ।

---

1 सार 2 पुनः कर्णाट 3 शे 4 रा 5 का 6 च एव गद्यां वि–नौ ।

५२. वेलावली

गान्धारावधितारा मन्द्रा पूर्णा सम-स्वराभोगा ।
वेलावलिका[1] धैवत-(कां) [ध मां]-शन्यास-ग्रहा[2] भवति ॥२४९॥

तथा च **बृहद्देश्याम्**,

"सम-स्वरा च पूर्णा च ग्रहांश-न्यास-धैवता ।
तार-मन्द्रा च गान्धारे[3] यावद्वेलावली[4] भवेत्" ॥२५०॥

अस्यास्तु भैरवी-तुल्य आलापो रूपकं[5] तथा ।
गान्धारावधि-तार[6]त्वं मन्द्र-न्या[7]सात्र भेदिता ॥२५१॥

इति वेलावली ।

(अपूर्णोऽयम् अध्यायः ।)

(२४९-२५०) i. ककुभ ग्रामराग की विभाषा भोगवर्धनी से उत्पन्न वेलावली के **शाङ्र्गदेवोक्त** लक्षण अधिकांशतः उपरोक्त के समान हैं (II, पृ० ९६)।

ii. वेलावली का निर्देश **बृहद्देशी** में अनुपलब्ध है ।

iii. **सं० र०** में वेलावली के उपाङ्ग छायावेलावली तथा प्रतापवेलावली वर्णित हैं (पृ० १०६)।

iv. **कुम्भ** ने वेलावली के वर्णन में शाङ्र्गदेव का अनुकरण किया है ।

(२५१) ग्रन्थकार ने सूचित किया है कि वेलावली के आलाप तथा रूपक भैरवी के अनुसार ही होने के कारण अलग से नहीं दिये गये हैं ।

---

1 वलाचलिका 2 हेर्मं 3 र 4 चली 5 रूपकस्तथा 6 विधि 7 ना

शुद्धि–पत्रक

पृष्ठाङ्क	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	७ (टीका)	पद्मालिना	पादालिना
५	७	च जायते	जायते
५	१०	जातीं	जातिं
२०	२०	संवादीनां	संवादिनां
३३	२	पञ्चनवति (हि) भेदाः	पञ्चनवतिर्भेदाः
७७	३	विशिखिलाचार्यः	विशाखिलाचार्यः
७८	१	इयं च मधुकुया वेश्यावणया	×[इयं च मधुकुर्या देश्यात्रणया।]
७८	२	×री	री
७८	३	वेश्या	देश्या
८३	१	रिपुमृपुगन्धद्विपदा	रिपु-मृग-मर्दन-पदो
९१	१०	बिभ्रति विकृतिः	बिभ्रतीं विकृतीः
९३	१४	मो. ग	भो ग
११३	३	[ ]	( )
११८	१२	[ ]	( )
१२६	५	(अथजातयः)	[अथ जातयः।
१३१	३	--पञ्चाशत्सङ्ख्य इति	--पञ्चाशत्सङ्ख्येति
१३२	१४	यदैव	यदैक–
१३७	७	चत्वरिंशत्	चत्वारिंशत्
१३७	१४	मध्यमोश्चात्र	मध्यमयोश्चात्र
१३८	१२	कुर्यादयस्यां	कुर्यादस्यां
१३८	१८	चत्वरिंशत्	चत्वारिंशत्
१३९	७	प्रकीर्तिताः	प्रकीर्तितः
१४१	७	स्मृता।:	स्मृताः।
१४४	३	॥ ५०३ ॥	॥ ५०३ ॥]
१५२	४–५ (अंतिम कोलम)	1,2,3,4,1,2,3,4,5,6	1,2,3,4,5,6,7,8,9,10
१५४	१४	एवंलक्षणं–	एवं लक्षण–
१५५	३	२८।८८	३१।८८
१५८	४	धृवकम्	ध्रुवकम्
१७६	१६	अस्त्रं	अस्त्रं
१८५	५	पुरुष०।×	पुरुष०।]×
२०८	१९	शीर्षकरणा	शीर्षम्। करुणा–
२२४	१ (टीका)	जेष्ठ	ज्येष्ठ
२३०	११	क्रिङ्यागाणि	क्रियाङ्गाणि
२३५	४	मलहारो	मल्लारी
२७७	१२	–युक्तो।	–युक्तः।
२७८	१ (टीका)	निरुपदद	निरुपपद
२८७	७	–पदवीं	पदवी–